महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में

पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

सूत्रधारमण्डन कृत राजवल्लभ का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन

शोधकर्ता

देवेन्द्र जैन

:: शोध-सहनिर्देशक ::

डॉ. डी. पी. पारे

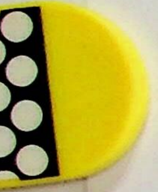
::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल

2014



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में

पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

सूत्रधारमण्डन कृत
राजवल्लभ
का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में
परिशीलन

शोधकर्ता

देवेन्द्र जैन



:: शोध-सह निर्देशक ::

डॉ. डी. पी. पारे

::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल

2014



महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

स्थापत्यवेद में

पी-एच. डी. (विद्या-वारिधि)

हेतु प्रस्तुत

शोध-प्रबन्ध

:: शीर्षक ::

सूत्रधारमण्डन कृत
राजवल्लभ
का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में
परिशीलन

शोधकर्ता

देवेन्द्र जैन



:: शोध-सहनिर्देशक ::

डॉ. डी. पी. पारे

::शोध-निर्देशक::

डॉ. निलिम्प त्रिपाठी

महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय

भोपाल

2014



घोषणापत्र

मैं यह शपथ पूर्वक घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोधप्रबन्ध जिसका शीर्षक " सूत्रधार मण्डन कृत राजवल्लभ का आधुनिक अभियान्त्रिक दृष्टि में परिशीलन" है, संदर्भ ग्रन्थ पर आधारित मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी घोषित करता हूँ कि यह शोधकार्य मैंने किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि आदि की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।



घोषणापत्र

मैं यह शपथ पूर्वक घोषित करता हूँ कि प्रस्तुत शोधप्रबन्ध जिसका शीर्षक **"सूत्रधार मण्डन कृत राजवल्लभ का आधुनिक अभियान्त्रिक दृष्टि में परिशीलन"** है, संदर्भ ग्रन्थ पर आधारित मेरा मौलिक शोध कार्य है। मैं यह भी घोषित करता हूँ कि यह शोधकार्य मैंने किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि आदि की प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया है।

देवेन्द्र जैन
शोधकर्ता का नाम



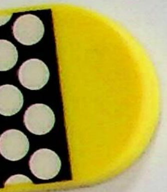
प्रमाणपत्र

यह प्रमाणित किया जाता है कि प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध जिसका शीर्षक "सूत्रधार मण्डन कृत राजवल्लभ का आधुनिक अभियान्त्रिक दृष्टि में परिशीलन" है, देवेन्द्र जैन द्वारा संदर्भ ग्रन्थों पर आधारित मौलिक शोध कार्य है, जो कि मेरे निर्देशन में सम्पन्न किया गया है। मैं यह भी प्रमाणित करता हूँ कि यह शोध कार्य किसी भी विश्वविद्यालय या संस्थान में किसी भी उपाधि प्राप्ति हेतु प्रस्तुत नहीं किया गया है।

::शोध-निर्देशक::
डॉ. निलिम्प त्रिपाठी
महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय
भोपाल

:: शोध-सहनिर्देशक ::
डॉ. डी. पी. पारे
D. P. Pare
(D. P. PARE)
2-5-14

अग्रेषित
16.9.15



प्रस्तावना



प्रस्तावना



महर्षि वेद विज्ञान

इस प्रकार महर्षि वेद विज्ञान पूज्य महर्षि जी द्वारा दृष्ट वह ज्ञान एवं तकनीक है, जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति वेद के सम्पूर्ण ज्ञान को अपनी सरल सहज चेतना में अनुभव कर तथा वैदिक वाङ्मय द्वारा वैज्ञानिक रूप से बुद्धि के स्तर पर समझकर एवं अपने अनुभवों को पुष्टकर जीवन के प्रत्येक स्तर पर प्रयोग में लाकर स्वयं के, समाज के, राष्ट्र के एवं विश्व के जीवन को सफल बना सकता है। महर्षि वेद विज्ञान चेतना का वह विज्ञान है जिसे प्रायोगिक पक्ष भावातीत ध्यान द्वारा सरलता से अनुभव किया जाता है, जो पूज्य महर्षि जी ने भावातीत ध्यान के अनुभवों की विभिन्न विश्वविद्यालय के वैज्ञानिकों द्वारा पुष्टि के उपरान्त भावातीत ध्यान के आधारभूत सिद्धान्तों को महर्षि वेद विज्ञान अर्थात् चेतना विज्ञान के रूप में स्थापित किया है। इसके लिए उन्होने शाश्वत वैदिक वाङ्मय को प्रत्येक की चेतना मे निहित आत्मा के स्पन्दनों की अभिव्यक्ति के रूप मे प्रदर्शित किया है।

वैदिक वाङ्मय आत्म चेतना के स्पंदन है, वाङ्मय का प्रत्येक स्पंदन आत्मा का स्पंदन है, चेतना का स्पंदन आत्मा की अभिव्यक्ति है, अव्यक्त आत्मा का व्यक्त रूप है।

द्रष्टा का पूर्ण प्रयोजन

बुद्धि अपनी वृत्तियों के सहारे अपनी तरंगों में तरंगित होती हुई आत्म सागर का रूप ले लेती है, बुद्धि आत्मवान होकर आत्मा का अनुभव करती हुई, आत्मा के स्वभाव को अपनी वृत्तियों में व्यक्त करने लगती है, मन की वृत्तियों में उभरती हुई इंद्रियों के रूप में शरीर के रूप में व्यवहार के रूप में आत्म चेतना लहराने लगता है, जीवन में पूर्णता लहराने लगती है, इस प्रकार ध्यान और ज्ञान के संयुक्त विधान से द्रष्टा का पूर्ण प्रयोजन सिद्ध होता है ।

विश्व ब्रह्माण्ड का आत्मा से संबन्ध

व्यवहार में ज्ञान शक्ति और आनन्द का सागर लहराने लगता है, प्रकृति के नियम जो समस्त विश्व ब्रह्माण्ड का नियमन करते हैं, वे इसी विधान से करते हैं, आत्मा के नियम अर्थात आत्मा के स्वभाव का प्रवाह चेतना आत्मा की वृत्तियाँ अखंड, अनंत, अव्यक्त को व्यक्त करती हुई एक अनंत शांत चेतना सागर में अर्थात विश्व ब्रहमाण्ड को प्रवाहित करती रहती है यही आत्मा के स्वरूप में ब्रह्मत्व की जागृति है।

संहिता

संहिता :– ऋषि, देवता, छन्द इकट्ठा रखने के यौगिक गुण को संहिता कहते हैं, इसमें ज्ञाता ज्ञान व ज्ञेय के एकीकरण की संहिता है, वैसे तो संहिता की व्याख्या में संधि को भी लिया गया है, संधि में वेद का ब्रह्म क्षेत्र भी आता है, मंत्रों के आनुपूर्वी कमिक प्रवाह का पाठ है रिद्धि–सिद्धियों का क्षेत्र है, सब संधियों से परिपूर्ण है, ऋचाओं के बीच की, सूक्त के बीच की, मण्डलों के बीच की, जो संधियां है, जहाँ परिवर्तन होता है, यही क्षेत्र प्रकृति के नियमों का क्षेत्र है, यही संहिता है, ऋषि देवता छन्द की संहिता पूर्ण ज्ञान वेद है, संपूर्ण वेद संहिता है, एक को समझना तीन को समझना है, द्रष्टा दर्शन दृश्य तीन सत्ताओं का अनुभव करती है ।

छन्द

छन्द- ज्ञेय, आच्छादन करने का गुण,रखने का गुण छन्द में पाया जाता है, इन तीनों को मिलाकर एक करना, एक को अनेक, संकुचित करना, विस्तार करना, ऋषि देवता छन्द का इकट्ठापन, संहिता पूर्ण ज्ञान है, क्योंकि इसमें आध्यात्म आधि दैविक और आधि भौतिक तीनों स्तर के ज्ञान को प्राप्त करते हैं, यह पूर्ण ज्ञान अव्यक्त रूप में आत्मा है, और व्यक्त रूप में वेद है, समस्त ब्रहमाण्ड की अनेकताओं को संपूर्ण रूप से प्राप्त करने के लिए ऋषि, देवता, छन्द के तीन गुणों को संहिता के रूप में समझना और



संहिता को ही अपनी आत्मा जानना और संहिता की समस्त वृत्तियों को अपनी ही आत्मा की वृत्तियों के समान जानना, व अनुभव करना, उनके प्रयोग में अभ्यास करके सर्वसमर्थ चेतनावान होकर पूर्ण जीवन का आनन्द लेना यह आत्मा का ज्ञान–विज्ञान है, यह आत्मा ही विज्ञान है, यह वेद विज्ञान है, ब्रह्म विज्ञान है, पूर्ण विज्ञान है। 'पूर्ण ज्ञान का दर्शन' 'अ'ऋग्वेद का प्रथम अक्षर है, अ में ही पूरा ऋग्वेद लहराया है ।

'ऋचो अक्षरे परमे व्योमन'

अ में ही वेदों की सत्ता है अ में ही संपूर्ण वेद वाणी की सत्ता है। अ में ही सपूर्ण प्रकृति के नियमों की सत्ता है, अ कहने से ही पूरा मुख खुलता है, अ के भीतर पूर्णता का विस्तार है। अ पूर्ण वेदवाणी का शांति प्रवाह है, अ आत्मा की अभिव्यक्ति है, अ ज्ञान की व्यक्त अव्यक्त दोनों सत्ताओं का विलक्षण समन्वय है, आत्मा की ज्ञान रूपता अनंत सामर्थ्य अनंत ऐश्वर्य, अनंत ऐश्वर्य रूपता की अव्यक्तता तथा व्यक्त दोनों के विलक्षण समन्वय की अभिव्यक्ति अ में है, अ वृहद रूप है पूर्ण ज्ञान रूप है, अ ज्ञान का पूर्ण रूप है जैसे बीज से अंकुर उत्पन्न होता है, और उसमें ,फल,फूल सब समाए रहते है। वैसे ही अ की सत्ता है।

भावातीत ध्यान का स्वरूप एवं चेतनाः–

परम् पूज्य महर्षि महेश योगी ने 1957 में भावातीत ध्यान शैली की प्रकिया को विश्व के सम्मुख प्रस्तुत किया जो सरल स्वाभाविक और प्रयासहीन है,जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति में चेतना की उन उच्चतर अवस्थाओं की सृजनात्मक शक्ति का विकास हो सके, जो उनमें सदा से ही निहित है। यह ध्यान हमारे सामने यह संदेश लेकर आया है कि चेतना की उच्चतर अवस्थाओं का विकास ही सारी समस्याओं का एकमात्र निराकरण है। महर्षि जी, का यह संदेश, कि जीवन आनन्द है, इस तथ्य की सराहना लोग तब



करने लगे जब पूरे विश्व भर में अनेक लोग भावातीत ध्यान का अभ्यास करने लगे। लोगो ने अनुभव किया कि भावातीत ध्यान के नियमित अभ्यास से स्वास्थ्य में सुधार, उद्यम में अधिकतर सफलता, बुद्धि में विकास और पारिवारिक जीवन में सुधार आया है। महर्षि जी ने सदैव ही अपने पन के द्वारा हमें यह संदेश दिया है कि भावातीत ध्यान की प्रक्रिया कमबद्ध है, और वैज्ञानिक शोधों द्वारा प्रमाणित है इसके अभ्यास से मन विचारो के सूक्ष्मातिसूक्ष्म स्तर का अनुभव करके जब विचारो के स्रोत तक पहुँचता है, तब वह अपने अंदर उस असीमित बोध,शुद्ध, स्व और पूर्ण सत्य को जानने लगता है, जहॉ से प्रकृति के नियम समस्त व्यक्तिगत जीवन की प्रक्रिया का संचालन और शासन करते हैं। संक्षेप में हम कह सकते हैं कि भावातीत ध्यान एक अनुभव है , जैसे प्रेम, आनन्द और सुख मन के भिन्न–भिन्न अनुभवों की अभिव्यक्ति है वैसे ही भावातीत ध्यान भी मन की एक अनुभूति है, विशेष रूप से भावातीत ध्यान एक ऐसी प्रक्रिया है जिसके द्वारा मन और शरीर के बीच गहरा सह सम्बन्ध स्थापित हो जाता है जो कि हमें उस स्तर तक ले जाता है, जहॉ पर हमारे मन का सीधा सम्पर्क विचारों के स्रोत से हो जाता है। विचारों का स्रोत ही शुद्ध बुद्धि का क्षेत्र है, जिसे दूसरे शब्दों में भावातीत चेतना या तुरीय चेतना भी कहते है । मनुष्य सैकड़ों विचारों का अनुभव प्रतिदिन करते हैं। लेकिन ये विचार कहॉ से उत्पन्न होते है ? ये हमारे अन्दर ही कही से उत्पन्न होते हैं ? यह क्षेत्र या स्रोत हमारे अन्दर है जो इन सभी विचारों और उनकी कियाओं के लिये उत्तरदायी है,चूंकि हमारे सारे विचार बुद्धि ,सृजनात्मकता और शक्ति के कुछ अंश से पोषित है, इसलिये अनंत बुद्धि, सृजनात्मकता और शक्ति विचारों के स्रोत में ही है। यही विचारों के स्रोत या भावातीत चेतना के विशिष्ट गुण है । हम कह सकते हैं कि भावातीत ध्यान एक मानसिक प्रक्रिया है जिसके द्वारा हम भावातीत चेतना के उस स्तर तक पहुँचते है,जहॉ पर हम अनन्त किया शक्ति, बुद्धि और सृजनात्मकता के स्रोत का अनुभव करते हैं। इस अनुभव के फलस्वरूप हम शक्ति, सृजनात्मकता बुद्धिमत्ता के इस क्षेत्र को अपने अन्दर आनन्द पाने के योग्य हो जाते है। परिणामस्वरूप हम अपने दैनिक जीवन में अधिक बुद्धिमान, सृजनात्मक और शक्तिवान बन जाते है।



भावातीत ध्यान का इतिहास

भावातीत ध्यान उतनी ही प्राचीन तकनीक है जितना कि ऋग्वेद मानवीय अनुभव का प्राचीनतम अभिलेख। दुर्भाग्यवश ध्यान और विभिन्न प्रकार के योग का लोगों ने स्थूल स्तर से गलत अर्थ लगाया और पूर्वकाल में लोगों ने इसका दुरुपयोग भी किया। महर्षि महेश योगी ने युग की इस विधि ध्यान को वैज्ञानिक और क्रमबद्ध रूप में, हमारे सम्मुख शुद्ध रूप में लाकर अधिक प्रभावशाली और सर्वसुलभ बनाकर इस ज्ञान का पुनरुत्थान किया है।उन्होने इस विधि को सम्पूर्ण विश्व के समक्ष प्रस्तुत किया और लाखों लोग इसका अभ्यास करके लाभान्वित हुये। महर्षि जी ने भावातीत ध्यान को सभी प्रकार की सीमाओं रहस्यवादिता और धर्मो की सीमाओं से बाहर कर हमारे सम्मुख प्रस्तुत किया। इसका किसी धर्म, विश्वास और आहार से कोई सम्बन्ध नहीं है। ध्यान एक सरल मानसिक प्रक्रिया है और यह बहुत ही आनन्द दायक है, इसलिये इसे प्रयासहीन तकनीक कहते हैं ।

भावातीत ध्यान क्यों कहते हैं:

भावातीत का अर्थ है परे जाना यथार्थ में हम ध्यान में क्या करते है, हम एक विचार का अनुभव करते हैं। जैसे हम सब जानते है कि सोचना प्रयासहीन प्रक्रिया है । बचपन से ही हम विचारों को सोचना आरम्भ करते है। मानवीय मस्तिष्क एक ऐसी अद्‌भुत स्वचालित मशीन है जिसे किसी ऊर्जा की आवश्यकता नहीं पड़ती है। यह बहुत ही सरल है मात्र आपको विचार के लिये बटन दबाना है और सोचने की प्रक्रिया आरम्भ हो जायेगी। लेकिन ये विचार केवल स्थूल चेतन स्तर के ही विचार होंगे । भावातीत ध्यान के अभ्यास के लिये सोचने की यह स्वचालित प्रकृति बहुत ही महत्वपूर्ण है विचार हमारे अन्दर ही कहीं से विकसित होते है, बोध का वह शांत स्तर जहां से विचार उत्पन्न होते है, उस स्तर को हम विचारों का स्रोत नाम देते है। लेकिन मन की प्रकृति ही चंचल है और जब हम बहुत सारे विचारों को सोचते हैं तो करोड़ों की संख्या में स्नायु संस्थान में जो न्यूरॉन्स (मस्तिष्क की इकाइयां) होते है, उनमें से लाखों की संख्या में न्यूरॉन्स प्रज्वलित होते रहते है जिन्हें पार्श्व ध्वनि कहते हैं।



भावातीत ध्यान में क्या करते हैं

हम कमबद्ध और स्वचालित प्रकिया के द्वारा इस ध्वनि को कम करते हुये शांति की अवस्था तक ले जाते है। जब मन इस शान्त स्थिति का अनुभव करता है तब न्यूरॉन्स की कम उत्तेजना के कारण मन और शरीर को गहन विश्राम प्राप्त होता है क्योंकि मन और शरीर में घनिष्ठ सम्बन्ध है ।

इस अवस्था को विश्रामपूर्ण जाग्रति की अवस्था कहते है। इस गहन विश्राम के परिणाम स्वरूप स्वभावतः यह हमारे स्नायु संस्थान को तनाव और थकान से मुक्ति दिलाता है।

भावातीत चेतना

अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि भावातीत ध्यान के अभ्यास से हम भावातीत चेतना की स्थिति तक पहुॅच सकते है । लेकिन यहॉ पर स्वाभाविक रूप से यह प्रश्न उत्पन्न होता है कि भावातीत चेतना वास्तव में क्या है? जब हम इस स्थिति तक पहुॅचते हैं, तब हमें कैसा अनुभव होता है ?

प्रायः हम चेतना को तीन अवस्थाओं से परिचित है, जिनका अनुभव हम प्रतिदिन करते है :–

1) **जाग्रति की चेतना** :– जब हमारा मन और शरीर दोनों कियाशील रहते है ।

2) **स्वप्न की चेतना** :– जब हमारा मन और शरीर आंशिक रूप से कियाशील रहते है ।

3) **सुषुप्ति की चेतना** :– जब हमारा मन और शरीर दोनों कियाशील न रहकर विश्राम की अवस्था में रहते है ।

भावातीत चेतना:– चेतना की चतुर्थ अवस्था है। इस अवस्था की विशेषता यह है कि इसमें हम मानसिक रूप से पूर्ण सजग और शारीरिक रूप से गहन विश्राम की अवस्था में रहते है इसीलिये इस अवस्था को विश्राम पूर्ण जाग्रति की संज्ञा दी गई है।



अब यहाँ पर यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि अगर चेतना की यह अवस्था स्वाभाविक रूप से हमारे अन्दर विद्यमान है, तो प्रत्येक व्यक्ति इसका अनुभव क्यों नहीं कर सकता है ? इसका उत्तर यह है कि इसका अनुभव करने के लिये हमें एक तकनीक की आवश्यकता है और महर्षि जी ने मानव कल्याण के लिये वैज्ञानिक तकनीक देकर इसको इतना सरल बना दिया है कि प्रत्येक व्यक्ति की पहुँच इस तक हो सकती है।

भावातीत ध्यान की तकनीक

भावातीत ध्यान की तकनीक में हम मन को उस अवस्था में स्थापित करते है, जहाँ पर कि विचार इसमें होई विध्न नहीं डालते है। जब हमारा मन किसी भी विचार से परेशान नहीं होता है, तब वह पूर्ण शांति और विश्राम के क्षेत्र में स्थित हो जाता है। प्रारंभ में जब व्यक्ति भावातीत ध्यान का अभ्यास करना शुरू करता है, तब मन की इस अवस्था का अनुभव एक दो सेकेण्ड तक ही रहता है, धीरे–धीरे व्यक्ति अभ्यास से इस अवस्था का अनुभव एक दो मिनट तक करने लगता है और अधिक अभ्यास से और अधिक समय तक इसका अनुभव करने लगता है। जब मन भावातीत चेतना के स्तर तक पहुँचता है हम अपने अन्तःकरण में पूर्ण आनन्द का अनुभव करते है। यही वह अवस्था है जब हम अनन्त किया शक्ति सृजनात्मकता और बुद्धिमता से अपने को लाभान्वित करना शुरू करते हैं जो कि हमारे अन्तःकरण में पहले से ही रहता है और भावातीत ध्यान का उद्देश्य भी यही है।

भावातीत ध्यान से मानसिक लाभ

मनोवैज्ञानिकों के अनुसार मनुष्य केवल 5 से 15 प्रतिशत अपने मस्तिष्क की क्षमता का उपयोग करता है इसका अर्थ यह हुआ कि हम केवन 5 से 15 प्रतिशत ही प्रभावशाली रहते हैं । भावातीत ध्यान के द्वारा हमारा सीधा सम्पर्क शेष 45 से 95 प्रतिशत मानसिक क्षमता से भी होता है, जिसका प्रयोग हम साधारण रूप से नहीं करते है। भावातीत ध्यान के प्रतिदिन 15 से 20 मिंनिट प्रातः एवं सायं अभ्यास करने से हम मानसिक रूप से उन्नत होते है। इस प्रक्रिया के द्वारा हमारे मन का विकास होता है और हमारा बोध विस्तृत होता है ।



मानसिक लाभ के अन्य परिणाम निम्नलिखित हैं :–

1 सीखने की क्षमता में वृद्धि

2 समस्या सुलझाने की गति में सुधार

3 शैक्षणिक योग्यता में सुधार

4 उत्पादकता में वृद्धि

5 कार्यक्षमता में वृद्धि

6 कार्य संतुष्टी में वृद्धि

7 आपसी सम्बन्धों में सुधार

8 स्पष्ट और बाधा रहित विचार

भावातीत ध्यान से शारीरिक लाभ

विश्राम किसी भी शारीरिक क्रिया की कुंजी है। शरीर को जब विश्राम मिलता है तो स्वतः ही वह उत्तम स्वास्थ्य और नव जीवन प्राप्त करता है। इसका अनुभव हम रात्रि में करते है, जब हम सोते है तो थकान और तनावों का बहुत सा अंश विश्राम से निकल जाता है हालाकि रात्रि की नींद थकान और तनावों को निकाल देती है, लेकिन विश्राम की यह स्थिति गहन दबे हुये तनावों को निकालने के लिये पर्याप्त नहीं है।

इन तनावों को दूर करने के लिये हमें गहनतम् विश्राम की आवश्यकता होती है । भावातीत ध्यान स्नायु संस्थान को पूर्ण विश्राम देता है ।

जिसके परिणाम निम्नलिखित हैं :–1. शारीरिक अनुकूलता में वृद्धि 2. मनोवैज्ञानिक अनुकूलता में वृद्धि 3. सामाजिक अनुकूलता में वृद्धि 4. स्वास्थ्य में सुधार। 5. तनाव और चिन्ता में कमी।

मन और शरीर का लाभ :– भावातीत ध्यान से स्नायु संस्थान अधिक स्थिर हो जाता है, जिसके परिणाम स्वरूप मन और शरीर के बीच उच्च स्तरीय गहन सह–सम्बन्ध स्थापित हो जाता है ।



इनके प्रमुख लाभ निम्न हैं :–

1. तीव्रतर प्रतिकिया समय 2. उद्वेग में कमी 3. अनिद्रा से मुक्ति 4. व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास 5. सृजनात्मकता में वृद्धि 6. ऊर्जा का उच्च स्तरीय प्रयोग– जिसका परिणाम संतुलित और उत्तम स्वास्थ्य है।

उपलब्धियां:

पिछले 50 वर्षों से भावातीत ध्यान पर विश्व स्तरीय कार्यक्रमों द्वारा मानव ने जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में अनगिनत सफलतायें प्राप्त की हैं। व्यक्तिगत जीवन के अतिरिक्त भावातीत ध्यान के सामूहिक अभ्यास में इतनी क्षमता है कि वह समस्त समाज को प्रभावित करके विश्वभर में सकारात्मक प्रवृत्तियों को विकसित कर सकता है।

वास्तु परिचय

सूत्रधार मंडन द्वारा रचित राजवल्लभ, वास्तुविद्या में अपना महत्वपूर्ण स्थान रखता है। उत्तर भारत के शिल्पी वर्ग में यह एक ग्रन्थ के रूप में मान्य है। इस ग्रन्थ अनेक टीकाएँ उपलब्ध हैं।

इस ग्रन्थ में १४ अध्याय हैं। इस ग्रन्थ का पहला अध्याय मिश्रक लक्षण है जिसमें भूमि चयन, परीक्षण, मुहूर्त तथा माप की विधि का वर्णन है। दूसरा अध्याय वास्तुलक्षण है, इसमें वास्तु पुरुष की उत्पत्ति, विभिन्न उपयोग हेतु वास्तु पद विन्यास तथा मर्म स्थान का वर्णन है। तीसरा अध्याय आयादि लक्षण है, इसमें निर्माण क्षेत्र ज्ञात करने के लिए आयादि सूत्रों का वर्णन है। चौथा अध्याय- नगर, वापी, कूप, तटाक, कुण्ड आदि के लक्षण का वर्णन है। पाँचवां अध्याय- राजगृह निवेश आदि लक्षण है, इसमें राजमहल में विभिन्न कक्षों के नियोजन के बारे में बताया है। छठवाँ अध्याय- एकशाल, द्विशाल गृह लक्षण है। सातवाँ अध्याय में दो शाला, तीन तथा चार शाला वाले घरों का वर्णन है। आठवाँ अध्याय- शयन, सिंहासन, छत्र, गवाक्ष, सभाष्टक, वेदिका तथा दीप स्तम्भ प्रमाण लक्षण है। नवाँ अध्याय- राजगृह आदि के लक्षण बताएँ हैं। दसवाँ अध्याय- गणित क्षेत्राद्भुतलक्षण है, इसमें ज्यामिति के विभिन्न आकारों को बताया है। ग्यारहवाँ अध्याय-दिन शुद्धि, गृहनिवेश, गृहप्रवेश तथा विवाह-मुहूर्त लक्षण है।



बारहवाँ अध्याय- गोचरदिनरात्रिस्वरोदयचक्र मातृकाशकुनलक्षण है। तेरहवाँ अध्याय ज्योतिष लक्षण है तथा अन्तिम चौदहवाँ अध्याय शकुन लक्षण है।

इस प्रकार से राजवल्लभ ग्रन्थ वास्तु के विभिन्न आयामों को अपने में समेटे एक अद्‌भुत ग्रन्थ है। इस शोध प्रबन्ध में हम आधुनिक परिप्रेक्ष्य में इसका परिशीलन करने का प्रयास करेंगे।

व्यक्ति जिस मकान में रहता है, जहाँ पर काम करता है, उसका इन सब बातों पर गहरा प्रभाव पड़ता है। यह सब उसके निर्णय लेने की क्षमता को प्रभावित करते है। निर्णय सही हो, सही समय पर हो तो जिस लक्ष्य को निर्धारित किया हो, जो कार्य सोचा है, उसे प्राप्त करने में आसानी होती है। लक्ष्य प्राप्त करने से, सफलता प्राप्त करने से उत्साह बढ़ता है, अर्थ अर्थात् धन की प्राप्ति होती है, जिससे समृद्धि आती है। धर्म से कमाया गया अर्थ या धन अपने साथ सुख व शान्ति लाता ही है। जिससे व्यक्ति का उत्तरोतर विकास होता है। जिसके कारण वह सन्तुष्ट होकर सबके साथ मिलजुल कर, भाईचारे का व्यवहार करता है, तथा बदले में भी वही पाता है, सीधे शब्दों में कहें तो व्यवहार कुशल होता है, झुझंलाता नहीं है, कड़वा नहीं बोलता है। यह सब उसके विकास में सहायक होते हैं। परिवार और अधिक खुश रहता है, परिवार के जनों की इच्छाओं की पूर्ति होती है, जिससे वे भी खुश रहते हैं। इस प्रकार हम देखते हैं कि वास्तु के अनुसार निर्मित किए गए निवास में व्यक्ति के रहने से वह स्वयं तथा परिवार प्रसन्न रहता है तथा बाधारहित सफलता पाता है। व्यक्ति, परिवार, समाज, नगर, प्रान्त तथा देश प्रगति करता है, शान्ति का अनुभव करता है, सन्तुष्ट होता है, स्वस्थ रहता है तथा इससे आगे हम देखते हैं तो पूरा विश्व ही खुशहाली की ओर बढ़ता है। अस्तु।

इस शोधप्रबन्ध की उपयोगिता

जैसा कि हम जानते हैं कि सूत्रधार मण्डन द्वारा राजवल्लभ ग्रन्थ की रचना की गई है। सूत्रधार मण्डन द्वारा ही मंदिर निर्माण हेतु प्रासाद मण्डन ग्रन्थ की रचना की गई। इन्होंने ने ही मूर्ति कला पर रुप-मण्डन ग्रन्थ की रचना की। आज के समय की आवश्यकता है कि किस प्रकार कालजयी वास्तुकला को आज के समय में उपयोगी बनाया जाए। इस शोध प्रबन्ध के माध्यम से राजवल्लभ ग्रन्थ को आधार बनाकर आधुनिक समय के परिप्रेक्ष्य में इसका परिशीलन किया जाएगा।



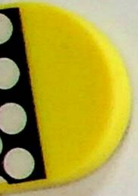
सूत्रधारमण्डन कृत
राजवल्लभ
का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में
परिशीलन

विषय वस्तु



अध्याय-१

मिश्रक लक्षण व वास्तुलक्षण



अध्याय-१

मिश्रक लक्षण व वास्तुलक्षण

अध्याय-१

मिश्रक लक्षण व वास्तुलक्षण



श्री

राजवल्लभ

राजवल्लभ ग्रन्थ जैसा कि नाम से ही स्पष्ट है राजवल्लभ- अर्थात् राजाओं को प्रिय, इस ग्रन्थ की रचना राजाओं की प्रसन्नता के लिए की गई है। राजगृह व सामान्य जनों के घरों आदि के बारे में वर्णन है। लगभग १५ वीं शताब्दी में राजा कुम्भा के कुशल स्थपति सूत्रधार मंडन ने अपने जीवनकाल में वास्तु से संबंधित अनेक ग्रन्थ लिखे। इनमें राजवल्लभ का प्रमुख स्थान है। उनके अन्य प्रसिद्ध ग्रन्थ रूपमंडन, प्रासादमंडन, वास्तुसार, आदि हैं। पिछले छह सौ वर्षों से यह ग्रन्थ, शिल्पियों का अत्यन्त प्रिय रहा है। जब इसके कारणों का विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि लगभग ४६० श्लोकों में वास्तुविद्या के सभी आयामों को इसमें समेटा गया है।

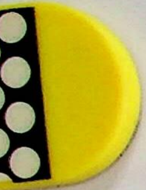
नगर-नियोजन, दुर्ग संरचना, गणित, वेदी, ज्योतिष, जलाशय निर्माण, मुहूर्त, गृहनिर्माण, वर्णानुसार भूमि चयन, परीक्षण, शल्यज्ञान, सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना इत्यादि निर्माण की विधि का वर्णन किया गया है।

एक शाला से चार शाला वाले भवन, भवन के विभिन्न अंग तथा गृह प्रवेश के साथ-साथ पलंग, कुर्सी, सिंहासन के निर्माण, वाटिका, अश्व शाला, गजशाला के साथ-साथ शकुन शास्त्र का वर्णन भी इसमें किया गया है। वास्तव में यह ग्रन्थ गागर में सागर के समान है।

पूर्ववर्ती आचार्यों के द्वारा रचित विभिन्न वास्तुग्रन्थों को आधार बनाकर यह ग्रन्थ शिल्पियों में शिरमौर रहा है, इसलिए यह राजाओं को भी प्रिय रहा है, अतः यह राजवल्लभ कहलाया।

अनेक शिल्पी परिवारों में राजवल्लभ तथा विश्वकर्मप्रकाश ग्रन्थ का पूजन भी किया जाता है। इसकी विभिन्न प्रतियाँ उत्तर पश्चिमी मध्यप्रदेश, राजस्थान व गुजरात में पाई जाती हैं।

आज से लगभग १२० वर्ष पूर्व बडौदा से इसका गुजराती भाषान्तर प्रकाशित हुआ। उसके पश्चात् हिन्दी में भी अनेक टीकाएँ लिखी गई। सरल भाषा शैली, स्पष्ट अर्थ, सरल प्रवाह, विभिन्न विषयों का समावेश आदि इस ग्रन्थ को विशिष्टता प्रदान करते हैं।



इस ग्रन्थ का प्रथम अध्याय मिश्रक लक्षण के नाम से बताया गया है। इसमें मंगलाचरण, घर की प्रशंसा, भूमिचयन, परीक्षण, शल्यज्ञान, खुदाई, शिलान्यास, वृक्ष विशेष, द्वार तथा माप एवं सूत्रधार (वास्तुशास्त्री) के लक्षण का वर्णन किया गया है।

१.१ मिश्रक लक्षण

१.१.१ मंगलाचरण

संगति-

किसी भी कार्य को प्रारम्भ करते समय मंगलाचरण को अत्यन्त आवश्यक माना गया है। मंगलाचरण दो दृष्टि को ध्यान में रखकर किया जाता है। इससे चित्त या मन एकाग्र होता है। दूसरा ग्रन्थकार या ग्रन्थकर्ता अपने आप को इष्ट या गुरु के चरणों में अपनी अहंता पूर्ण रूप से समर्पित कर उपकरण की भाँति कार्य करता है। वह यह मानकर चलता है कि मैं तो केवल निमित्त हूँ, माध्यम हूँ, ईश्वर, गुरु या इष्ट जैसी प्रेरणा देंगे मैं वैसा करूँगा। अपने यहाँ अनेकानेक पुराण, आगम आदि ग्रन्थों की रचना हुई, इनमें रचनाकार का पता भी नहीं चलता है। ग्रन्थकार ने अपने आप को एकदम गौण या नगण्य बना दिया है।

यहाँ भी सबसे पहले गणेशजी, उसके पश्चात् ज्ञान की देवी सरस्वती जी, उसके पश्चात् देवों के शिल्पी विश्वकर्माजी की वन्दना या स्तुति करते हैं।

इस क्रम में जब हम द्वितीय श्लोक को देखते हैं तो पाते हैं कि इसमें गणेशजी की प्रतिमा का वर्णन है। जब हम उनके स्वरूप व ध्यान का चिन्तन करते हैं तो मन या चित्त एकाग्र होता है। एकाग्र अर्थात् एक अग्र, एक अग्र अर्थात् नुकीला। क्योंकि नुकीला शस्त्र ही लक्ष्य का भेदन करने में सक्षम होता है। अतः इस वास्तुविद्या का ज्ञान प्राप्त करने हेतु चित्त या मन का एकाग्र होना अत्यन्त आवश्यक है। जब विषय की गहराई में जाएँगे तब निघण्टु विद्या के माध्यम से गणेश जी की प्रतिमा का रहस्य भी उद्घाटित होगा।

अनुष्टुप्

आनन्दं वो गणेशार्कविष्णुगौरीमहेश्वराः।
देवाः कुर्युः श्रियं सौख्यमारोग्यं गृहसम्पदः।१।

गणपति, सूर्य, विष्णु, पार्वती और महादेव आपको आनन्द दें तथा आपको ऐसा घर प्रदान करें, जो सदा लक्ष्मी, सुख व आरोग्य से युक्त रहे।



गणेश जी की स्तुति

देवं नमामि गिरिजात्मजमेकदन्तं सिन्दूरचर्चिततनुं सुविशालशुण्डम्।
नागेन्द्रमण्डितवपुर्युतसिद्धिबुद्धिं सेव्यं सुरोरगनरैः सकलार्थसिद्ध्यै।।२।।

जिनका एक दांत है, जिनका शरीर सिंदूर से शोभायमान है, जिनकी अत्यन्त विशाल सूँड़ है, जिनका शरीर सर्प से सुशोभित है, सिद्धि व बुद्धि (नाम की दो स्त्रियाँ जिनके पास रहती हैं) से सेवित हैं (अर्थात् जो सिद्धि व बुद्धि से युक्त है) इतना ही नहीं, सभी कार्य की सिद्धि के लिए देव, नाग तथा मनुष्यजन जिनकी सेवा करते हैं, ऐसे पार्वती के पुत्र की मैं वन्दना करता हूँ।

स्रग्धरा

सरस्वती जी की स्तुति

या ब्रह्माद्यैरलक्ष्या त्रिभुवननमिता ब्रह्मपुत्री शिवाद्या
ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रः प्रणमति बहुशो यां सदानन्दरूपाम्।
वाणी चैतन्यरूपे वसति च सकलप्राणिनिद्राक्षुधातृट्
सा नित्यं सुप्रसन्ना वितरतु विभवं विश्वरूपा च लोके।।३।।

जिनको जानने में ब्रह्मादि समर्थ नहीं हैं तथा जिन्हें तीनों लोक नमस्कार करते हैं, कल्याणकारी हैं और आद्य है, ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र, जिन्हें बारम्बार नमस्कार करते हैं, वह सदा आनन्द रूप से, सभी प्राणियों में निद्रा, क्षुधा (भूख) और तृष्णा के रूप में रहती है, ऐसी चैतन्यरूपी ब्रह्मपुत्री (सरस्वती), मुझ पर प्रसन्न होकर, लगातार विश्व को अवलोकन करने की शक्ति प्रदान करें।

विश्वकर्मा जी की स्तुति

कम्बासूत्राम्बुपात्रं वहति करतले पुस्तकं ज्ञानसूत्रं
हंसारूढस्त्रिनेत्रः शुभमुकुटशिरः सर्वतो वृद्धिकायः।
त्रैलोक्यं येन सृष्टं सकलसुरगृहं राजहर्म्यादिरम्यं
देवोऽसौ सूत्रधारो जगदखिलहितः पातु वो विश्वकर्मा।।४।।

जिनके एक हाथ में गज (हस्त, मापने की स्केल), दूसरे में सूत्र, तीसरे हाथ में कमण्डल, चौथे हाथ में पुस्तक व ज्ञानसूत्र धारण कर रखा है, जो हंस पर आरूढ़ हैं, जिनके तीन नेत्र हैं, जिन्होंने मस्तक पर सुन्दर मुकुट धारण कर रखा है, इतना ही नहीं वरन् सब प्रकार से जिनका शरीर वृद्धि को प्राप्त है तथा जिन्होंने तीनों लोक के सभी प्रकार के देवघर, राजघर आदि (सर्वसामान्य लोगों के) सभी सुन्दर घरों की रचना की है, ऐसे जगत के हितकर्ता विश्वकर्मा, आपकी रक्षा करें।



संगति-इस प्रकार ग्रन्थ का प्रारम्भ करते समय सबसे पहले गणेशजी, विद्या की देवी सरस्वती जी तथा वास्तुशास्त्र के शिल्पी (आचार्य) विश्वकर्मा जी की स्तुति की गई है। इसके पश्चात अब जिस शास्त्र का आरम्भ करते हैं, उसके महत्व को प्रतिपादित करते हैं।

१.१.२ घर की प्रशंसा

किसी भी शास्त्र या ग्रन्थ को आरम्भ करते समय सबसे पहले विषय का प्रतिपादन किया जाता है। उसके महत्व को समझाया या बताया जाता है। इस ग्रन्थ का विषय मुख्य रूप से घर है इसलिए सबसे पहले घर की महिमा का प्रतिपादन किया गया है, यह बताया गया है कि चार आश्रम ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ व संन्यास में गृहस्थ आश्रम प्रमुख है, अन्य आश्रमीजनों का जीवन गृहस्थ आश्रम पर आश्रित है। इसी प्रकार चार पुरुषार्थ धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष में से तीन को पाने के लिए घर की आवश्यकता है। इसी बात को यहाँ श्लोक में बताया गया है कि स्त्री, पुत्र आदि का भोग व सुख मिलता है, आश्रयस्थल है आदि-आदि।

आज के समय में भी जब व्यक्ति दिन भर कार्य करने के उपरान्त घर आता है, तब वहाँ रहकर पुनः ऊर्जावान होता है, आमोद-प्रमोद करता है, विश्राम कर ऊर्जा पाकर पुनः कार्य हेतु जाता है।

पहले के समय भी सामान्यतः व्यक्ति का एक सपना (स्वप्न) होता था कि रिटायरमेन्ट तक अपना एक घर हो, आज भी जो युवक नौकरी आदि में लगे हैं वे भी शीघ्रातिशीघ्र घर तथा वाहन का स्वप्न संजोते हैं, इससे आधुनिक समय में भी घर की उपयोगिता सिद्ध होती है।

शार्दूलविक्रीडित

स्त्रीपुत्रादिक भोगसौख्यजननं धर्मार्थकामप्रदं
जन्तूनां लयनं सुखास्पदमिदं शीताम्बुघर्मापहम्।
वापीदेवगृहादिपुण्यमखिलं गेहात्समुत्पद्यते।
गेहं पूर्वमुशन्ति तेन विबुधाः श्रीविश्वकर्मादयः।।५।।

जिस घर में स्त्री, पुत्र आदि का भोग और सुख मिलता है, जिस घर से धर्म, अर्थ और काम की प्राप्ति होती है, जो घर प्राणी का विश्राम स्थल है, इतना ही नहीं ठण्ड, वर्षा और गर्मी के भय का जिससे निवारण होता है और बावड़ी, कुआँ का सुख तथा देवमंदिर आदि निर्माण कार्य घर से उद्भूत होते हैं इसलिए विश्वकर्मा आदि सभी देवता प्रथमतः घर की इच्छा करते हैं।



१.१.३ गृहारम्भ

ऐसा माना जाता है कि शुभ या कार्य का अच्छा आरम्भ ही कार्य की अर्ध समाप्ति का सूचक है। इसी संदर्भ में यहाँ कहा गया है कि घर का आरम्भ शुभ मुहूर्त या समय पर करना चाहिए। शुभ महीना हो, नक्षत्र बलवान हो, शुक्ल पक्ष हो, शुभ दिन हो, शुभ शकुन हो तथा सूर्य उत्तरायण हो।

जैसा कि हम जानते हैं कि पृथ्वी का ७३ प्रतिशत भाग जल से आवृत है इतनी विशाल जलराशि चन्द्रमा से प्रभावित होती है। चन्द्रमा की तिथियों के अनुसार समुद्र में पानी का स्तर घटता-बढ़ता है। हमारे शरीर में भी लगभग ७३ प्रतिशत जलीय भाग है अतः हम पर भी चन्द्रमा का अत्यधिक प्रभाव होता है। चन्द्रमा को मन का कारक कहा गया है, इसीलिए कहा है कि जब चन्द्रमा बलवान हो तब घर का आरम्भ करना चाहिए। इसी प्रकार कहा है कि शुक्ल पक्ष में आरम्भ करें क्योंकि चन्द्रमा की कला शुक्ल पक्ष में प्रतिदिन बढ़ती है। उत्तरायण का सूर्य भी अपने यहाँ शुभ कहा है।

उपजाति

सिद्ध्यै गृहारम्भमुशन्ति वृद्धा यथोदिते मासि बलर्क्षपक्षे।
शशाङ्कवीर्ये सुदिने निमित्ते शुभे रवौ सौम्यगते प्रवेशः।।६।।

शास्त्र के अनुसार बताए गए महीने में, बलयुक्त नक्षत्र में, शुक्ल पक्ष में, चन्द्रमा के बल में, शुभ दिन, शुभ शकुन देखकर, उत्तरायण के सूर्य में, घर का आरंभ व प्रवेश करना चाहिए।

नक्षत्र २७ होते हैं। इनकी गणना अश्विनी से प्रारम्भ होती है।

एक महीने में दो पक्ष (१५-१५ दिन के) होते हैं-शुक्ल पक्ष तथा कृष्ण पक्ष।

नक्षत्र-

(१) अश्विनी	(१०) मघा	(१९) मूल
(२) भरणी	(११) पूर्वा फाल्गुनी	(२०) पूर्वाषाढा
(३) कृतिका	(१२) उत्तरा फाल्गुनी	(२१) उत्तराषाढा
(४) रोहिणी	(१३) हस्त	(२२) श्रवण
(५) मृगशिरा	(१४) चित्रा	(२३) धनिष्ठा
(६) आर्द्रा	(१५) स्वाती	(२४) शतभिषा
(७) पुनर्वसु	(१६) विशाखा	(२५) पूर्वाभाद्रपद
(८) पुष्य	(१७) अनुराधा	(२६) उत्तराभाद्रपद
(९) आश्लेषा	(१८) ज्येष्ठा	(२७) रेवती



मासानुसार फल

यहाँ मास के अनुसार गृहारम्भ का मुहूर्त बताया है यह बताया है कि ज्येष्ठ मास में जब बहुत अधिक गर्मी होती है या धूप पड़ती है ऐसे समय गृह का आरम्भ न करें, करें तो मृत्यु हो सकती है। क्योंकि गृहराम्भ के समय बहुत अधिक दौड़-धूप करना होती है। गृह स्वामी को ऐसे समय लू लगने की आशंका बनी रहती है। ठीक इसी प्रकार जब वर्षा अपनी चरम सीमा पर हो, जैसे भाद्रपद के मास में गृहारम्भ करने पर घर शून्य रहता है अर्थात् अत्यधिक वर्षा में गृहारम्भ करें तो डोबरे में पानी भर जाना, सीमेन्ट आदि का गीला होना तथा अन्य दुर्घटना की आशंका बनी रहती है।

चैत्रे शोककरं गृहादिरचितं स्यान्माधवेऽर्थप्रदं।
ज्येष्ठे मृत्युकरं शुचौ पशुहरं तद् वृद्धिदं श्रावणे।
शून्यं भाद्रपदेऽश्विने कलिकरं भृत्यक्षयं कार्तिके
धान्यं मार्गसहस्ययोर्दहनभीर्माघे श्रियः फाल्गुने।।७।।

चैत्र महीने में घर का आरंभ करने पर शोक (दुख) उत्पन्न होता है। वैशाख में धन की प्राप्ति, ज्येष्ठ में मृत्यु, आषाढ़ में पशुओं का नाश, श्रावण में पशुओं की वृद्धि, भाद्रपद में घर का आरंभ करें तो घर शून्य रहता है। अश्विन में क्लेश, कार्तिक में नौकर का नाश, मार्गशीर्ष एवं पौष में धान्य की प्राप्ति, माघ में अग्नि का भय तथा फाल्गुन मास में घर का आरंभ करने पर लक्ष्मी की वृद्धि होती है।

व्याख्या-महीने १२ होते हैं, इन्हें चन्द्रमास भी कहते हैं। महीनों की गणना चैत्र से प्रारम्भ होती है। महीने तथा उन महीनों में गृहारम्भ करने का फल इस प्रकार है-

राशियाँ भी १२ होती है, अंग्रेजी महीने भी १२ होते हैं। राशियों की गणना मेष से प्रारम्भ होती है। राशियाँ इस प्रकार हैं- (१) मेष (२) वृषभ (३) मिथुन (४) कर्क (५) सिंह (६) कन्या (७) तुला (८) वृश्चिक (९) धनु) (१०) मकर (११) कुम्भ (१२) मीन।

चन्द्रमास, अंग्रेजी महीने तथा सूर्य किस राशि में है, इसका सम्बन्ध इस प्रकार बताया जा सकता है-

यह सारणी एकदम सटीक हो यह आवश्यक नहीं है. यह केवल संभावित संबंध बताती है।



चान्द्रमास	अंग्रेजी महीना	सौरमास
चैत्र	१४ मार्च-१३ अप्रेल	मीन
वैशाख	१४ अप्रेल-१४ मई	मेष
ज्येष्ठ	१५ मई-१४ जून	वृषभ
आषाढ़	१५जून-१५जुलाई	मिथुन
श्रावण	१६ जुलाई-१६ अगस्त	कर्क
भाद्रपद	१७ अगस्त- १६ सितम्बर	सिंह
अश्विन	१७ सितम्बर-१६ अक्टोबर	कन्या
कार्तिक	१७ अक्टोबर-१५ नवम्बर	तुला
मार्गशीर्ष	१६ नवम्बर- १५ दिसम्बर	वृश्चिक
पौष	१६ दिसम्बर-१३ जनवरी	धनु
माघ	१४ जनवरी-१२ फरवरी	मकर
फाल्गुन	१३ फरवरी-१३ मार्च	कुम्भ

माहानुसार गृहरंभ फल	
माह	गृहारम्भ फल
चैत्र	शोक उत्पन्न होता है
वैशाख	धन की प्राप्ति
ज्येष्ठ	मृत्यु
आषाढ़	पशुओं का नाश
श्रावण	पशुओं की वृद्धि
भाद्रपद	घर शून्य रहता है
अश्विन	क्लेश
कार्तिक	नौकर का नाश
मार्गशीर्ष	धान्य की प्राप्ति
पौष	धान्य की प्राप्ति
माघ	अग्नि का भय
फाल्गुन	लक्ष्मी की वृद्धि

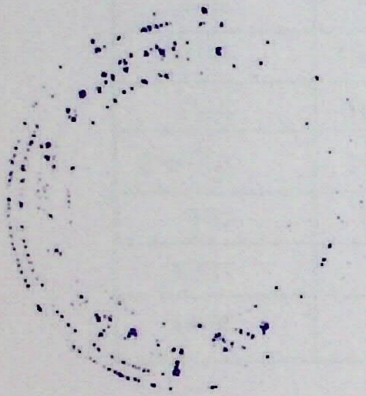
जब सूर्य कर्क या सिंह राशि में हो तो पूर्व दिशा का घर बनवाना शुभ होता है। चित्र के अनुसार देखने पर हम पाते हैं कि जिस दिशा में सूर्य है उससे एक दिशा पहले की दिशा में घर का बनवाना शुभ है तथा सूर्य की विपरीत दिशा में घर बनवाना अशुभ होता है। इसी को कहा है कि यह राहू की दिशा है या वत्स का मुख है।

सूर्य राशि अनुसार

आदित्ये हरिकर्कनक्रघटगे पूर्वापरास्यं गृहं

कर्तव्यं तुलामेषवृश्चिकवृषे याम्योत्तरास्यं तथा।





द्वारं भिन्नतया करोति कुमति रोगोऽर्थनाशस्तदा
कन्यामीनधनुर्गते मिथुनगे चास्मिन्न कार्यं गृहम्।।८।।

सिंह, कर्क, मकर व कुम्भ की राशि में सूर्य होने पर पूर्व व पश्चिम दिशा वाले द्वार का घर बनवाए। तुला, मेष, वृश्चिक व वृष के सूर्य होने पर दक्षिण एवं उत्तर दिशा के मुख वाले घर का आरम्भ करना चाहिए। यदि कुमति से कोई विपरीत करे तो द्रव्य (धन) का नाश होता है। कन्या, मीन, धनु व मिथुन राशि में सूर्य होने पर घर न बनवाए।



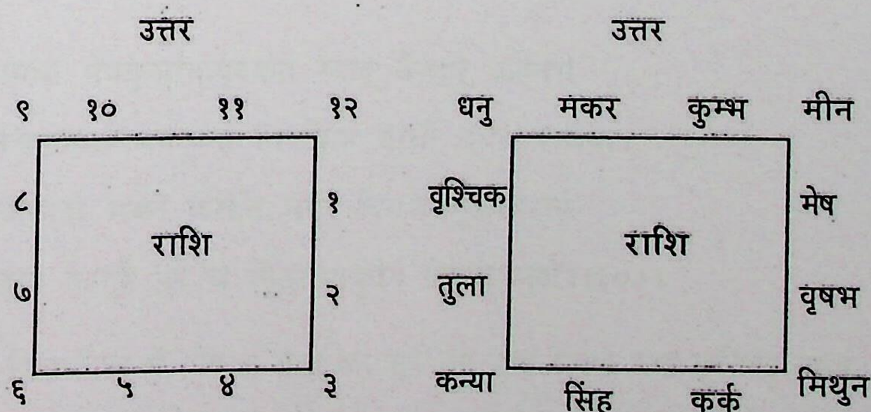
वत्सचक्र

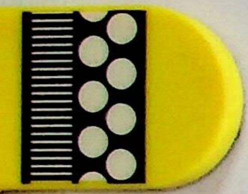
कन्यादित्रिषु पूर्वतो यमदिशि त्याज्यं च चापादितो
द्वारं पश्चिमतस्त्रिके जलचरात् सौम्यं रवौ युग्मतः।
यस्माद् वत्समुखं दिशासु भवनं द्वारादिकं हानिकृत्
सिंहं चापि वृषं च वृश्चिकघटौ याते हितं सर्वतः।।९।।

कन्या, तुला तथा वृश्चिक इन तीन राशियों में सूर्य होने पर, वत्स का मुख पूर्व में होता है। धनु, मकर व कुम्भ राशि में सूर्य वत्स का मुख दक्षिण में, मीन, मेष तथा वृष के सूर्य में पश्चिम में एवं मिथुन, कर्क, सिंह के सूर्य में वत्स का मुख उत्तर दिशा में होता है।

वत्स के मुख के सामने घर का द्वार होने पर हानि तथा वत्स के पीछे द्वार होने पर आयु का क्षय होता है। लेकिन सिंह, वृषभ, वृश्चिक एवं कुम्भ इन चार राशियों के सूर्य में चारों दिशाओं के द्वार में, वत्स का दोष नहीं लगता है।

व्याख्या-श्लोक ८ तथा ९ को संयुक्त रूप से समझने का प्रयास करेंगे-





सबसे पहले दिशा व राशियों का सम्बन्ध जाने, जो इस प्रकार है-

राशि	सूर्य दिशा	वत्स
कन्या, तुला तथा वृश्चिक	पश्चिम	पूर्व
धनु, मकर व कुम्भ	उत्तर	दक्षिण
मीन, मेष तथा वृष	पूर्व	पश्चिम
मिथुन, कर्क, सिंह	दक्षिण	उत्तर

चित्र देखें जिस दिशा में सूर्य होता है (राशि की दिशा में) उससे विपरीत दिशा (सामने वाली दिशा) में वत्स का मुख होता है। सूर्य दिशा में हो वह दिशा तथा उसके सामने वाली दिशा (वत्स का मुख वाली दिशा) में गृहारम्भ शुभ नहीं होता है. दाहिनी और बाई ओर वाली दिशा के मुख वाला घर बनवाना शुरू करना शुभ होता है।

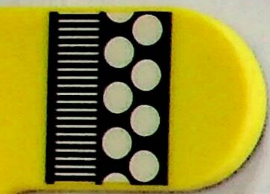
विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के अध्याय १, २ व ३ में गृहारम्भ मुहूर्त का विस्तार से वर्णन किया गया है। वहाँ मास, सूर्य राशि, चन्द्र नक्षत्र, तिथि, वार, योग, लग्न आदि के अनुसार गृहारम्भ मुहूर्त बताया गया है।

१.१.४ दिशा ज्ञान

इस श्लोक में छह प्रकार से दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन मिलता है। श्लोक क्रमांक १० में पाँच प्रकार का वर्णन है, उसमें रात्रि में दिशा ज्ञात करने की विधि बताई गई है। छठवें प्रकार का वर्णन श्लोक क्रमांक ११ में हैं। पूरी प्लानिंग या नियोजन दिशा के आधार पर किया जाता है। अतः शुद्ध दिशा को जानना अत्यन्त आवश्यक है।

प्राची मेषतुलारवावुदयति स्याद् वैष्णवे वह्निभे
चित्रास्वातिभमध्यगा निगदिता प्राची बुधैः पञ्चधा।
प्रासादो भवनं करोति नगरं दिग्(ङ्)मूढमर्थक्षयं
हर्म्ये देवगृहे पुरे च नितरामायुर्धनं दिग्(ङ्)मुखे।।१०।।

जिस दिशा में, मेष व तुला का सूर्य उगे तथा श्रवण तथा कृतिका नक्षत्र उगे, उसे पूर्व दिशा जानना। चित्रा एवं स्वाति इन दो नक्षत्रों के मध्य में पूर्व दिशा समझना। इस प्रकार विद्वानों ने पाँच प्रकार से पूर्व दिशा को बताया है। इस प्रकार दिशा साधन कर घर, प्रासाद व नगर बनवाए तो आयु और धन की



वृद्धि होती है। लेकिन दिग्मूढ होने पर आयु व धन का नाश होता है।

व्याख्या-पूर्व दिशा ५ प्रकार से ज्ञात करने का विवरण यहाँ दिया गया है-

(१) मेष राशि का सूर्य के उगने की दिशा

(२) तुला राशि के सूर्य के उगने की दिशा

(३) श्रवण नक्षत्र के उगने की दिशा

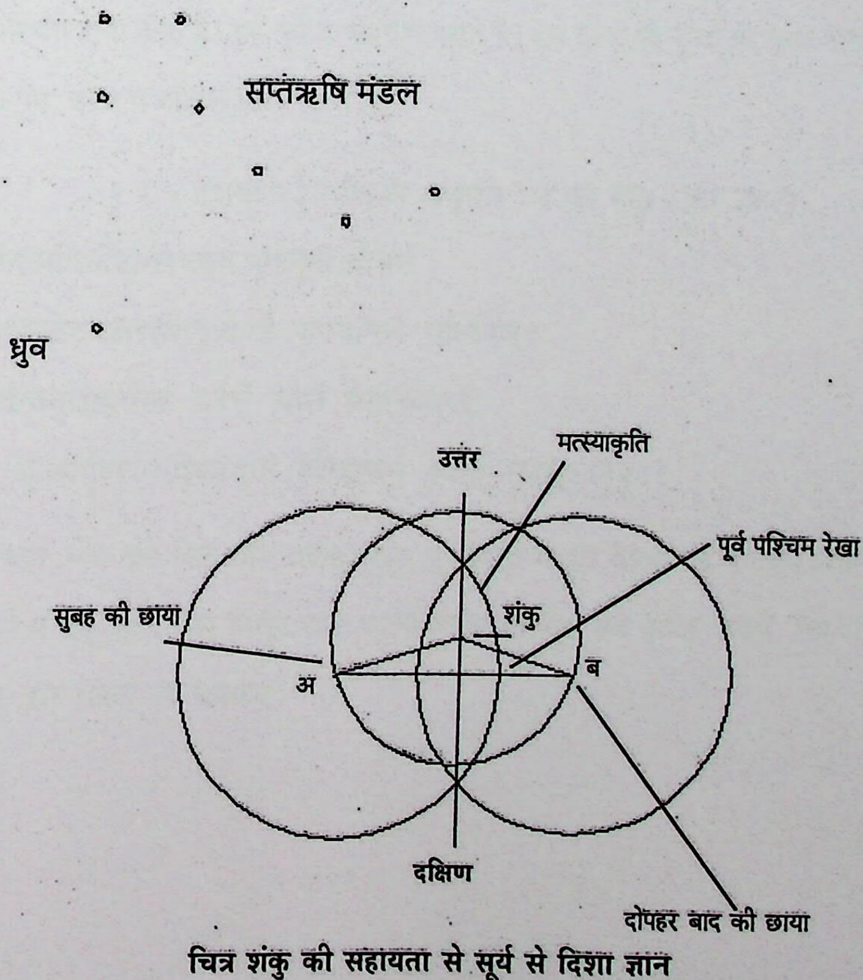
(४) कृतिका नक्षत्र के उगने की दिशा

(५) चित्रा व स्वाती नक्षत्र के मध्य की दिशा

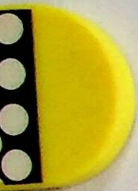
तारे मार्कटिके ध्रुवस्य समतां नीतेऽवलम्बे नते

दीपाग्रेण तदैक्यतश्च कथिता सूत्रेण सौम्या दिशा।

सप्तऋषि मंडल के आगे के दो तारे सीधी रेखा में जो तारा आता है, वह ध्रुव तारा है। ध्रुव व ध्रुव की माकड़ी के शुरू दो तारे से अवलम्ब एक सूत्र में लें, उस अवलम्ब की पीछे, एक घड़े के ऊपर एक दिया रखकर देखें, दीया व अवलम्ब एक सूत्र में आए तो दीये वाली दिशा दक्षिण होती है। दीए के आगे वाली दिशा उत्तर दिशा होती है।



चित्र शंकु की सहायता से सूर्य से दिशा ज्ञान



व्याख्या-यहाँ यह बताया है कि प्लाट पर या खुले भाग पर एक दीया रखें। सप्तऋर्षि तारों के आगे के दो तारे तथा दीया के लौ एक ही सीध में आएँ इस प्रकार के एक सूत्र (धागा या रस्सी) प्लाट पर फैलाएँ। यह सूत्र का अगला सिरा उत्तर तथा पिछला सिरा दक्षिण दिशा बताता है।

पूर्व-पश्चिम तथा उत्तर-दक्षिण दिशा ज्ञात करने की विधि

इस विधि में यह विशेषता है कि इसमें पृथ्वी पर उपस्थित चुम्बकीय क्षेत्र का प्रभाव नहीं पड़ता है।

शङ्कोर्नेत्रगुणे तु मण्डलवरे छायाद्वयान्मत्स्ययो-
र्जाता यत्र युतिस्तु शङ्कुतलतो याम्योत्तरे स्तः स्फुटे।।११।।

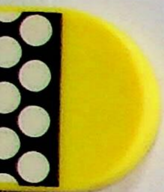
बत्तीस अंगलु के वृत्त के मध्य में (बारह अंगुल का) शंकु रखना, जहाँ शंकु की छाया वृत्त में प्रवेश (स्पर्श) करे वहाँ पश्चिम, जहाँ निकल जाए वहाँ पूर्व और दोनों बिन्दुओं से मत्स्य बनाने से उनके योग से की हुई रेखा दक्षिणोत्तर होती है।

व्याख्या-दिन के प्रारम्भ होने पर, उपरोक्त प्रकार का शंकु भूमि पर स्थापित करना चाहिए। भूमि (प्लाट) के मध्य में शंकु से दोगुना प्रमाण का वृत्त बनाए। उस वृत्त पर सूर्य की छाया, दोपहर के पहले तथा दोपहर के पश्चात वृत्त के जिस बिन्दु को स्पर्श करे उसे चिह्नित करें। इन दोनों बिन्दुओं के मिलाने पर जो रेखा प्राप्त होती है, वह पूर्व-पश्चिम रेखा होती है। इसे पूर्व व पश्चिम कहते हैं। इन दोनों बिन्दुओं के मध्य मत्स्याकृति बनाने पर उसके सिर व पूँछ, उत्तर व दक्षिण दिशा होती है।

१.१.५ स्वामी की राशि के अनुसार घर का मुख (द्वार ज्ञान)

राशीनामलिमीनसिंहभवनं पूर्वामुखं शोभनं
कन्याकर्कटनक्रराशिगृहीणां याम्याननं मन्दिरम्।
राशेर्धन्वतुलायुगस्य सदनं शस्तं प्रतीचीमुखं
पुंसां कुम्भवृषाजराशिजनुषां सौम्याननं स्याद् गृहम्।।१२।।

वृश्चिक, मीन तथा सिंह राशि वाला पुरुष, पूर्व दिशा में द्वार वाला घर बनवाए। कन्या, मकर, कर्क वाला दक्षिण में व धनु, तुला और मिथुन राशि वाला व्यक्ति पश्चिम एवं कुम्भ, वृषभ, मेष राशि वाला पुरुष, उत्तर दिशा के द्वार वाला घर बनवाए।



व्यक्ति की राशि	द्वार की शुभ दिशा
वृश्चिक, मीन, सिंह	पूर्व
कन्या, मकर, कर्क	दक्षिण
धनु, तुला, मिथुन	पश्चिम
कुम्भ, वृषभ, मेष	उत्तर

१.१.६ भूमि चयन

ब्राह्मणों के लिए सफेद, क्षत्रिय के लिए लाल, वैश्य के लिए सुनहरा तथा शूद्र के लिए काला रंग शुभ कहा गया है। यहाँ मिट्टी के रंग के माध्यम से रंग के गुण बताए गए हैं। यह बताया गया है कि घर में सफेद रंग का प्रयोग करने से ब्राह्मणोचित अर्थात् सात्विक, अध्ययन-अध्यापन के गुण विकसित होते हैं।

श्वेता ब्राह्मणभूमिका च घृतवद्गन्धा शुभस्वादिनी
रक्ता शोणितगन्धिनी नृपतिभूः स्वादे कषाया च सा।
स्वादेऽम्ला तिलतैलगन्धिरुदिता पीता च वैश्या मही
कृष्णा मत्स्यसुगन्धिनी च कटुका शूद्रेति भूलक्षणम्।।१३।।

जो भूमि सफेद रंग की, घी जैसी सुगन्ध तथा सुस्वाद वाली हो, उस भूमि पर ब्राह्मण घर बनवाए। जिस भूमि का रंग लाल हो, जिसमें रक्त के समान गन्ध आती हो तथा जो स्वाद में कषाय हो, वह क्षत्रिय के लिए उपयुक्त है। जिस भूमि का रंग पीला हो, तिल के तेल के समान गन्ध हो, स्वाद में खट्टी हो, वह भूमि वैश्य के लिए शुभ है। जिस भूमि का रंग काला हो, गन्ध मछली के समान हो, स्वाद में कटु हो, वह भूमि शूद्र के लिए उपयुक्त है।

वर्ण	रंग	स्वाद	गन्ध
ब्राह्मण	सफेद	मीठा	घी
क्षत्रिय	लाल	कषाय	रक्त
वैश्य	पीला	खट्टा	तेल
शूद्र	काला	कटु	मछली

भावप्रकाश निघण्टु (आयुर्वेद का ग्रन्थ) में स्वाद इस प्रकार बताए हैं-

मधुर रस- शकर के समान

अम्ल रस- इमली



लवण- सेंधा नमक

कड़वा-काली मिरच

तिक्त-निम्ब

कषाय-हरड़

भूमि के रंग, गन्ध व स्वाद के माध्यम से रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताए हैं। इस प्रकार के रंग का प्रयोग करने पर वर्ण के अनुरुप गुण विकसित होते हैं। जैसे सफेद रंग का प्रयोग करने पर ब्राह्मण के लिए उचित गुण मिलते है। यही बात गन्ध व स्वाद का उपयोग करने पर भी होती है। रंग का प्रयोग घर में पर्दे, फ्लोरिंग, दीवार का रंग आदि के रूप में उपयोग कर सकते हैं। इसी प्रकार स्वाद का उपयोग खाद्य पदार्थ के रूप में कर सकते हैं।

जैसा कि हम जानते है कि प्रत्येक मनुष्य की प्रकृति अलग होती है। हर एक व्यक्ति के स्वभाव में दूसरे से भिन्नता पाई जाती है। उसकी रुचि दूसरे से भिन्न होती है। एक व्यक्ति को एक वस्तु पसंद है, तो वही वस्तु दूसरे को पसंद नहीं है। किसी को क्रीम कलर अच्छा लगता है तो दूसरे को लाल रंग अच्छा लगता है। किसी को अचार पसंद है तो दूसरे को मिठाई। वास्तुशास्त्र में व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार नियम बनाए गए हैं कि किस प्रकार की प्रकृति वाले व्यक्ति के लिए वास्तुशास्त्र के कौन से नियम लागू होगें।

वास्तुशास्त्र में व्यक्तियों को चार श्रेणी या वर्गो या वर्णो में विभाजित किया गया है। यही व्यवस्था वर्णाश्रम व्यवस्था कहलाती है। ये चार श्रेणियाँ इस प्रकार हैं-

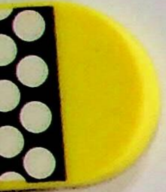
(१) जिन व्यक्तियों की प्रकृति अध्ययन, अध्यापन, मंनन, चिन्तन प्रधान है, जो परोपकारी हैं, सेवाभाव से कार्य करते हैं। इन्हें शास्त्र में ब्राह्मण कहा गया है।

(२) जो प्रशासनिक कार्यों में रत हैं, लगे हैं। ये क्षत्रिय कहलाते हैं।

(३) जो व्यापार-व्यवसाय करते हैं। इन्हें वैश्य कहते हैं।

(४) जो चतुर्थ श्रेणी में आते हैं, अन्य तीन श्रेणी में लगे हुए लोगों की सेवा करते हैं। ये शूद्र कहलाते हैं।

आज भी हम देखते हैं कि कर्मचारी की भी चार श्रेणियाँ होती है, प्रथम श्रेणी, द्वितीय श्रेणी, तृतीय श्रेणी तथा चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी।



आयुर्वेद की दृष्टि से भी देखें तो हम पाते हैं कि जब कोई रोगी वैद्य के पास जाता है, तब वैद्य, रोग के साथ-साथ उस व्यक्ति की मुख्य प्रकृति क्या है, उसमें अग्नि (पित्त) तत्व प्रधान है, या जल (कफ़) या वायु (वात) तत्व प्रधान है, उसके आधार पर वह उस व्यक्ति को औषधि देता है। साथ ही कहता है, कि भई इस औषधि को आप जल के साथ लेना। दूसरे व्यक्ति (जिसे यही रोग हो) की प्रकृति भिन्न हो तो उसे कहेगा कि इस औषधि को शहद के साथ लेना, किसी अन्य को कह सकता है कि तुम घी के साथ लेना, किसी को दूध के साथ औषधि लेने को कह सकता है। यह निर्धारण, रोगी की प्रकृति के अनुसार होता है।

विषय- ठीक इसी प्रकार वास्तुशास्त्र में भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार, नियम बताए गए हैं। उसके अनुसार निर्धारित करते हैं कि इस व्यक्ति के लिए उत्तर मुखी घर लेना ठीक है, तो दूसरे की प्रकृति के अनुसार दक्षिण या अन्य के लिए पश्चिम मुखी प्लॉट लेना उचित है।

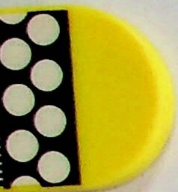
एक व्यक्ति के लिए सफेद रंग शुभ है, दूसरे के लिए लाल तो अन्य के लिए सुनहरा रंग शुभ है।

किस व्यक्ति का कौन सा कक्ष किस दिशा में हो, इसका निर्धारण भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार किया जाता है। पूजा कक्ष, शयन कक्ष, आदि सभी कक्षों की दिशा का निर्धारण भी व्यक्ति की प्रकृति के अनुसार ही होता हैं।

वर्णाश्रम का निर्धारण-

ब्राह्मण- जैसा कि हमने देखा कि जिनका कार्य अध्ययन, अध्यापन, मनन व चिन्तन का है, जो परोपकारी प्रकृति के हैं, उनको ब्राह्मण कहा गया है। आज के समय में जो सेवा कार्य में रत है, परोपकार की भावना से कार्य करते हैं, जिनका उद्देश्य लोगों का भलाई करना है वे सभी ब्राह्मण के अन्तर्गत आते हैं।

क्षत्रिय- जो प्रशासनिक कार्यों में लगे है। प्रशासनिक कार्य चाहे वो शासकीय हो या अशासकीय सभी क्षत्रिय के अन्तर्गत आते है। उदाहरण के लिए शासकीय कार्यरत क्लेक्टर, कमीशनर, पुलिस अधीक्षक आदि। प्रधानमंत्री, राष्ट्रपति आदि। मन्त्री, सचिव, कुलपति, आदि। हास्पिटल का अधीक्षक, डीन, डायरेक्टर आदि। जिस भी ऑफिस का वास्तु करना हो उसका प्रमुख व्यक्ति जो प्रशासन का कार्य कर रहा है, उसका वास्तु हम क्षत्रिय के लिए दिए गए नियमों के आधार पर करेंगे।



अशासकीय क्षेत्र में लें तो किसी कम्पनी या फेक्टरी का डायरेक्टर, मेनेजर, आदि। दुकान, वर्कशॉप, आदि का प्रमुख व्यक्ति। जो भी कार्यक्षेत्र हो उसके प्रमुख व्यक्ति के लिए वास्तु करना हो, उसके ऑफिस का वास्तु करना हो तो उसे वास्तुशास्त्र में बताए गए क्षत्रिय वर्ण के अनुसार वास्तुशास्त्र के नियम लागू किए जाएँगें।

वैश्य- वैश्य वर्ण के व्यक्ति की प्रकृति मुख्य रुप से व्यापार-व्यवसाय की है। इनका मुख्य कार्य शास्त्रोक्त विधि से धन का अर्जन करना है। फिर चाहे वह व्यापार, व्यवसाय, विपणन, मार्केटिंग का कार्य करता हो, या शिक्षण का कार्य करता हो या डॉक्टर हो। यदि मुख्य ध्येय धन का अर्जन है तो वह व्यक्ति वैश्य की ही केटगरी (श्रेणी) में आएगा।

शूद्र-यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। आज के समय में हम नौकर आदि को इस श्रेणी रख सकते हैं। यह चतुर्थ श्रेणी कर्मचारी है। वह चाहे ऑफिस में कार्य करने वाला लड़का हो या घर में कार्य करने वाले नौकर (सेवक) हो। सभी इसी श्रेणी में आएँगें।

यह चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी को वास्तु का उपयोग तब ही करना है तब हमारा क्लायन्ट उसका आफिसर है, उसका मालिक है। जब हम मालिक के घर या ऑफिस का वास्तु सुधार करेंगे तब उसके नौकर के लिए शूद्र के लिए बताए गए नियम लागू किए जाऐंगे।

उपजाति

स्वादे भवेद् या मधुरा सिताभा चतुर्षु वर्णेषु मही प्रशस्ता।
स्नेहान्विता बभ्रुभुजङ्गयोर्या सुहृद्वती चाखुबिडालयोर्वा।।१४।।

जो भूमि स्वाद में मीठी हो, रंग सफेद हो, जिस भूमि पर सर्प और नेवला, चूहा व बिल्ली साथ-साथ रहते हो, वह भूमि सभी के लिए श्रेष्ठ है।

व्याख्या-इस प्रकार जो भूमि सकारात्मक ऊर्जा वाली मित्रवत व्यवहार करने वाली हो वह सभी के लिए शुभ होती है।

इस श्लोक में यह बताया गया है कि जो भूमि मित्रता के व्यवहार से युक्त है जहाँ परस्पर द्वेष के भाव जाग्रत न होते हों वह रहने के लिए शुभ है।



१.१.७ पूजा

परीक्षितायां भुवि विघ्नराजं समर्चयेच्चण्डिकया समेतम्।
क्षेत्राधिपं चाष्टादिशाधिनाथान् सपुष्पधूपैः बलिभिः सुखाय।।१५।।

भूमि की परीक्षा कर, सुख की कामना के लिए चण्डी सहित गणपति का पूजन करें, फिर क्षेत्रपाल, आठों दिशाओं के दिक्पालों का फूल, धूप तथा बलि देकर पूजन करें।

व्याख्या-आठ दिशाओं के आठ दिक्पाल होते हैं- पूर्व दिशा का स्वामी-इन्द्र, आग्नेय का अग्नि, दक्षिण दिशा का यम, नैर्ऋत्य का निर्ऋति, पश्चिम का वरुण, वायव्य का वायु, उत्तर का कुबेर तथा ईशान कोण का स्वामी ईश होते हैं।

१.१.८ भूमि-परीक्षा

घनत्व परीक्षण

शार्दूलविक्रीडित

खातं भूमिपरीक्षणे करमितं तत्पूरयेत् तन्मृदा
हीने हीनफलं समे समफलं लाभो रजो वर्धते।

भूमि की परीक्षा के लिए जमीन में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें और पुनः उस गड्ढे को उसी मिट्टी से भर दें। यदि मिट्टी घट जाए (कम पड़ जाए) तो हीनफल, बराबर रहने पर साधारण तथा यदि मिट्टी बच जाए तो लाभ जानें।

व्याख्या-यहाँ यह बताया गया है कि जिस भूमि पर निर्माण करना हो वह ठोस होना चाहिए जिससे वह निर्माण का भार (वजन) सहन कर सके। जब भूमि ठोस होगी तो खुदाई करने के बाद हम गड्ढा भरेंगे तो मिट्टी बच जाएगी, अतः ऐसी भूमि को श्रेष्ठ कहा है।

अब मिट्टी परीक्षण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि जिस भूमि पर निर्माण कार्य करना हो वहाँ एक घन हस्त गड्ढा खोदकर मिट्टी निकालें, गड्ढे को पुनः मिट्टी से भर दें, मिट्टी शेष रह जाए तो भूमि शुभ होती है।

आधुनिक समय में हम इसे घनत्व परीक्षण करते हैं जो भूमि जितनी काम्पेक्ट है, ठोस है वह भूमि उतनी ही मजबूत होती है। मजूबत भूमि पर ही उचित तथा बड़ी इमारतें खड़ी की जा सकती है। निर्माण कार्य करते समय आधार सशक्त या मजबूत होना चाहिए। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में बहुत ही सरल तथा एकानॉमिक तरीकें मिट्टी की जाँच की विधियों का वर्णन किया गया है।



अब मान लो मिट्टी शेष न बचे या कम पड़ जाए तो इसका तात्पर्य यह है कि भूमि पोली है, ठोस नहीं है। उस भूमि में चूहे, साँप, मेढ़क आदि के बिल हो सकते हैं। वह भूमि दीमक से युक्त हो सकती है।

अब ऐसी भूमि पर शास्त्र निर्माण करने की आज्ञा नहीं देता है। कहता है कि ऐसी भूमि का त्याग करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि जहाँ फाउन्डेशन मिले उतनी गहराई तक खुदाई करना चाहिए। सामान्यतः इन्दौर व आसपास के क्षेत्र में पीली मिट्टी में कंकर आ जाए उतनी गहराई तक खुदाई करते हैं।

अगले श्लोक में भूमि की आर्द्रता का परीक्षण करते हैं, नमी का पता लगाते है। भूमि में नमी न हो तो कॉलम, बीम, दीवार आदि में स्थित नमी को भूमि सोख लेती है, जिससे निर्माण में क्रेक्स आने की आशंका रहती है, इस कमी को पानी की तरी के द्वारा दूर किया जा सकता है।

नमी परीक्षण

तत् कृत्वा जलपूर्णमाशतपदं गत्वा परीक्ष्यं पुनः।
पादोनेऽर्द्धविहीनकेऽथ निभृते मध्याधमेष्टाम्बुनि।।१६।।

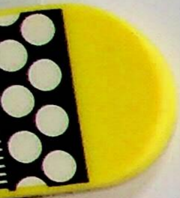
भूमि में एक हाथ लम्बा, एक हाथ चौड़ा तथा एक हाथ गहरा गड्ढा खोदें, उसे पानी से भर दें, फिर सौ कदम जाकर वापस आएँ, यदि एक चौथाई पानी घटे (कम हो जाए) तो मध्यम फल, आधा भाग पानी घटे तो अधम फल तथा पूरा पानी रहे तो उत्तम फल जानें।

इस परीक्षण को अलग-अलग मौसम में करने पर परिणाम में अन्तर आता है। जैसे वर्षा ऋतु में परीक्षण करने पर गड्ढे में पानी भरा रहेगा। जबकि बहुत अधिक गर्मी के मौसम में परीक्षण करने पर गड्ढा खाली हो जाएगा। इस महत्वपूर्ण तथ्य को ध्यान में रखकर परीक्षण करना चाहिए।

१.१.९ भूमि का झुकाव फल

भूमेः प्राक्प्लवनं च शङ्करककुप् सौम्याश्रितं सौख्यदम्।
वह्नौ वह्निभयं यमे च मरणं चौराद्भयं रक्षसि।
वायव्यप्लवनं च धान्यहरणं स्याच्छोकदं वारुणे
विप्रादेरनुवर्णतश्च सुखदं सृष्टिक्रमात्सौम्यतः।।१७।।

जिस भूमि पर घर बनवाना हो, उस भूमि का झुकाव पूर्व, ईशान या उत्तर हो तो वह सुख देती है। अग्निकोण की ओर हो तो वह अग्नि का भय, दक्षिण की ओर हो तो मृत्यु, नैर्ऋत्य की ओर हो तो चोरों से भय, वायव्य की ओर हो तो अन्न का नाश (चोरी) तथा पश्चिम की ओर हो तो शोक उत्पन्न करती है।



उत्तर की ओर ढाल वाली भूमि ब्राह्मण के लिए, पूर्व दिशा वाली क्षत्रिय के लिए, दक्षिण वाली वैश्य के लिए तथा पश्चिम दिशा की ढाल वाली भूमि, शूद्र के लिए उत्तम है।

वर्णानुसार भूमि का झुकाव	
वर्ण	भूमि का झुकाव
ब्राह्मण	उत्तर
क्षत्रिय	पूर्व
वैश्य	दक्षिण
शूद्र	पश्चिम

ढलान दिशा व परिणाम	
भूमि का ढलान	परिणाम
पूर्व	सुख
अग्निकोण	अग्नि का भय
दक्षिण	मृत्यु
नैऋत्य	चोरों से भय
पश्चिम	शोक
वायव्य	अन्न का नाश
ईशान	सुख
उत्तर	सुख

श्लोक के माध्यम से दिशाओं के गुणः-

शास्त्र में सांकेतिक रुप से कहने की परम्परा है। जैसा हमने पिछले श्लोकों में देखा कि मिट्टी केरंग, गन्ध व स्वाद के माध्यम से रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताए हैं। श्लोकक्रमांक १७ में दिशा के गुण बताए हैं। मानसिक सुख उत्तर, ईशान व पूर्व दिशा का गुण है। अग्नि का संबंध आग्नेय कोण से है। दक्षिण दिशा का संबंध मृत्यु से है। हम जानते हैं कि इस दिशा का दिग्पाल यम है। इसी प्रकार नैऋत्य कोण चोर से भय व वायव्य दिशा धान्य की चोरी से संबंधित है।

इसी के साथ श्लोक में यह भी बताया है कि ब्राह्मण वर्ण के लिए उत्तर झुकाव वाली भूमि है अर्थात् जो कुशाग्र बुद्धि वाले परामर्श, मनन, चिन्तन का कार्य करते हैं वे दक्षिण भाग में निवास करें जिससे उनकी भूमि का प्लव उत्तर दिशा की ओर हो।

भारत वर्ष के अनुसार भी जब हम अध्ययन, विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि शुद्ध परम्परा का पालन करते हुए, मन्त्रियों के परामर्शदाता आई. ए. एस ऑफिसर्स् भारत के दक्षिण भाग में रहते हैं। वे मनन, चिन्तन व परामर्श का कार्य करते हैं।



इसी प्रकार क्षत्रिय के लिए कहा है कि उसके लिए पूर्व दिशा के झुकाव वाली भूमि शुभ है तो वे भारत के पश्चिमी भाग राजस्थान आदि में रहते हैं, योद्धा हैं।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में कुछ इस प्रकार से दिशाओं के गुण बताए हैं-

चय-दोष- अर्थात चुनाई के निम्नलिखित दोष कहे गये हैं, कहने का तात्पर्य हैं कि चुनाई करने के पश्चात् यदि निम्नलिखित दोष दीवार में देखे जाए तो उनके अशुभ फल गृह-स्वामी को निम्न होते हैं-

१.दक्षिण की तरफ जब दीवाल बहिर्मुख (बाहर की तरफ निकली हुई) चुनी जाती हैं तो वह -व्याधि-भय को देने वाली या मृत्यु-दंड की निर्देशक होती हैं, अर्थात इसके कारण मृत्यु हो सकती हैं।

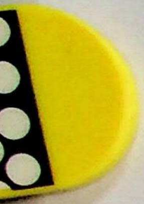
२. पश्चिमी दीवार जब बहिर्मुख (बाहर की तरफ निकली हुई) चुनी जाती हैं, तब वह-धन हानि तथा दस्युओं (डाकू, दुष्कर्मियों या राक्षसों का समूह) से भय प्राप्त होता हैं।

३.जब स्थपति उत्तर दिशा में दीवार का बहिर्मुख चयन करता हैं, तो दीवार बनाने वाले तथा गृह-स्वामी दोनों को व्यसन (लत) प्राप्त होता हैं।

जब स्थपति (पूर्व दिशा) में दीवार का बहिर्मुख निवेशन (स्थापना करना) करता है, अर्थात दीवार की चुनाई कुछ इस प्रकार से होती हैं कि पूर्व दिशा की और उसका कुबड़ (पीठ पर निकला हुआ कूबड़ अर्थात उभरा हुआ हिस्सा) निकला होता हैं, तो विशेषज्ञों ने-राज-दंड के भय का निर्देश किया हैं, यही फल दीवार के गिर जाने या फट जाने पर भी कहा गया हैं।

जिस दीवार का आग्नेय कोण (डायगोनल) बहिर्मुख (बाहर की तरफ निकला हुआ) होता है, अर्थात बाहर की और निकला होता हैं, तो वहाँ पर-घोर अग्नि-भय (आग लगने का डर) और गृह-स्वामी का संशय (जीवन-संशय अर्थात गृह स्वामी केजीवन की शंका होती हैं, उसकी कभी भी मृत्यु हो सकती हैं।) आपतित होता है।

दक्षिण-पश्चिमाभिमुख कर्ण (नैऱ्ऋत्य कोण) जब बहिर्मुख होता है, तो-वहाँ पर लड़ाई के उपद्रव और भार्या (धर्मपत्नि) का संशय उपस्थित होता हैं अर्थात उसकी कभी भी मृत्यु हो सकती हैं।



पश्चिमोत्तर कर्ण (वायव्य कोण) जब बहिर्मुख हो जाते हैं तो वहाँ पर पशु, वाहन और पुत्रों का जीवन शंका (संशय) होता हैं।

जब प्रागुत्तर कर्ण (ईशान कोण) बहिर्मुख हो जाता हैं, तो वहाँ पर गुरूओं का संशय और गाय बैलों का संशय पैदा होता हैं।

विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के छठवें अध्याय में शिलान्यास के माध्यम से दिशाओं के गुण बताए हैं-

नन्दायै नम एह्येहि पूजयेच्छुद्धमानसः।

नन्दा नाम की शिला को नमस्कार करके शुद्ध मन से कहें-

ओम नन्दे त्वं नन्दिनी पुंसां त्वामत्र स्थापयाम्यहम्।।४५।।

हे नन्दे । तूमनुष्यों को सदैव आनन्द देनेवाली है। मैं तेरा इस जगह स्थापन करता हूँ ।

.. प्रासादे तिष्ठ सत्त्वष्टा यावद्वै चन्द्रतारकम्।
आयुष्कामं श्रियं नन्दे ददासि त्वं सदा नृणाम्।।४६।।

हे नन्दे, तू इस प्रासाद में तब तक रह, जब तक चन्द्रमा और तारा गण दिखते हैं, तू मनुष्यों को सदैव आयु, वांछित फल और लक्ष्मी को देती है ।

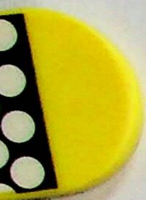
अस्मिन् रक्षा त्वया कार्या प्रासादे यत्नतः सदा।
इति मंत्रं समुच्चार्य आग्नेये तु ततः परम्।।४७।।

इससे तू यत्न से इस प्रासाद की सदैव रक्षा कर। इन्हीं मन्त्रों से इसके पश्चात् आग्नेय दिशा में उसका स्थापन करें।

व्याख्या-सामान्यरूप से भी आग्नेय आदि के क्रम से शिला स्थापना करना चाहिए। इस प्रकार से आग्नेय आदि दिशा के गुण बताए हैं।

भद्रां सम्पूजयेत्तद्वन्नाममन्त्रेण पूर्ववत्।
भद्रे त्वं सर्वदा भद्र लोकानां कुरु काश्यपि।।४८।।

फिर उसी प्रकार नाम मंत्र (भद्रायै नमः) से भद्रा शिलाका पूजन करें और हे भद्रे ! हे काश्यप की पुत्रि ! तू लोकों को सदा भद्र (कल्याण) कर।



आयुष्कामप्रदा देवि लोकानां चैव सिद्धिदा।
नैर्ऋत्ये स्थापयेत्तां च जयां तद्वत्प्रपूजेयत्॥४९॥

हे देवी! तू लोकों को आयु, कामना और सिद्धि की देनेवाली है। इस प्रकार मन्त्र को पढ़कर नैर्ऋत दिशा में स्थापन करें। उसके बाद उसी प्रकार जया शिला की (वायव्य दिशा में स्थापना करें।)

नाममन्त्रेण पूर्वोक्तमन्त्रेण च तथा पुनः।
ओम जये त्वं सर्वदा भद्रे सन्तिष्ठ स्थापयाम्यहम्॥५०॥

नाममंत्र और पूर्व कहे हुए मन्त्रों से नैवैद्य आदि का अर्पण व पूजा करके कहे, हे जये ! तू सदा कल्याण रूप है मैं तेरी स्थापन करता हूँ, सदा स्थिर रह।

नित्यं जयावहा दिव्या स्वामिनः शीघ्रदा भव।
वायव्ये स्थापयेत्तां च जयां सर्वार्थसिद्धये॥५१॥

अपने स्वामी को सदा शीघ्र जय के देने वाली हो (इस मन्त्र को पढ़कर), जया नाम की शिला को, सब अर्थों की सिद्धि के लिए वायव्य दिशा में स्थापित करें।

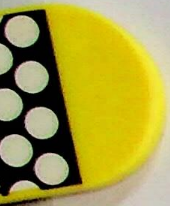
ईशाने स्थापयेत्पूर्णां पूर्ववत्संप्रपूज्य च।
ओम पूर्णे त्वं तु महाविद्ये सर्वसंदोहलक्षणे॥५२॥
संपूर्णं सर्वमेवात्र प्रासादे कुरु सर्वदा।

पहले की समान पूजन करके, ईशान कोण में पूर्णा शिला को स्थापित करें। (उसके पश्चात् इस प्रकार कहे-) हे पूर्णे ! तु महाविद्यारूप है, सम्पूर्ण कामनाओं को देनेवाला तेरा स्वरूप है। इस प्रकार सदा प्रासाद में सब कार्य को पूर्ण कर।

संगति-भूमि का परीक्षण करने के बाद अब निर्माण विधि प्रारम्भ करने के पहले उस भूखण्ड का सीमांकन किया जाता है। इसके लिए खूंटी का प्रयोग करते हैं-

कीलस्थापना, सूत्रपात व अशुभ भूमि

अग्नौ राक्षसवायुशङ्करदिशि स्थाप्याः क्रमात् कीलका-
रश्वस्थाः(त्थाः)खदिराः शिरीषककुभा वृक्षाः क्रमेण द्विजाः।



वर्णानां कुशमुञ्जकाशस(श)णजं सूत्रं क्रमात् सूत्रणे
निम्ना भूः स्फुटितोस्व(ष)रा बिलवती शल्यैर्युता नो शुभाः।।१८।।

जिस भूमि पर घर बनवाना हो उसमें पहली खूँटी (खात शंकु) अग्निकोण में, दूसरी नैऋत्य में, तीसरी वायु में तथा चौथी खूँटी ईशान कोण में लगाएँ। ब्राह्मण के लिए यह खूँटी अश्वत्थ (पीपल) की लकड़ी की बनी हो, क्षत्रिय के लिए खदिर की, वैश्य के लिए शिरीष की लकड़ी की तथा शूद्र के लिए खूँटी ककुभ (अर्जुन, बहेड़ा, सादड़) की बनी हुई हो।

इस प्रकार चारों दिशाओं में खूँटियाँ लगाकर डोरी बांधे। ब्राह्मण के लिए कुश की डोरी का प्रयोग करना चाहिए। क्षत्रिय के लिए मुंज की, वैश्य के लिए कास की तथा शूद्र के लिए शण (सन) की डोरी का प्रयोग करना चाहिए।

जो भूमि ऊँची-नीची हो, (जो ऊबड़-खाबड़ हो), जिसमें दरार हो (फटी हुई हो), जो भूमि ऊषर (बंजर) से युक्त हो, जिसमें (सांप व चूहे इत्यादि के) बिल हों, जो भूमि शल्य (खोदने पर हड्डी इत्यादि निकले) से युक्त हो, वह शुभ नहीं है।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ में कीलक सूत्रपात नामक अध्याय में इस विधि को विस्तार से बताया गया है।

वैदिक विधि से कार्य करते समय प्रदक्षिण क्रम को शुभ बताया है। इसीलिए कहा है कि अग्निकोण से आरम्भ करके नैऋत्य, वायव्य तथा उसके पश्चात् ईशान में खूँटी गाड़ें।

यह प्लाट के सीमांकन की विधि है। इससे प्लाट या भूखण्ड की सीमा का निर्धारण किया जाता है। आधुनिक समय में भी सबसे पहले प्लाट का सीमांकन किया जाता है, जिसे कान्ट्रेक्टर या ठेकेदार की भाषा में गुणिया (आयताकार)करना कहते है।

जैसा कि हम जानते हैं कि शास्त्र में रहस्यात्मक रूप से कहने की परम्परा रही है एक बात, दूसरी बात यह है कि जो शास्त्रज्ञ है उन्हें अनेक विषयों का ज्ञान है एवं तीसरी व महत्वपूर्ण बात यह है कि जो बात जहाँ कहना हो वहाँ उसे छिपा लेते हैं, नहीं कहते हैं या कम कहते हैं या केवल संकेत करते हैं तथा जहाँ उस विषय का अधिक संबंध न हो या स्पष्ट संबंध न हो वहाँ, उस बात को पूरी तरह से खोल कर रख देते हैं या पूरी तरह उद्घाटिक कर देते हैं।

ऐसा ही कुछ रहस्य यहाँ उद्घाटित किया गया है यहाँ यह बताया है कि ब्राह्मणोचित गुण विकसित करने के लिए पीपल वृक्ष की लकड़ी शुभ है। इसी प्रकार कुश शुभ है। इससे हमें यह भी ज्ञात होता है कि ग्रन्थकर्ता वनस्पति शास्त्र का भी ज्ञाता है तथा स्थपति (वास्तुशास्त्री) को भी वनस्पति शास्त्र का ज्ञान होना चाहिए।



विषय की गहराई में जाते हुए कहते हैं कि जो भूमि ऊँची-नीची हो उसको समतल करने में श्रम, समय, धन अधिक लगेगा। ऐसे स्थान पर निर्माण सामग्री पहुँचाना भी कठिन होगा, लागत अधिक आएगी अतः ऐसी जगह को त्याग देना चाहिए।

उसी प्रकार जिस भूमि में दरार हो, बंजर हो, साँप के बिल हों अर्थात् उस भूमि की भार वाहन क्षमता बहुत कम है, निर्माण करने पर भवन के गिरने या नष्ट होने का खतरा बना रहता हैं, अतः शुभ नहीं है। इसी प्रकार जिस भूमि में शल्य (हड्डी, कोयला, राख, भूसी)आदि हो तो उस स्थान पर नकारात्मक ऊर्जा रहती है। अतः वह भी निर्माण हेतु शुभ नहीं है। किसी बने हुए घर में भी यदि शल्य हो और व्यक्ति उसमें रहने लगे तो पहले बुरे या भयानक स्वप्न आते हैं उसके पश्चात् धन हानि होती है फिर रोग या मृत्यु की आशंका बनी रहती है।

संगति- निर्माण कार्य प्रारम्भ करने के पहले उस भूखण्ड के अन्दर शल्य (नकारात्मक ऊर्जा देने वाला पदार्थ जैसे हड्डी, कोयला, राख, भूसी आदि) हो तो निकालना चाहिए। अब शल्य ज्ञात करने की विधि का वर्णन करते हैं-

१.१.१० शल्य-भूमि के अन्दर स्थित हड्डी, बाल इत्यादि का दोष का पता लगाना

शल्यज्ञान

इन्द्रवज्रा

प्रश्नत्रयं वापि गृहाधिपेन देवस्य वृक्षस्य फलस्य वाऽपि।
वाच्यं कोष्ठोऽक्षरसंस्थिते च शल्यं विलोक्य भवनेषु सृष्ट्या।।१९।।

जिस भूमि पर घर बनवाना हो, उसमें स्थित शल्य को जानने के लिए पहले घर के स्वामी से प्रश्न पूंछे। कोई भी देवता, वृक्ष, फल का नाम के प्रथम अक्षर, जिस दिशा के कोष्ठ में आए, उसे देखकर भवन के किस भाग में शल्य है, यह बताना चाहिए। (शल्य को खोदकर शल्य निकालना चाहिए)।

शालिनी

आकाचाटाएतशापायवर्णाः प्राच्यादिस्थे कोष्ठके शल्यमुक्तम्।
केशाङ्गाराः काष्ठलोहास्थिकाद्याः तस्मात्कार्यं शोधनं भूमिकायाः।।२०।।

बाल, कोयला, लकड़ी, हड्डी, लोहा आदि शल्य निकालने के लिए भूमि पर पूर्वादि क्रम से (प्रदक्षिण क्रम से) नौ भाग करके क्रमशः अ, क, च, ट, ए, त, श, प एवं य को कोष्ठक में रखना चाहिए। गृहस्वामी के उत्तर के प्रथम अक्षर जिस कोष्ठ में आए, भूमि के उस भाग में शल्य जानना चाहिए। उसे (शल्य को) निकालकर (गृहनिर्माण से पहले) भूमि का शोधन करना चाहिए।



उत्तर

त	श	प
ए	य	अ
ट	च	क

व्याख्या-यहाँ अत्यन्त सरल तरीके से घर या प्लाट में कहाँ शल्य दोष है? इसे पता लगाने की विधि का वर्णन किया गया है।

इस प्रकार जब हमें घर या प्लाट में शल्य कहाँ है? उसका पता लगाना हो तो जो घर का मालिक या स्वामी हो, वह जब हमसे शल्य के बारे जानकारी मांगने आए तो हम उससे पहले प्लाट या उसके घर में बारे में बातें करें, कि उसका घर कहाँ है, आसपास में क्या-क्या है, घर की किस दिशा में कौन सा कमरा है, पानी का स्थान कहाँ है आदि-आदि। जब हमें यह लग जाए कि वह व्यक्ति का शरीर या मन पूरी तरह से घर में बारे में लगा है तब उस व्यक्ति से पेड़, फल या फूल का नाम लेने को कहें।

आज हम आधुनिक समय में कोई गाना या भजन गाने को कह सकते है, उस गाने का पहला अक्षर या भजन का पहला अक्षर जो हो वह जिस दिशा का अक्षर हो (इसके लिए चार्ट देखे)। घर या प्लाट की उस दिशा में शल्य (दोष) है यह जानना चाहिए।

माना कि उसके गाने का पहला शब्द तुमने आया अर्थात् अक्षर ए आया अब चूँकि ए पश्चिम दिशा का अक्षर है अतः उस घर की पश्चिम दिशा में शल्य जानना चाहिए।

यह विधि अत्यन्त ही वैज्ञानिक है। जब हम किसी व्यक्ति के बारे में बात करते हैं, सोचते हैं, तो उससे संबंधित भाव, उससे संबंधित हमारी फीलिंग आने लगती है। यदि उस व्यक्ति को हम प्रेम करतें है तो प्रेम के भाव, प्रसन्नता के भाव हमारे शरीर में आने लगते है, शरीर का रोम-रोम उन भावों को व्यक्त करने लगता है।

हमारे शरीर के प्राण (जीवनी शक्ति) उस स्थान पर रहते हैं जहाँ उस प्रकार के भाव हमारे शरीर में होते है। अब हमें पता कैसे चले कि वह प्राण कहाँ स्थित है तो इसके लिए सबसे सरल विधि यह है कि उस व्यक्ति से कुछ पूछे, तो वह पहला अक्षर उसी स्थान से निकलेगा जहाँ उसके प्राण स्थित है।

प्रत्येक अक्षर के लिए हमारे शरीर में एक निश्चित स्थान है। हर एक अक्षर का एक अर्थ (मतलब) होता है, एक रंग होता है। इस विद्या को एकाक्षरी कहते है।

यह विद्या केवल शल्य के ज्ञान के लिए ही नहीं है वरन् इसका प्रयोग अन्य कार्यो के लिए भी किया जा सकता है। जैसे हम किसी व्यक्ति (मित्र) के बारे में बात करे फिर यदि कोई गाना गाए तो उस गाने का पहला अक्षर मित्र के बारे में हमारी फीलिंगस् को बताता है।

शल्य परिणाम

उपजाति

शल्यं गवां भूपभयं हयानां रुजं शुनो(नां) त्वोः कलहप्रणाशौ।
खरोष्ट्रयोर्हानिमपत्यनाशं नृणामजस्याग्निभयं तनोति।।२१।।

जिस भूमि में गाय का शल्य (हड्डी) रह जाए तो राजा का भय, घोड़े का शल्य हो तो रोग, कुत्ते की हड्डी हो तो क्लेश और नाश, गधे तथा ऊँट की हड्डी हो तो सन्तान का नाश, मनुष्य व बकरे का शल्य रह जाए तो अग्नि का भय जानना चाहिए।

भूमि में शल्य ज्ञात करने की अन्य विधियों का वर्णन विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के अध्याय १२ में विस्तार से किया गया है।

शल्य एवं उसके परिणाम	
शल्य (हड्डी)	परिणाम
गाय	राजा का भय
घोड़े	रोग
कुत्ते	क्लेश और नाश
गधे, ऊँट	सन्तान का नाश
मनुष्य, बकरे	अग्नि का भय

१.१.११ खात (खुदाई)

नागमुखज्ञान

शार्दूलविक्रीडित

कन्यादौ रवितस्त्रये फणिमुखं पूर्वादिसृष्टिक्रमं
खातं वायुवपुर्दिशात्रयगतं लाङ्गूलपृष्ठं शिरः।
द्वारं तस्य मुखे गृहादिभयदं कुक्षिद्वये सौख्यदं
दुःखं प्राक् खनने शिरोऽङ्घ्रिवपुषः कुक्षौ सुखं दक्षिणे।।२२।।

कन्या आदि तीन-तीन राशि (कन्या, तुला व वृश्चिक) के सूर्य में नाग का मुख्र पूर्व आदि दिशाओं में होता है, तो वायुकोण में ख्रात (खुदाई) करना चाहिए। अन्य तीन दिशाओं में उसकी पूँछ, पीठ व सिर स्थित रहता है।

जिस दिशा में नाग का मुख (जिस समय हो, उस समय) उस दिशा में घर का द्वार नहीं बनवाना चाहिए, अन्यथा भय देने वाला होता है। दोनों कुक्षि में द्वार बनवाने से सुख प्रदान करता है। नाग के सामने के भाग व सिर के भाग में खनन (खुदाई) करने से दुःख व दाहिनी कुक्षि में खनन करने पर सुख की प्राप्ति होती है।

सूर्य की राशि अनुसार नाग का मुख	
सूर्य की राशि	**नाग का मुख**
कन्या, तुला, वृश्चिक	पूर्व
धनु, मकर, कुम्भ	दक्षिण
मीन, मेष, वृषभ	पश्चिम
मिथुन, कर्क, सिंह	उत्तर

मासानुसार खुदाई की दिशा

प्राच्यां नागमुखं बुधैनिर्गदितं भाद्राश्विने कार्तिके
मार्गात् फाल्गुनशुक्रयोः क्रमतया याम्ये जले चोत्तेर।

भाद्रपद, अश्विन व कर्तिक इन तीन महिनों में नाग क्र मुख पूर्व दिशा में हेता है। मार्गशीर्ष, पौष व माघ महिनों में नाग क्र मुख दक्षिण दिशा में हेता है। फत्रलुन, चैत्र व वैशाख मास में पश्चिम दिशा में तथा ज्येष्ठ, आषाढ़ व श्रावण मास में नाग क्र मुख उत्तर दिशा में हेता है।



. मासानुसार खुदाई की दिशा	
मास	नाग का मुख
भाद्रपद, अश्विन, कार्तिक	पूर्व
मार्गशीर्ष, पौष, माघ	दक्षिण
फाल्गुन, चैत्र, वैशाख	पश्चिम
ज्येष्ठ, आषाढ़ व श्रावण	उत्तर

क्षेत्रेऽष्टाष्टविभाजिते दिनकराद् वारान् लिखेत् कोष्ठगान्
शन्यङ्गारकयोश्च तत्र फणिनः शारीरकं नो खनेत्।।२३।।

वास्तुक्षेत्र को ८ X ८ अर्थात ६४ भागों में विभाजित कर, कोष्ठ (खानों) में, रवि (वार) से रवि (वार) तक आठ दिनों के नाम लिखना चाहिए। मंगल तथा शनि के ऊपर सर्प की आकृति बनाना चाहिए। जिस कोण पर सर्प का मुख व पूँछ बने वहाँ खुदाई नहीं करना चाहिए।

खात फल

शीर्षे मातृपितृक्षयः प्रथमतो खाते रुजः पुच्छके
पृष्ठके हानिर्भयं च कुक्षिखनने स्यात् पुत्रधान्यादिकम्।
पूर्वास्येऽनिलखातनं यममुखे खातं शिवे कारयेत्
शीर्षे पश्चिमगे च वह्निखननं सौम्यै खनेन्नैर्ऋते।।२४।।

नाग के सिर पर खात (खनन) करने से घर के स्वामी की माता व पिता का नाश होता है। पूँछ पर खनन करने से रोग, पीठ पर खात करने से हानि एवं कुक्षि में खात करने से पुत्र व धान्य आदि की प्राप्ति होती है।

जब नाग का मुख पूर्व दिशा में हो तब खात (खुदाई) वायु कोण में, दक्षिण दिशा में मुख हो तब खात ईशान कोण में, पश्चिम दिशा में मुख हो तब खात अग्नि कोण में तथा जब नाग का मुख उत्तर दिशा में हो, तब खात नैर्ऋत्य कोण में करना चाहिए।

१.१.१२ शिला व स्तम्भ स्थापना

आर्या

दक्षिणकोणे पूर्वविभागे पूजनपूर्वं शिला समर्प्या।
स्थाप्याः शेषशिला दक्षिणतः स्तम्भः समर्प्या विधिनानेन।।२५।।

दक्षिण व पूर्व के मध्य भाग अर्थात अग्नि कोण में पूजन करके प्रथम शिला की स्थापना करना चाहिए। शेष शिलाओं को प्रदक्षिण क्रम से स्थापित करना चाहिए। इसी प्रकार (शिला-स्थापन के समान), (अग्निकोण से, प्रदक्षिण क्रम से) स्तम्भ की स्थापना करना चाहिए।

व्याख्या-शिला के नाम, वर्ण के अनुसार उनके रंग, आकार, उनके कलश तथा उनकी स्थापना की विधि का वर्णन विस्तार से विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ के अध्याय ४ व ५ में किया गया है।

शालिनी

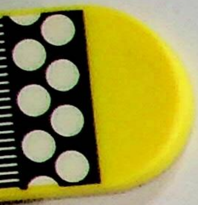
भित्तेर्मूलं स्थापनीयं जलान्ते पाषाणे वा हेमरत्नैः सगर्भम्।
शीर्षे गुर्वी लेपहीनाधिका वा सन्धिः श्रेणी पादहीनार्थहान्यै।।२६।।

भित्ति (दीवार) का मूल (base) अर्थात् पाया, पानी तक अथवा पत्थर तक रखना, (जहाँ पानी या पत्थर आ जाए वहाँ तक खुदाई करना)। उस खात में सोना (स्वर्ण) व रत्न डालकर भित्तिमूल (शिलास्थापना) करना। उसके बाद उसके ऊपर एक बड़ी शिला उसके ऊपर रखना या ढाकना। उस शिला पर पाया (भित्तिका) चढ़ाना। पाये का आकार एक समान रखना। नीचे पतला, ऊपर चौड़ा न करना। लेप कम या अधिक नहीं करना। सन्धिस्थल ठीक न हो तो गृहस्वामी के धन की हानि होती है।

आधुनिक अभियान्त्रिकी या सिविल इंजीनियरींग की दृष्टि से भी नींव की खुदाई वहाँ तक करना चाहिए, जहाँ कठोर भूमि आ जाए।

यहाँ विषय की और अधिक सूक्ष्मता में जाते हैं और कहते हैं कि उस स्थान को या (गड्ढे) पहले सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना, (उस गड्ढे सोना तथा रत्न आदि डालकर (अन्य ग्रन्थ के अनुसार कलश की स्थापना करना।)

इसके पश्चात एक बड़ी शिला या पत्थर रखा जाता है, ताकि भवन के स्तम्भों का भार समान रुप से भूमि पर स्थानान्तरित किया जा सकें। सिविल इंजीनियरींग की दृष्टि से यह बताते हैं कि स्तम्भ की चौड़ाई एक समान रखना तथा यह सावधानी रखना कि निचला भाग पतला न हो। इसी प्रकार से जो लेप या मसाला लगाया जाता है, वह भी एक समान होना चाहिए, सन्धिस्थल या ज्वाईन्ट भी भली प्रकार से मजबूत करना चाहिए। इस प्रकार से नींव भरने की विधि का वर्णन किया गया है।



१.१.१३ वास्तुशान्ति

मालिनी

भवनपुरसुराणां सूत्रणे पूर्वमुक्तः कथित इह पृथिव्याः शोधने च द्वितीयः।
तदनुमुखनिवेशे स्तम्भसंरोपणे स्यात् भवनवसनकाले पञ्चधा वास्तुयज्ञः।।

भवन, नगर व देवालय में पहली बार सूत्रपात के समय, दूसरी बार भूमि के शोधन के समय, तीसरी बार द्वार की स्थापना के समय, चौथी बार स्तम्भ की स्थापना के समय तथा पांचवी बार गृह-प्रवेश के समय, वास्तु का पूजन करना चाहिए।

इस श्लोक में वास्तु यज्ञ के बारे में बताया है कि पाँच अवसरों पर वास्तु यज्ञ करना चाहिए। यह वर्णन घर के संदर्भ में है। अन्य ग्रन्थ में मंदिर के संदर्भ में बताया है कि १४ अवसरों पर वास्तु यज्ञ करना चाहिए।

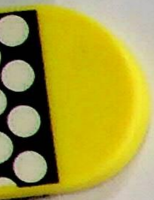
जब हम विश्लेषण करते हैं तब पाते हैं कि घर निर्माण करते समय पाँच महत्वपूर्ण अवसर पर वास्तु यज्ञ करें। इसमें यह अन्तर्निहित है कि वास्तुपूजन करते समय दिशा साधन करें, पद विन्यास करें। यह सब कुछ एक प्रकार से इसलिए भी करते हैं कि कार्य में कहीं कोई त्रुटि न रह जाएँ, इसकी जाँच कर लेते हैं। यज्ञ द्वारा सारा कार्य स्थान, सारा पदार्थ सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित हो जाए।

भूम्यारम्भे तथा कूर्मे शिलायां सूत्रपातने।
खुरे द्वारोच्छ्र्ये स्तम्भे(कुम्भे) पट्टे पद्मशिलासु च।।३७।।
शुकनासे च पुरुषे घण्टायां कलशे तथा।
ध्वजोच्छ्र्ये(ध्वजोच्छ्राय) च कुर्वीत शान्तिकानि चतुर्दश।।३८।।१।। प्रासाद मंडन

भूमि का आरंभ, कूर्म न्यास, शिलान्यास और सूत्रपात (तलनिर्माण), खुर शिला स्थापन, द्वार और स्तम्भ स्थापन, पाट चढ़ाते समय, पद्मशिला, शुकनास और मंदिर पुरुष के रखते समय, आमलसार, कलश चढ़ाना, तथा ध्वजा चढ़ाना, ये चौदह कार्य करते समय शान्तिपूजा अवश्य करना चाहिए।

सूत्रपात के समय वास्तु यज्ञ, दिशासाधन करने से ही निर्माण दिशानुसार हो सकता है। दिग्मूढ के दोषों से बचा जा सकता है।

भूमि शोधन के समय वास्तुयज्ञ करने से पूरा भूखण्ड सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होता है। द्वार स्थापना के अवसर पर दिशासाधन, उसके पश्चात् पदविन्यास इस बात को सुनिश्चित करता है कि द्वार की स्थापना उचित की गई है।



पूजन विधि का विशेष वर्णन बलि कर्म विधान के साथ स्पष्ट किया गया है। इसी प्रकार स्तम्भ स्थापना के समय दिशा, पदविन्यास करने से मर्म स्थान का ज्ञान होता है तथा मर्म स्थान पर स्तम्भ की स्थापना नहीं करना चाहिए, इस दोष से बचा जा सकता है।

गृह-प्रवेश के समय वास्तु यज्ञ करने से पूरा घर सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित हो जाता है।

इन अवसरों पर प्रियजनों को आमन्त्रित कर यथायोग मान-सम्मान कर आशावींद ग्रहण कर बिदा किया जाता है।

१.१.१४ वर्जित वृक्ष व छाया वेध

शार्दूलविक्रीड़ित

वृक्षाः क्षीरसकण्टकाश्च फलिनस्त्याज्या गृहाद्दूरतः
शस्ते चम्पकपाटले च कदली जाती तथा केतकी।
यामादूर्ध्वमशेषवृक्षसुरजा छाया न शस्ता गृहे
पार्श्वे कस्य हरे रवीशपुरतो जैनोऽनुचण्ड्याः क्वचित्।।२८।।

दूधवाले, कांटेवाले व फलदार वृक्ष, घर से दूर रखना चाहिए। चम्पा, गुलाब, केला, चमेली व केतकी के पौधे, घर के पास शुभ हैं। जिस घर पर, दूसरे व तीसरे प्रहर (एक प्रहर अर्थात तीन घण्टे) में वृक्ष या देव मंदिर की छाया पड़ती हो तो शुभ नहीं होता है। (पहले व चौथे प्रहर में छाया पड़ने पर दोष नहीं होता है।) ब्रह्मा के मंदिर के पार्श्व में (बाजू में), विष्णु, सूर्य व महादेव के मंदिर के सामने, जैन मंदिर के पीछे तथा जहाँ चण्डी की स्थापना हो, उसके पास घर नहीं बनवाना चाहिए।

अशुभ वृक्ष एवं उनके परिणाम	
घर के समीप वृक्ष	परिणाम
दूध वाले	धन का नाश
कांटे वाले	शत्रु का भय
फल वाले	सन्तान का नाश

इस श्लोक में बताया गया है कि जिन वृक्षों से दूध निकलता हो, दूध विषैला भी हो सकता है, आँख या अन्य स्थान पर लगने से रोग आदि हो सकते हैं अतः इन वृक्षों को घर से दूर लगवाना चाहिए। इन वृक्षों में से दूध के समान लसलसा पदार्थ निकलते रहने से उसमें कीटाणु आदि पनप सकते हैं, जिनसे रोग फैलने की आशंका रहती है।

काँटेवाले वृक्ष भी घर से दूर होना चाहिए, अन्यथा पैर, हाथ या शरीर में काँटे चुभने की आशंका बनी रहती है। विशेष रुप से बच्चों के लिए दूध, काँटे व फलदार वृक्ष घर के पास होना अशुभ है।

फलदार वृक्ष भी घर से दूर होना चाहिए घर के समीप होने पर कई बार पत्थर आदि फैंकने से घर के शीशे टूट जाते हैं या घर के किसी सदस्य को चोंट लग सकती है।

वैसे भी सभी प्रकार के बड़े वृक्षों का घर के समीप निषेध किया गया है। एक कारण यह भी है कि लगभग सभी वृक्ष रात्रि में कार्बन-डाय ऑक्साईड़ का विसर्जन करते हैं। घर के समीप होने पर रात्रि में घर में उचित मात्रा में ऑक्सीजन नहीं मिल पाएगी जिससे घर के सदस्यों की नींद पूरी न होना, जागने पर ताजगी महसूस न हो, रुग्ण रहना आदि हो सकता है।

दूसरा कारण यह भी है कि बड़े वृक्ष घर के समीप होने पर उनकी जड़े घर की नींव को हानि पहुँचा सकती है, दीवार आदि खराब होती है, उसमें फन्नस या फफूँद लग जाती है।

अन्य कारणों पर जब विचार करते हैं तो पाते हैं कि घर के समीप बड़े वृक्ष होने पर घर में उचित में मात्रा में धूप नहीं आ पाती है। जिससे सूर्य की पोषणकारी ऊर्जा समुचित मात्रा में घर में प्रवेश नहीं कर पाती है।

घर के समीप बड़े वृक्ष होने पर चोर आदि भी घर में प्रवेश कर सकते हैं।

वृक्ष की छाया रात्रि में घर के शीशे या दीवार पर पड़ने से बच्चे भयभीत भी हो सकते हैं।

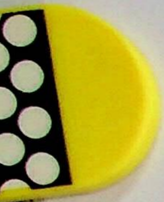
अत्यधिक ऊँचे वृक्ष वर्षा ऋतु में आकाशीय विद्युत का आकर्षण भी कर सकते हैं।

विशेष प्रकार के वृक्ष साँप आदि जीव-जन्तु को आकर्षित करते हैं।

कई बार देखा गया है कि वृक्ष में उल्लू, गिद्ध, चमगादड़ आदि पक्षी भी अपना स्थान बना लेते हैं जो कि अशुभ है।

इस श्लोक में छोटे वृक्ष केला आदि को लगाना शुभ बताया है।

वृक्ष के संदर्भ में यह बताया गया है कि दूसरे व तीसरे प्रहर में वृक्ष की छाया घर पर नहीं पड़ना चाहिए।



जब वृक्ष समुचित दूरी पर पर होंगे तब दोपहर के समय उनकी छाया घर पर नहीं आएगी। इसी बात को मनुष्यालय ग्रन्थ में कहा है कि जितनी वृक्ष की ऊँचाई हो, वह वृक्ष घर से उतनी ही दूर होना चाहिए अर्थात् ३० फीट ऊँचा वृक्ष, घर से ३० फीट दूर होना चाहिए।

इसी श्लोक में आगे बताया गया है कि ब्रह्मा के मंदिर के बाजू में, सूर्य, महादेव, जैन व चण्डी के मंदिर क्रमशः सामने, पीछे व पास घर नहीं बनवाना चाहिए।

यहाँ संक्षेप में भूमि चयन के महत्वपूर्ण पक्ष को उद्घाटित किया गया है, सावधानी पूर्वक अध्ययन करने पर हम पाते हैं कि किसी भी सार्वजनिक स्थान के पास घर नहीं बनवाना चाहिए। यहाँ मंदिर के संदर्भ में अध्ययन, विश्लेषण करते हैं तो पाते हैं कि विशेष अवसरों पर मंदिर में बहुत भीड़ होती है, श्रद्धालु जन एकत्रित होते हैं, जिससे मंदिर के पास रहने वालों को असुविधा होती है, वाहनों के पार्किंग की समस्या होती है, बहुधा घर के समाने ही आगन्तुक वाहन कार आदि पार्क कर मंदिर या सार्वजनिक स्थान पर चले जाते हैं, ऐसी परिस्थिति में घर को व्यक्ति को यदि वाहन के साथ बाहर जाना हो तो वह अत्यधिक असुविधा का सामना करता है।

पूजन, वर्षा ऋतु में जब कथा-कीर्तन आदि होते है, तब पार्किंग के साथ-साथ शोरगुल (ध्वनि प्रदूषण) भी हो जाता है। घर में रहने वाले विद्यार्थियों को पढ़ने तथा रोगियों को आराम करने में असुविधा होती है। कई बार ऐसा देखा गया है कि कोई व्यक्ति सुबह पाँच बजे हो रहा है या शौचालय में उसी समय मंदिर में आरती होने लगी तो व्यक्ति असहजता का अनुभव करता है तथा उद्विग्न रहने लगता है।

इसलिए कहा है कि सार्वजनिक स्थल के आसपास घर नहीं बनवाना चाहिए।

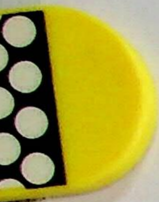
उपजाति

सुदुग्धवृक्षा द्रविणस्य नाशं कुर्वन्ति ते कण्टकिनोऽरिभीतिम्।
प्रजाविनाशं फलिनः समीपे गृहस्य वर्ज्याः कलधौतपुष्पाः।।२९।।

घर के पास दूध वाले वृक्ष हों तो धन का नाश, कांटे वाले वृक्ष हों तो शत्रु का भय तथा फल वाले वृक्ष सन्तान का नाश करते हैं। घर के समीप सुनहरे (पीले) रंग वाले पुष्प नहीं लगाना चाहिए।

शार्दूलविक्रीडित

दुष्टो भूतसमाश्रितोऽपि विटपी नो छिद्यते शक्कित-



स्तद् बिल्वीं श शमीमशोकबकुलौ पुन्नागसचम्पकौ।
द्राक्षा पुष्पकमण्डपं च तिलकान् कृष्णां वपेद्दाडिमीं
सौम्यादेः शुभदौ कपित्थवटावौदुम्बराश्वत्थकौ।।३०।।

भूतों के निवास के कारण दोषपूर्ण वृक्षों को नहीं काटना चाहिए। इसी प्रकार बेल, शमी, अशोक, मौलसिरी, नागकेसर एवं चम्पा को भी नहीं काटना चाहिए। घर के आगे अंगूर व फूल वाली बेल का मंडप, तिलक, पिप्पली व अनार के वृक्ष शुभ है। उत्तर दिशा में कपित्थ (कैथ), पूर्व में वट, दक्षिण में गूलर तथा पश्चिम दिशा में पीपल का वृक्ष शुभ होता है।

व्याख्या-इस श्लोक में हम पाते हैं कि अलग-अलग वृक्ष, अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा से संबंध रखते हैं। कुछ अशुभ वृक्षों के संदर्भ में कहा है कि उन वृक्षों को न काटते हुए, उनके पास शुभ वृक्षों को लगा देना चाहिए। यहाँ जो इकोलॉजी सन्तुलन की बात आज हम करते हैं, सदियों पहले भारत के वास्तु विज्ञान में यह बात अन्तर्निहित है।

दिशानुसार शुभ वृक्ष	
दिशा	शुभ वृक्ष
उत्तर	कपित्थ (कैथ)
पूर्व	वट
दक्षिण	गूलर
पश्चिम	पीपल

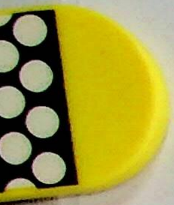
एक और महत्वपूर्ण पहलू उद्घाटित होता है कि एक कुशल वास्तुशास्त्री, वनस्पति विज्ञान में निपुण है। उसे वृक्ष, उसके गुण व वृक्ष व दिशा के संबंध का भी ज्ञान है।

१.१.१५ प्रवेशद्वार

उपजाति

उत्सङ्गनामाभिमुखः प्रवेशः स्यात्पृष्ठभङ्गो भवनस्य पृष्ठात्।
विनाशहेतुः कथितोऽपसव्यः सव्यः प्रशस्तो भवनेऽखिले च।।३१।।

घर के समाने का प्रवेश **उत्संग** कहलाता है। पीछे से प्रवेश होने पर **पृष्ठभंग** कहलाता है, जो विनाश करता है। बाई ओर का प्रवेश **अप्रशस्त**, दाहिनी ओर का प्रवेश **प्रशस्त** (शुभ) होता है।



वास्तुशास्त्र के सभी ग्रन्थों में प्रवेश द्वार के संबंध में विभिन्न प्रकार से विचार किया जाता है। पदविन्यास के आधार पर किस पद में द्वार होना चाहिए इस बात का विचार किया जाता है।

इस श्लोक में प्लाट या भूखण्ड के परिप्रेक्ष्य में बने हुए हिस्से में प्रवेश किस प्रकार है इसके आधार पर शुभाशुभ का विचार करते हैं।

जिस दिशा में प्लाट का मुख हो उसी दिशा में जब बने हुए हिस्से में प्रवेश करते हैं तो वह उत्संग प्रवेश कहलाता है। यह शुभ बताया गया है।

उदाहरण के लिए जब प्लाट का मुख उत्तर दिशा में हो तथा बने हुए हिस्से में भी उत्तर दिशा से प्रवेश करते हैं तो वह उत्संग प्रवेश कहलाता है।

जब प्लाट का मुख पूर्व दिशा में हो तथा बने हुए हिस्से में भी पूर्व दिशा से प्रवेश करते हैं तो वह उत्संग प्रवेश कहलाता है।

जब प्लाट का मुख पश्चिम या दक्षिण दिशा में हो तथा बने हुए हिस्से में भी पश्चिम या दक्षिण दिशा से प्रवेश करते हैं तो वह उत्संग प्रवेश कहलाता है।

उपरोक्त चारों प्रकार के उत्संग प्रवेश शुभ कहे गए हैं।

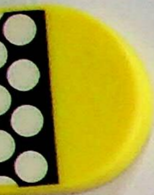
अब अगले प्रकार पृष्ठ-भंग का वर्णन करते हैं कि भूखण्ड व भवन का प्रवेश एक दूसरे से विपरीत दिशा में हो तो वह पृष्ठ भंग प्रवेश कहलाता है। अशुभ है, विनाश करता है।

आगे पूर्णबाहु प्रवेश को बताते हुए कहते हैं कि जब भूखण्ड में प्रवेश करने के उपरान्त सृष्टिमार्ग अर्थात् प्रदक्षिण क्रम से प्रवेश करते हैं तो वह पूर्ण बाहु प्रवेश कहलाता है यह शुभ होता है।

शार्दूलविक्रीडित

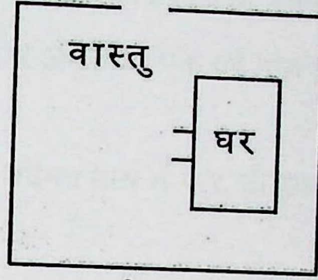
प्रावेशः प्रतिकायको वरुणदिग्वक्त्रो भवेत् सृष्टितो
वामावर्त उदाहृतो यममुखोऽसौ हीनबाहुर्बुधैः।
उत्सङ्गो नरवाहनाभिवदनः सृष्ट्या यथा निर्मितः
प्राग्वक्त्रोऽपि च पूर्णबाहुरुदितो गेहे चतुर्धा पुरे।।३२।।

जिस घर का मुख पश्चिम दिशा में हो उसमें पूर्व से प्रवेश करने के पश्चात् सृष्टि मार्ग से प्रवेश करें तो वह प्रवेश **प्रतिकायक** कहलाता है। जिस घर का मुख दक्षिण दिशा में हो, उसमें बाई ओर से प्रवेश हो तो वह **हीन बाहु** प्रवेश कहलाता है। जिस घर का मुख उत्तर में हो, उसमें सृष्टि मार्ग से प्रवेश करने पर वह उत्संग प्रवेश तथा पूर्व में मुख होने पर प्रवेश **पूर्णबाहु** कहलाता हैं। यह घर तथा नगर के चार प्रकार के प्रवेश कहे गए हैं।

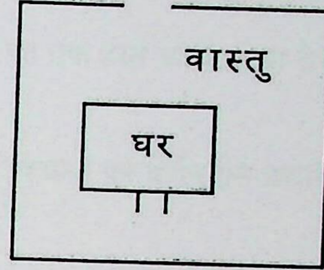


पूर्णबाहु प्रवेश		
प्रकार	भूखण्ड	भवन
१	पूर्व	दक्षिण
२	दक्षिण	पश्चिम
३	पश्चिम	उत्तर
४	उत्तर	पूर्व

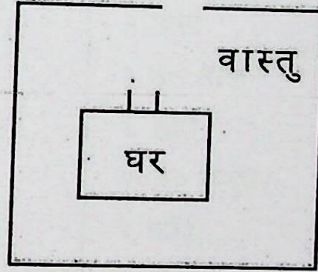
पृष्ठ भंग प्रवेश		
प्रकार	भूखण्ड प्रवेश	भवन प्रवेश
१	पूर्व	पश्चिमं
२	दक्षिण	उत्तर
३	पश्चिम	पूर्व
४	उत्तर	दक्षिण



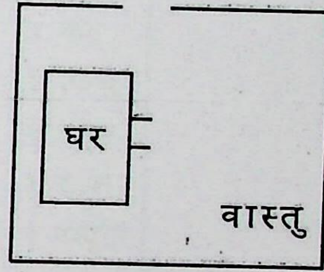
हीनबाहु



प्रत्यक्षाय



उत्संग



पूर्णबाहु

१.१.१६ माप की इकाई

हस्त

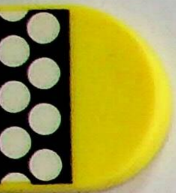
स्रग्धरा

हस्तः पर्वाष्टयुक्तो मुनिवररचितः पर्व चैकं त्रिमात्रम्

मात्रा षण्णां यवानामुदरविमिलिता निस्त्वचामुत्तमानाम्।

पुष्पैः चत्वारि पूर्वं तदनु च विभजेदङ्गुलैः पर्वपुष्पै

निर्ग्रन्थी रक्तकाष्ठो मधुमय उदितः खादिरो वंशधात्वोः।।३३।।



आठ पर्व का एक **हस्त** होता है। तीन मात्राओं (अंगुल) का एक पर्व होता है। उत्तम प्रकार की छिलके के बिना छह यव के मध्य की एक मात्रा (अंगुल) होती है। हस्त के प्रारंभ में तीन-तीन मात्राओं (एक-एक पर्व) की दूरी पर, चार पर्व फूल या चौकड़ी बनाए। ऐसे चार पर्व का आधा हस्त बनाए। शेष आधे हस्त पर एक-एक अंगुल का विभाग करें। प्रत्येक पर्व पर एक-एक फूल या चौकड़ी बनाए। ऐसा जो हस्त हो, वह बिना गांठ का तथा रक्त काष्ठ, महुआ, खेर, बांस, धातु (सोना, ताम्बा आदि) का बना हो।

इस श्लोक में माप की इकाई का वर्णन किया गया है। माप की इकाई यव बताई गई है। आठ यव का एक अंगुल, तीन अंगुल का एक पर्व तथा आठ पर्व का एक हस्त बताया गया है।

मानसार, मयमत ग्रन्थ में माप की इकाई सूक्ष्म इकाइयों का वर्णन इस प्रकार है-

इकाई		
१२ अंगुल	=	१ ताल
२ ताल	=	१ कर
१.७५ ताल	=	१ किष्कु
४ हस्त	=	१ धनुष
२००० धनुष	=	१ क्रोश
२ क्रोश	=	१ गव्यूति
२ गव्यूति	=	१ योजन
१०० योजन	=	१ कोटि

इसके पश्चात एक-एक पर्व पर आधा-हस्त आदि पर फूल या विशेष चिह्न बनाया जाता है। आज के समय में जैसे स्केल आदि का प्रयोग करते हैं वास्तु में हस्त का प्रयोग किया जाता है। व्यक्ति के शरीर के माप के अनुपात में सारा निर्माण किया जाता है। जब भी कोई निर्माण कार्य आरम्भ करते हैं तब सारे माप गृह-स्वामी के शरीर के अनुपात में करते हैं तथा उसके लिए दाहिने हाथ की मध्यमा अंगुली के मध्य पर्व को इकाई लिया जाता है। आजकल के समय में यह इंच के आसपास आता है। प्लाट की लम्बाई-चौड़ाई, कमरों की लम्बाई-चौड़ाई-ऊँचाई तथा खिड़की व द्वार की चौखट आदि का मान भी अंगुल में लिया जाता है।

एक सरल उदाहरण से देखने का प्रयास करते हैं-कीचन (किचन) का प्लेटफॉम गृहणी की ऊँचाई के अनुपात में या अनुसार होना चाहिए। लद्दाख में रहने वाली गृहणी के लिए प्लेटफॉम की ऊँचाई, बाड़मेर-जेसलमेर में रहनेवाली गृहणी के लिए प्लेटफॉम की ऊँचाई से तुलनात्मक रूप से कम होगी।

इसी प्रकार लम्बे व्यक्ति के लिए अधिक लम्बाई का पलंग चाहिए। जैसे बाड़मेर-जेसलमेर राजस्थान, काठियावाड़ आदि स्थानों पर रहने वाले व्यक्तियों के लिए पलंग की लम्बाई, दरवाजे की ऊँचाई आदि सामान्य से अधिक होगी।

इसलिए वास्तु में व्यक्ति के शरीर के अनुपात में निर्माण करने के लिए कहा है।

जिस स्केल का प्रयोग करते हैं उसे हस्त कहते हैं। वह निर्दोष लकड़ी, से धातु (सोना, चाँदी) का उत्तम कहा गया है। क्योंकि धातु के हस्त में तापमान, आर्द्रता आदि का प्रभाव लकड़ी की तुलना में नगण्य होता है।

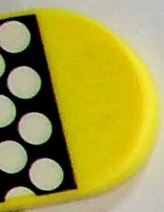
हस्त-प्रकार व प्रयोग

शार्दूलविक्रीडित

ज्येष्ठोऽष्टाभिरथोदरैस्तु मुनिभिर्मध्यस्तु षड्भिर्लघु-
र्माप्यं चोत्तमकेन ग्रामनगरं क्रोशादिकं योजनम्।
प्रासादप्रतिमे नृपस्य भवनं मध्येन हर्म्यादिकं
यानं षड्यवसम्भवेन शयनं छत्रासनास्त्रादिकम्।।३४।।

आठ जौ (यव) के मध्य का एक तसु (अंगुल) होता है। ऐसे चौबीस अंगुल का एक **हस्त** होता है। ऐसा हस्त ज्येष्ठ (बड़ा) हस्त कहलाता है। सात यव मध्य के अंगुल से बना हस्त, मध्यम हस्त कहलाता है तथा छह यव मध्य का बना हस्त, लघु (छोटा) हस्त कहलाता है। ग्राम, नगर, क्रोश, योजन इत्यादि, ज्येष्ठ हस्त में नापना चाहिए। प्रासाद (देवालय, मंदिर), प्रतिमा, राजभवन, साधारण लोगों का घर, मध्यम हस्त से नापना चाहिए। पालकी, वाहन, पलंग, सिंहासन, छत्र, शस्त्र आदि लघु हस्त से नापना चाहिए।

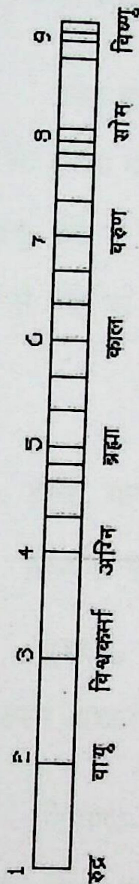
इस श्लोक में बताया गया है कि माप की इकाई के तीन भेद होते हैं- ज्येष्ठ (बड़ी), मध्यम व अधम (छोटी)। छह यव का एक अंगुल होता है यह छोटी इकाई है। सात यव का एक अंगुल यह मध्यम तथा आठ यव का एक अंगुल यह ज्येष्ठ या बड़ी इकाई है। बड़ी इकाई का प्रयोग बड़े मान जैसे नगर, नगरों के बीच की दूरी आदि के लिए करते हैं। मध्यम इकाई का प्रयोग घर के मान तथा छोटी इकाई का प्रयोग उपकरण अर्थात् फर्नीचर आदि में करते हैं।



हस्त के देवता

शालिनी

रुद्रो वायुः विश्वकर्मा हुताशो ब्रह्मा कालस्तोयपः सोम विष्णुः।
पुष्पे देवा मूलतोऽस्मिंश्च मध्यात् पञ्चाष्टान्त्यं ह्यग्निवेदैर्विभज्य।।३५।।



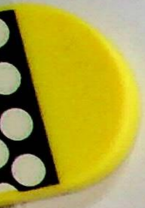
हस्त के प्रारंभ में रुद्र देवता, पहले फूल पर वायु देवता, दूसरे पर विश्वकर्मा, तीसरे फूल पर अग्नि देवता, चौथे पर ब्रह्मा, पांचवें पर काल, छठे पर वरुण, सातवें पर सोम व आठवें फूल पर विष्णु देवता होते हैं। इस प्रमाण से हस्त के नौ देवताओं की स्थापना करें। हस्त के मध्य भाग से शेष रहे उत्तर भाग के पांचवे पर्व के दो भाग करना, आठवें के तीन तथा आखरी के अंगुल के चार भाग करना।

(टिप्पणी- हस्त-एक प्रकार का स्केल है। जैसे आज हम फुट का प्रयोग करते हैं, स्केल का प्रयोग करते हैं, उसी प्रकार हस्त, एक स्केल है, जिस पर विभिन्न माप के चिह्न लगाकर बनाते है ताकि अंगुल व उससे छोटा माप भी नापा जा सके।)

शार्दूलविक्रीडित

ईशो मारुतविश्ववह्निविषयः सूर्यश्च रुद्रो यमो
वैरूपो वसवोऽथ दन्तिवरुणौ षड्वक्त्र इच्छा क्रिया।
ज्ञानं वित्तपतिर्निशाकरजयौ श्रीवासुदेवो हली
कामो विष्णुरिति क्रमेण मरुतो हस्ते त्रयोविंशतिः।।३६।।

हस्त के चौबीस अंगुल पर तेईस रेखा होती है। प्रत्येक रेखा पर एक-एक देवता होते हैं। तेईस रेखाओं के ऊपर तेईस देवता की स्थापना करें। पहली रेखा पर ईश, दूसरी पर वायु की, तीसरी पर विंश्वदेव की, चौथी पर अग्नि की, पांचवीं पर ब्रह्मा की, छठवीं पर सूर्य की, सातवीं पर रुद्र की, आठवीं पर यम की, नवीं पर विश्वकर्मा की, दसवीं पर आठ वसुओं की, ग्यारहवीं रेखा पर गणपति की, बारहवीं पर वरुण की, तेरहवी पर कार्तिकस्वामी की, चौदहवीं पर इच्छा देवी की, पन्द्रहवीं पर क्रियादेवी की, सोलहवीं पर ज्ञान की, सत्रहवीं पर कुबेर की, अठारहवीं पर चन्द्रमा की, उन्नीसवी पर जय की, बीसवीं पर वासुदेव की, इक्कीसवीं पर बलभद्र की, बाईसवीं पर कामदेव की तथा तेईसवीं रेखा पर विष्णु की स्थापना करें (तथा सबका पूजन करें)।



हस्त धारण की विधि

इन्द्रवज्रा

उच्चाटनं रोगभयं च दुःखं वह्नेर्भयं पीडनकं प्रजायाः।
मृत्युर्विनाशोऽपि धनक्षयः स्यात् मोहः क्रमाद् दैवतपीडनेन।।३७।।

(हस्त धारण करते (उठाते) समय देवता दबना नहीं चाहिए, यदि दब जाए तो उसका फल इस प्रकार होता है।)

हस्त के मूल देवता शिल्पि के हाथ से दबे तो उच्चाटन, पहले फूल का देवता दबे तो रोग, दूसरे फूल के देवता दबे तो दुःख, तीसरे के दबे तो अग्नि का भय, चौथे के दबे तो बालकों को दुःख, पांचवे से मृत्यु, छठे से कुटुम्ब का नाश, सातवें फूल के देवता दबने से धन का क्षय तथा आठवें फूल के देवता दबने से मोह या चित्त भ्रम होता है।

शालिनी

हस्तो यत्नात् पुष्पयोरन्तराले त्वष्टा धार्यो मन्दिरादौ निवेशे।
हस्तात् भूमौ यात्यकस्मात् तदासौ कार्ये विघ्नं दुःखमाविष्करोति।।३८।।

सूत्रधार, घर का कार्य प्रारम्भ करने में हस्त को यत्न से दो फूलों के बीच से पकड़ना चाहिए। अगर हस्त अचानक भूमि पर गिर जाए तो कार्य में विघ्न या दुःख होता है।

(टिप्पणी- दो फूल के बीच से पकड़ने पर उसके निशान (चिह्न) खराब नहीं होते, धुंधले नहीं पड़ते तथा मिटते नहीं हैं, जिससे कार्य करते समय संशय नहीं होता कि यह कौन सा चिह्न है, अतः गलती नहीं होती है। हस्त का भूमि पर गिरना, असावधानी दर्शाता है, अतः कार्य करते समय चित्त का सावधान होना आवश्यक है।)

शार्दूलविक्रीडित

तालो द्वादशमात्रिकापरिमितस्तालद्वयं स्यात्करः
पादोनद्विकरोऽपि किष्कुरुदितश्चापं चतुर्भिः करैः।
क्रोशो दण्डसहस्रयुग्मुदितो द्वाभ्यां च गव्यूतिका
ताभ्यां योजनमेव भूमिरखिला कोटिः शतं योजनैः।।३९।।



बारह अंगुल का एक ताल, दो ताल का एक कर (हस्त), पौने दो हस्त का किष्कु, चार हस्त का एक धनुष होता है। दो हजार धनुष का एक क्रोश, दो क्रोश का एक गव्यूति, दो गव्यूति का एक योजन तथा सौ योजन का एक कोटि होता है। (सौ करोड़ योजन की दूरी) पृथ्वी होती है।

आठ सूत्र

सूत्राष्टकं दृष्टिनृहस्तमौञ्जं कार्पासिकं स्यादवलम्बसंज्ञम्।

काष्ठं च सृष्ट्याख्यमतो विलेख्यमित्यष्टसूत्राणि वदन्ति सन्तः।४०।

सूत्र के जानकारों ने आठ प्रकार के सूत्र कहे हैं। पहला दृष्टि सूत्र, दूसरा हस्त, तीसरा मुंज, चौथा कपास सूत्र, पांचवां अवलम्ब (साहुल), छठा गुनियाँ, सातवां साधणी (रेवल) तथा आठवां विलेख्य होता है।

१.१.१७ सूत्रधार के लक्षण

सुशीलश्च(लः) चतुरो दक्षः शास्त्रज्ञो लोभवर्जितः।

क्षमायुक्तो द्विजश्चैव सूत्रधारः स उच्यते।।४१।।

सूत्रधार सुशील, चतुर, कुशल, वास्तुशास्त्र का ज्ञाता, लोभ न रखने वाला, क्षमाशील व द्विज (ब्राह्मण) होता है।

व्याख्या- वास्तुशास्त्र के लगभग सभी ग्रन्थों में स्थपति लक्षण का वर्णन मिलता है। यहाँ भी स्थपति लक्षण का वर्णन करते हुए कहते हैं कि स्थपति सुशील अर्थात् शीलवान होना चाहिए वह आचरण से पवित्र होना चाहिए, क्योंकि वह समाज का एक प्रतिष्ठित व्यक्ति है तथा अन्य लोग उसके आचरण व व्यवहार का अनुसरण करते हैं। वह चतुर, कुशल, वास्तुशास्त्र का ज्ञाता, लोभ न करने वाला, क्षमाशील व द्विज होना चाहिए।

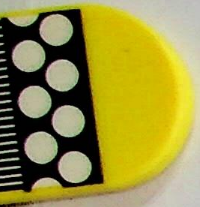
मनुष्यालय चन्द्रिका में कहा गया है कि-

सर्वशास्त्रविहितक्रियापटुः सर्वदावहितमानसः शुचिः।

धार्मिको विगतमत्सरादिको

यः स च स्थपतिरस्तु सत्यवाक्।।१२।।१

स्थपति वह है, जो सभी शास्त्रों में कही गई तकनीकों के क्रियान्वयन में निपुण हो। जिसका मन पवित्र एवं शान्त हो, जो धार्मिक हो, जो मत्सर आदि दोषों से रहित हो एवं जो केवल सत्य वचन ही कहता हो, ऐसा व्यक्ति स्थपति कहलाता है।



जानीयात् स्थापनार्हं स्थपतिमथ गुणैः प्रायशस्तेन तुल्यः
सूत्रग्राही सुतो वा स्थपतिमतिगतिप्रेक्षकः शिष्यको वा।
स्थूलानां तक्षणात् तक्षक इति कथितः सन्ततं हृष्टचित्तो
दार्वाद्यन्योन्यसंमेलनपटुरुदुतो वर्धकिः सावधानः।।१३।।१

स्थपति, स्थापना के कार्य का ज्ञाता होता है। सूत्रग्राही या तो स्थपति का पुत्र होता है, जो की स्थपति के समान ही सभी गुण रखता है या स्थपति का शिष्य होता है, जो की स्थपति के मन की बात जानकर, उसके अनुसार कार्य करता है। तक्षक, तक्षण अर्थात् पदार्थों (लकड़ी, पत्थर इत्यादि) को उचित आकार देना, इत्यादि कार्यों में लगा रहता है। वह हमेशा प्रसन्न चित्त होना चाहिए। वर्धकि, अपने कार्य में कुशल एवं लकड़ी इत्यादि को सावधानी पूर्वक जोड़ने में निपुण होता है।

व्याख्या

यहाँ इन चार श्लोकों में स्थपति, सूत्रग्राही, वर्धकि व तक्षक के लक्षणों का वर्णन मिलता है। ये चारों निर्माण के कार्य को सम्पन्न करते हैं। इन चारों में स्थपति प्रमुख होता है अन्य तीन उसके (स्थपति) के आधीन कार्य करते हैं।

यह **स्थपति**, वास्तुविद्या से सम्बन्धित सभी शास्त्रों का ज्ञान रखने वाला तथा उससे सम्बन्धित क्रियाओं में निपुण होता है। वह मन से पवित्र, सदा सच बोलने वाला तथा मत्सर आदि सात दोषों से रहित होता है।

(टिप्पणी- सप्त व्यसन- मृगया, द्यूत, दिवा-स्वपन, परिवाद, स्त्रीयाह, मद, taurya-trika, vrithatya,)

(मत्सर आदि ७ दोष-ईर्ष्यालु, लालची, दरिद्र, दुष्ट, घमंडी, शत्रुता रखने वाला, क्रोधी)

सूत्रग्राही, सूत्र के कार्य में निपुण होता है तथा स्थपति का सहायक होता है। वह भी शास्त्र का ज्ञाता होता है तथा तक्षक व वर्धकि का गुरु होता है।

वर्धकि, तक्षक का गुरु होता है। वह लकड़ी, पत्थर इत्यादि जोड़ने के कार्य में निपुण होता है। वह निर्णय लेने में कुशल होता है। वेद का ज्ञाता तथा चित्र कर्म में कुशल होता है।

तक्षक लकड़ी तथा पत्थर काटने, उन्हें उचित आकार देने में निपुण होता है तथा सहयोगशील, मित्रवत, दयावान तथा वेद का जानकार होता है।



किसी भी घर का निर्माण सफलतापूर्वक एवं दक्षता के साथ पूर्ण कराने के लिए, इन चारों का होना आवश्यक है। इन सभी के सन्तुष्ट तथा प्रसन्नचित्त होकर कार्य करने पर ही गृहनिर्माण उचित प्रकार से संभव है।

समरांगण सूत्रधार के अनुसार

स्थपति के चार लक्षण बताए गए हैं:-

(१) शास्त्र

(२) कर्म

(३) प्रज्ञा

(४) शील

(१) शास्त्र-एक स्थपति को, इन सब शास्त्रों (वास्तु शास्त्र से सम्बन्धित शास्त्रों) को जानकर, उनके लक्षणों के अनुसार कार्य करना चाहिए।

जो व्यक्ति शास्त्र को न जानकर, कार्य-संचालक स्थपति का ढोंग करता है, उस राजहिंसक कुस्थपति को, राजा स्वयं, मृत्यु के समान, उसे मारें, क्योंकि ऐसा स्थपति मिथ्या-ज्ञान के कारण, अहंकारी है और जिसने शास्त्र में परिश्रम भी नहीं किया है, वह संसार में लोगों की अकारण मृत्यु के समान विचरण करता है।

वास्तुशास्त्री को, प्रसिद्ध शास्त्र-सिद्धान्तों से अपने वास्तुज्ञान को तैयार करना चाहिए। उसे वास्तु-पद-विन्यास में सुनिश्चित शिरावंशों के साथ, मर्म स्थान तथा उसके अंग-प्रत्यंग की जानकारी, शास्त्र के अनुसार होना चाहिए।

(२) कर्म- जो स्थपति, केवल शास्त्र को जानता है, परन्तु कार्य करने में दक्ष नहीं है, एक्सपर्ट नहीं है। वह कार्य के समय, युद्ध को देखकर डरपोक के समान, मोह को प्राप्त होता है।

इसके विपरीत जो केवल कार्य करना जानता है, परन्तु कैसे करना, यह नहीं पता, वह नेत्रहीन (अन्धे) के समान है।



आप ने बचपन में, स्कूल में, एक कहानी, पढ़ी होगी। एक नेत्रहीन व एक पंगु (लंगड़ा, चलने में असमर्थ) दो दोस्त थे। दोनों मेले में जाना चाहते थे। तब पंगु उस नेत्रहीन के कन्धे पर बैठ गया तथा वह नेत्रहीन को रास्ता बताता रहा, नेत्रहीन चलता रहा इस प्रकार दोनों मेले में पहुँच गए।

यहाँ पंगु, कर्महीन शास्त्रज्ञ को कहा गया है। केवल शास्त्रीय ज्ञान, केवल थ्योरी का ज्ञान पर्याप्त नहीं है, उसका प्रेक्टीकल पक्ष, उसका प्रायोगिक पक्ष भी स्पष्ट होना व कार्य करना आना चाहिए।

शास्त्रहीन कर्म को नेत्रहीन कहा है। एक स्थपति को, प्लाट का ले ऑउट बनाना, ड्राईंग बनाना, मर्म निकालना, उस पर गुनिया करना, दिशा ज्ञात करना, पदविन्यास करना, कमरों आदि का आयादि निकालना, कॉलम की स्थिति, उन्हें प्लेस करना, दीवार आदि की चुनाई आदि-आदि अनेकानेक कार्य, प्रेक्टीकल करना, उसे आना चाहिए।

जैसे आटा गूँथते समय यदि यह पता भी हो कि आटे में कितना पानी लगता है, परन्तु गूंथना ठीक से न आए तो आटा ठीक से नहीं गुंथेगा। इसी प्रकार की थ्योरी जानना अलग बात है तो, उसे गूंथना बिल्कुल ही अलग बात है।

(३) **प्रज्ञा**-शास्त्र तथा कर्म का भली प्रकार ज्ञान होने के अलावा, स्थपति में प्रति उत्पन्न मति (तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता) की होना आवश्यक है। उसकी **प्रज्ञा** (विशेष प्रकार की चेतना, बुद्धि) अत्यन्त विकसित होना चाहिए। उसे प्रज्ञावान होना चाहिए। इस प्रज्ञा को विकसित करने में ध्यान की जो अपनी विधि है वह विशेष रूप से सहायक होती है। अतः प्रतिदिन दोनों समय नियमित रूप से ध्यान करना परम आवश्यक है।

यह जो वास्तु का विषय है, वास्तुशास्त्र है, वह अत्यन्त ही कठिन पहेली के समान है, अनेक अर्थ को रखने वाला है, गुप्त रहस्यों को अपने अन्दर समेटे है तथा बहुत विस्तारित है, ऐसे विशाल सागर को केवल प्रज्ञा के सहारे ही पार किया जा सकता है।

(४) **शील**-शास्त्र का भी ज्ञान हो, कार्य करने में भी कुशल हो तथा प्रज्ञावान होने पर यदि स्थपति शील से रहित है, उसका आचरण पवित्र नहीं हो तो वह पूजनीय नहीं हो सकता है। एक स्थपति को आचरण से भी पवित्र होना चाहिए। उसमें रोष, द्वेष, लोभ, मोह तथा राग नहीं होना चाहिए।

इस संसार में शीलवान स्थपति ही पूजनीय होता है। उसका दर्शन ही शुभ माना गया है।

स्थपति का न केवल मन पवित्र होना चाहिए, बल्कि यह बात उसके आचरण एवं व्यवहार से भी दिखना चाहिए।

विश्लेषणः- (आधुनिक समय में परिशीलन):-

इस प्रकार से हमने देखा कि ग्रन्थ में प्रारम्भ में वन्दना या स्तुति की गई है। प्रत्येक कार्य को आरम्भ करने से पहले स्तुति करने से मन शान्त व स्थिर होता है, अतः कार्य आरम्भ करने से पहले प्रार्थना, स्तुति या अहं भाव का समर्पण करना चाहिए। (श्लोक १-४)

उसके पश्चात गृह की प्रंशसा की गई है। आज भी हमें यह जानना आवश्यक है कि जो भी कार्य व्यक्ति करता है, उसके महत्व का प्रतिपादन किया जाता है। यहाँ ग्रन्थ में बताया गया है कि गृहस्थ पर अन्य आश्रम आश्रित हैं, इसलिए यह महत्वपूर्ण है। समस्त कार्य गृह से ही संचालित किए जाते हैं, अतः गृह निर्माण वास्तु के अनुरुप करवाना चाहिए। इसी प्रकार कार्य-क्षेत्र ऑफिस, फेक्टरी, इन्डस्ट्री, नगर आदि भी वास्तु के अनुरुप होने पर ही वहाँ कार्य करने वाले, रहने वाले उत्तरोत्तर विकास कर समृद्ध होते हैं। (श्लोक ५)

उसके पश्चात् श्लोक क्रमांक ६ से ९ तक गृहारम्भ मुहूर्त का वर्णन किया गया है, यह बताया है जब प्रकृति अनुकूल हो, बहुत अधिक वर्षा या गर्मी न हो तब कार्य का आरम्भ करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक १० व ११ में दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इस विधि का प्रयोग पर हमें शुद्ध पूर्व-पश्चिम आदि दिशा प्राप्त होती है। इस प्रक्रिया द्वारा हम आज भी त्रुटिहीन दिशा ज्ञात कर सकते हैं।

श्लोक क्रमांक १२ से १४ तक भूमि चयन विधि का वर्णन है। जिस स्थान पर भी निर्माण कार्य करना हो, वह स्थान कार्य के अनुरुप हो, वहाँ का वातावरण ऐसा हो, प्रकृति ऐसी हो जो कार्य करने में सहायक हो, वाद-विवाद उपस्थित न हों। ग्रन्थ में कार्य के अनुसार भूमि का रंग, गन्ध, स्वाद आदि बताया है। इन रंग आदि का प्रयोग आन्तरिक सज्जा, कलर स्कीम आदि में कर हम, कार्य के अनुकूल ऊर्जा निर्मित कर सकते हैं। रंग, गन्ध व स्वाद के माध्यम से रंग, गन्ध व स्वाद के गुण बताए हैं।

श्लोक क्रमांक १५ में वास्तुपूजन के माध्यम से स्थान को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करने की विधि का वर्णन है।

कोई भी स्थान निर्माण के अनुकूल है अथवा नहीं, इसकी परीक्षा के लिए भूमि परीक्षण विधि का वर्णन किया है। यह वर्णन श्लोक क्रमांक १५-१६ में है। इन विधियों से मिट्टी के घनत्व, आर्द्रता आदि की परीक्षा करते हैं। निर्माण के अनुकूल होने पर हम निर्माण कार्य करते हैं। प्रतिकूल होने पर आवश्यक सावधानी रखते हैं। यह विधियाँ आधुनिक विधियों से कम खर्चीली हैं तथा इनसे परिणाम भी शीघ्र व सटीक प्राप्त होते हैं। इसके लिए बहुत मँहगी प्रयोगशाला आदि की भी आवश्यकता नहीं होती है।

श्लोक क्रमांक १७ में भूमि के झुकाव पर प्रकाश डाला है। साथ ही यह भी बताया है कि जिस भूमि का झुकाव उत्तर, पूर्व या ईशान दिशा की ओर हो वह भूमि शुभ है। इसके अतिरिक्त एक पक्ष हमें और जानना है कि किस कार्य के लिए कौन से झुकाव वाली भूमि शुभ है। यह बताया है कि ब्राह्मणादि के लिए उत्तर आदि के क्रम से झुकाव वाली भूमि शुभ है। इस प्रकार हम वर्ण के अनुसार शुभ प्लव जान सकते हैं तथा आज के समय में कार्य के अनुसार प्लव का निर्धारण कर सकते हैं।

श्लोक क्रमांक १८ से २१ तक में खूँटी स्थापन, शल्य ज्ञान तथा शल्य होने के परिणाम को बताया है। यहाँ सांकेतिक रुप से बताया गया है कि ब्राह्मण आदि वर्ण के क्रम से किस वृक्ष की लकड़ी शुभ है। इससे हमें ज्ञात होता है कि वर्ण के अनुरुप लकड़ी का प्रयोग करने से वर्णोचित गुण विकसित होते हैं।

आधुनिक समय में भूमि में शल्य को महत्व नहीं दिया जाता था, परन्तु पिछले कुछ वर्षों में इस ओर भी वास्तुशास्त्रियों ने ध्यान खींचा है। जब अनुभवों के आधार पर यह सिद्ध हो गया कि जिस स्थान पर पूर्व में कोई पशु आदि की हड्डियों को रखा गया, वहाँ फेक्टरी आदि लगाने पर सफलता नहीं मिली। इसी प्रकार भूमि में अन्य नकारात्मक ऊर्जा वाले पदार्थ (शल्य) होने पर बाधा का सामना लोगों ने किया। तब व्यक्ति इस ओर ध्यान देने लगे। यह वास्तुशास्त्र के महत्व को प्रतिपादित करता है कि प्राचीन समय में पहले भूमि को पुरुष जितनी गहराई तक शुद्ध करके उस पर निर्माण करते थे, जिससे उसमें रहने वाले व्यक्ति सुखी होते थे।

श्लोक क्रमांक २२ से २४ में गृहारम्भ किस दिशा से आरम्भ करना चाहिए इसके महत्व को बताया है। इस संबंध पृथ्वी का सूर्य के चारों ओर चक्कर लगाने से है। अतः वर्ष के किस मास में किस दिशा से गृहारम्भ करना चाहिए ताकि निर्माण प्रकृति के अनुकूल हो।

श्लोक क्रमांक २५-२६ में बताया है कि नींव की खुदाई ठोस आधार तक करना, नींव को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना अभियान्त्रिकी के सिद्धान्तानुसार दीवार की मोटाई नीचे से ऊपर क्रमशः एक निश्चित अनुपात में कम करना चाहिए।

श्लोक क्रमांक २७ में बताया है कि विभिन्न अवसर (५) पर वास्तुपूजन करना अर्थात् (१) सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना तथा (२) निर्माण की जाँच करना कि निर्माण ठीक प्रकार से चल रहा है, कहीं कोई त्रुटि आदि तो नहीं है।

श्लोक क्रमांक २८ में बताया है कि गृह के एकदम समीप वृक्ष नहीं होना चाहिए, इससे निर्माण को नुकसान पहुँचता है तथा चोरी आदि का भी भय रहता है। इसके अतिरिक्त वृक्ष रात्रि में कार्बन-डायऑक्साईड भी छोड़ते हैं जो मनुष्यों के लिए शुभ नहीं है।

गृह के एकदम समीप विशाल, भव्य मंदिर आदि सार्वजनिक स्थान भी शुभ नहीं है। इससे गृही असुविधा का अनुभव करता है।

उपरोक्त सभी सिद्धान्त प्रायोगिक हैं तथा आज भी प्रासंगिक हैं।

श्लोक क्रमांक २८ से ३० शुभाशुभ वृक्षों को बताया हैं। यह आधुनिक समय में लेन्डस्केपिंग के लिए उपयोगी है।

श्लोक क्रमांक ३१-३२ में बताया है कि गृह में प्रवेश द्वार, मुख्य द्वार के सामने या बाजू में होना शुभ है, इससे गृह में बैठा व्यक्ति, जाने-आने वाले व्यक्तियों को देखा सकता है तथा घर सुरक्षित रहता है। इसके अतिरिक्त ऊर्जा उचित मार्ग से घर में प्रवेश करती है।

श्लोक क्रमांक ३३ से ३९ में माप की इकाई का वर्णन किया है। यह माप शरीर के अनुपात में होता है। आधुनिक समय से कहीं आगे जाकर माप का निर्धारण किया है। इसी के आधार पर हम कह सकते हैं जहाँ व्यक्तियों की सामान्य लम्बाई अधिक होती है, जैसे बाड़मेर, जेसलमेर आदि क्षेत्र वहाँ उनके दरवाजे, पलंग आदि का मान भी उसी अनुपात में अधिक होता है। ठीक उसी प्रकार जहाँ व्यक्तियों की सामान्य लम्बाई कम होती है वहाँ पलंग आदि उसी मान से बनाए जाते हैं।

इस अध्याय के अन्तिम श्लोक ४१ में सूत्रधार (वास्तुशास्त्री) के लक्षण बताए हैं। आज भी अर्किटेक्ट, वास्तुशास्त्री, सिविल इंजीनियरींग आदि इन्हीं गुणों से युक्त होने पर ही व्यक्ति, परिवार, समाज व राष्ट्र के उत्थान में योगदान दे सकते हैं अन्यथा होने पर राष्ट्र की बहुत अधिक हानि होती है।



१.२ वास्तुलक्षण

१.२.१ वास्तुपुरुष उत्पत्ति

शार्दूलविक्रीडित

सङ्ग्रामेऽन्धकरुद्रयोश्च पतितः स्वेदो महेशात् क्षितौ
तस्माद् भूतमभूच्च भीतिजननं द्यावापृथिव्योर्महत्।
तद्देवैः रभसा विगृह्य निहितं भूमावधोवक्त्रकम्
देवानां वसनाच्च वास्तुपुरुषस्तेनैव पूज्यो बुधैः।।१।।

अन्धक दैत्य के साथ संग्राम में, महादेव के पसीने की बूँद, भूमि पर पड़ी तो भूमि व आकाश को भय उत्पन्न करता हुआ एक बड़ा प्राणी उत्पन्न हुआ। उस प्राणी को सब देवताओं ने पकड़ कर, नीचे मुख कर गिराकर, उसके ऊपर बैठ गए। वह प्राणी वास्तुपुरुष कहलाया। बुद्धिमान, वास्तुपुरुष का पूजन अवश्य करें।

व्याख्या-इस श्लोक में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। इसमें बताया गया है कि महादेव के पसीने की बूँद से वास्तुपुरुष की उत्पत्ति हुई है। इस ग्रन्थ में वास्तुपुरुष उत्पत्ति तथा मत्स्य पुराण में वर्णित वास्तुपुरुष की उत्पत्ति में काफी समानता है। विश्वकर्म प्रकाश तथा समरांगण सूत्रधार में वास्तुपुरुष की उत्पत्ति अन्य प्रकार से बताई गई है। विश्वकर्म प्रकाश ग्रन्थ में बताया गया है कि वास्तुपुरुष की उत्पत्ति त्रेतायुग के मध्य में हुई तो समरांगण सूत्रधार में कहा है कि जब मनुष्य में रजोगुण चेतना प्रधान होने लगी तब वास्तुदोष का लगना प्रारम्भ हुआ।

अपने यहाँ सामान्य रुप में सांकेतिक विद्या का प्रयोग किया जाता है। यहाँ भी सांकेतिक रुप से वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है। जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा है।

जब हम किसी भी ग्राम, नगर, दुर्ग, जलाशय या घर आदि का निर्माण करते हैं तब उस पूरे क्षेत्र पर एक वास्तुपुरुष की कल्पना करते हैं। उस वास्तुपुरुष के विभिन्न अंगों पर विभिन्न देवता की स्थापना करते हैं या उस वास्तुपुरुष के विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रकार की ऊर्जा होती है, उसे देवता के नाम से कहा है।



इसका सामञ्जस्य करने पर हम पाते हैं कि प्लाट के विभिन्न भाग में अलग-अलग देवता या अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा होती है। जो ऊर्जा जिस कार्य के लिए अनुकूल है, वहाँ उस प्रकार का निर्माण करने से, प्रकृति की पोषणकारी ऊर्जा प्राप्त होती है, जिसे कहते हैं कि प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है तथा विपरीत करने पर कार्य में बाधा आती है। ऊर्जा के अनुकूल निर्माण करना ही वास्तुविद्या है।

इसलिए कहा है कि बुद्धिमान वास्तुपूजन अवश्य करें। इसका तात्पर्य यह है कि प्लाट पर विभिन्न देवता की स्थापना करना अर्थात् भूखण्ड के किस भाग में किस प्रकार की ऊर्जा है, उसे जानना तथा उसके अनुसार निर्माण करना। इसी बात को आगामी श्लोक में और अधिक स्पष्ट किया गया है।

१.२.२ वास्तुपूजा

प्रासादे भवने तडागखनने कूपे च वापीवने
जीर्णोद्धारे पुरे च यागभवने प्रारम्भनिर्वर्तने।
वास्तोः पूजनकं सुखाय कथितं पूजा विना हानये

प्रासाद (देवालय, मंदिर), घर, तालाब, कुआँ, बाबड़ी बनवाते समय, बाग में वृक्ष का रोपण करते समय, जीर्णोद्धार, नगर, यज्ञ आदि कार्य के प्रारम्भ में तथा समाप्ति पर वास्तुपूजन करें तो सुख होता है, न करें तो हानि होती है।

व्याख्या-वास्तु पूजा का महत्व यहाँ वास्तु पुरुष के माध्यम से यह बताया गया है कि किसी भी निर्माण कार्य को करते समय तथा कार्य की समाप्ति पर वास्तुपूजन अवश्य करना चाहिए। प्रारम्भ में दिशा का निर्धारण कर, दिशा के अनुसार निर्माण करना चाहिए, इस बात का ध्यान रखते हैं। कार्य की समाप्ति के समय पूजा के माध्यम से हम दो बातों को विशेष रूप से देखते हैं कि निर्माण कार्य प्लानिंग के अनुसार हुआ या नहीं तथा दूसरा, पूरे निर्मित क्षेत्र को सकारात्मक ऊर्जा से भर कर चार्ज करते हैं, एक प्रकार से प्राणों का संचार करते हैं।

वास्तु पुरुष-किसी भी भूमि के हिस्से या भूखण्ड पर सूर्य, चन्द्र, अन्य ग्रह व नक्षत्र के कारण ऊर्जा के विभिन्न क्षेत्र उत्पन्न होते हैं। उसकी कल्पना एक वास्तुपुरुष के रुप में की गई है। उस भूखण्ड पर उत्पन्न हुई विभिन्न ऊर्जा को वास्तुपुरुष के अलग-अलग देवता के नाम से कहा गया है।

किसी भी महत्वपूर्ण कार्य जैसे मन्दिर, महल, घर, तालाब, जलाशय, जीर्णोद्धार, नगर, यज्ञ आदि कार्य के आरम्भ एवं समापन पर वास्तुपूजन करें। मन्दिर आदि के निर्माण में १४ अवसरों पर वास्तुपूजन



करना चाहिए एवं घरों के लिए पाँच अवसरों पर निर्माण से समाप्ति तक वास्तुपूजन करना चाहिए। तात्पर्य यह है कि मंदिर निर्माण के समय अधिक अवसर पर जाँच की जाती है कि निर्माण कार्य, प्लानिंग के अनुसार हो रहा है या नहीं। मंदिर एक ऐसा स्थान है जहाँ की ऊर्जा पूरे नगर को प्रभावित करती है अतः निर्माण कार्य में अधिक सावधानी रखी जाती है।

इसीलिए श्लोक में कहा है कि वास्तुपूजन करने से सुख तथा न करने से हानि होती है।

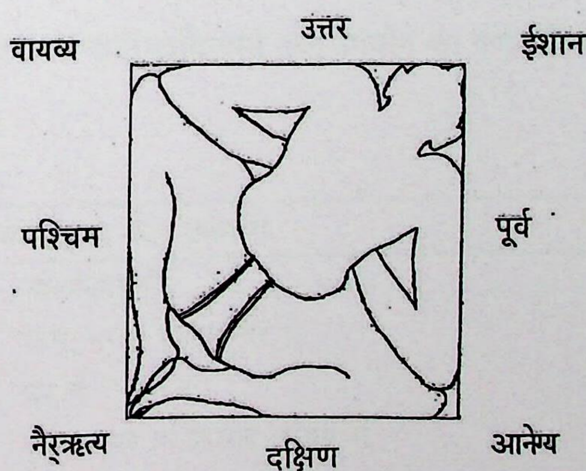
वास्तुपूजन करते समय पद विन्यास किया जाता है। पद अर्थात् खाना, एक-एक पद में देवता (ऊर्जा) की स्थापना की जाती है। जिसका वर्णन आगे आएगा। साथ ही मर्म स्थान (नाजुक बिन्दु) ज्ञात किए जाते हैं तथा यह सावधानी रखी जाती है कि मर्म स्थान पर दीवार या खम्बा न आए।

इसके अतिरिक्त वास्तुपुरुष की कल्पना एक पुरुष के रूप में की गई है। उसके अंग-प्रत्यंग होते हैं। वास्तुपूरुष का जो अंग पीड़ित होता है गृहस्वामी के उसी अंग में पीड़ा होती है।

१.२.३ वास्तुपुरुष का शरीर

पादौ रक्षसि कं शिवेऽह्निकरयोः सन्धी च कोणद्वये।।२।।

यह वास्तुपुरुष औंधा है, दोनों पैर नैर्ऋत्य कोण में एक साथ जुड़े, मस्तक ईशान कोण में, हाथ व पैर की सन्धियाँ अग्नि व वायव्य कोण में हैं।





१.२.४ वास्तुपदविन्यास

इन्द्रवज्रा

क्षेत्राकृतिर्वास्तुरिहार्चनीयस्त्वेकांशतो भागसहस्त्रयुक्तः।
साधारणोऽष्टाष्टपदोऽपि तेषु चैकाधिकाशीतिपदस्तथैव।।३।।

वास्तुपुरुष की पूजा क्षेत्र की आकृति के अनुकूल करना चाहिए। एक हजार पद भी होता है। साधारण कर्म में चौंसठ या इक्यासी पद में वास्तु पूजन करें।

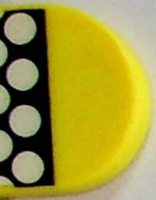
शार्दूलविक्रीडित

ग्रामे भूपतिमन्दिरे च नगरे पूज्यश्चतुष्षष्टिकैः
एकाशीतिपदैः समस्तभवने जीर्णे नवाब्ध्यंशकैः।
प्रासादेऽथ शतांशकैस्तु सकले पूज्यस्तथा मण्डपे
कूपे षण्णवचन्द्रभागसहिते वापी तडागे वने।।४।।

ग्राम, नगर, राजमन्दिर में चौंसठ पद, घर में इक्यासी पद, जीर्णोद्धार में उनचास पद, सब प्रकार के प्रासाद (देवालय), मंडप में एक सौ पद, कुआँ, तालाब, बाबड़ी, वन में एक सौ छियानवे पद का वास्तु पूजें।

व्याख्या- मानसार, मयमत आदि वास्तुशस्त्र के ग्रन्थ में ३२ प्रकार का वास्तुपदविन्यास बताया है। यहाँ राजवल्लभ में कुछ प्रकार के वास्तुपदविन्यास तथा उपयोग का वर्णन किया गया है।

पदविन्यास (पद का)	उपयोग
४९	जीर्णोद्धार में
६४	ग्राम, नगर, राजमन्दिर में
८१	घर में
१००	सब प्रकार के प्रासाद, मंडप में
१४४	रथशाला, अश्वशाला, गजशाला, यानशाला जल यन्त्र
१९६	कुआँ, तालाब, बाबड़ी, वन में
१०००	किले की प्रतिष्ठा में, नगर को बसाने में, बड़ी पूजा में, करोड़ आहुति देते समय, मेरु प्रासाद में, देश व बसाहट, बड़े लिंग



१.२.५ वास्तु पुरुष देवता

ईशो मूर्द्धनि समाश्रितः श्रवणयोः पर्जन्यनामा दितिरापस्तस्य गले च स्कन्धयुगले प्रोक्तौ जयश्चादिति।

उक्तावर्यमभूधरौ स्तनयुगे स्यादापवत्सो हृदि

पञ्चेन्द्रादिसुराश्च दक्षिणभुजे वामे च नागादयः।।५।।

वास्तुपुरुष के सिर में महादेव, दोनों कानों में पर्जन्य व दिति, गले में आप की, दोनों कन्धों में जय व अदिति, दोनों स्तन पर अर्यमा व भूधर, हृदय पर आपवत्स, दाहिनी बाहु में इन्द्र आदि (इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश व अन्तरिक्ष) की, बाईं बाहु पर नाग आदि (नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर व शैल) की पूजा करें।

सावित्रः सविता च दक्षिणकरे वामे द्वयं रुद्रतः

मृत्युर्मैत्रगमस्तथोरुविषये स्यान्नाभिपृष्ठे विधिः।

मेढ्रे शक्रजयौ च जानुयुगले तौ वह्निरोगौ स्मृतौ

पूष्णो नन्दिगणाश्च सप्तविबुधा गुल्फौ पदौ पैतृकः।।६।।

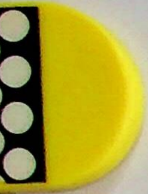
दाहिने हाथ पर सवित्र व सविता की, बाएँ हाथ पर रुद्र व रुद्रदास की, उरु पर मृत्यु व मैत्र की, नाभि के पीछे ब्रह्मा की, उपस्थ (लिंग) पर इन्द्र व जय की, घुटनों पर अग्नि व रोग की तथा पिण्डली में पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंग व मृग तथा नन्दीगण आदि (नन्दी, सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शेष (शोष) व पापयक्ष्मा) सात देवता होते हैं तथा दोनों पैर पर पितृ देवता की स्थापना करें।

वास्तुपुरुष के किस अंग पर कौन सा देवता स्थित है, यह बताया गया है। जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि देवता अर्थात् ऊर्जा। अतः वास्तुपुरुष के किस अंग में कौन सी ऊर्जा है यह बताया गया है।

इन्द्रवज्रा

ईशस्तु पर्जन्यजयेन्द्रसूर्याः सत्यो भृशाकाश त एव पूर्वे।

वह्निश्च पूषा वितथाभिधानो गृहक्षतः प्रेतपतिः क्रमेण।।७।।



उपजाति

गन्धर्वभृङ्गौ मृगपितृसंज्ञौ द्वारस्थसुग्रीवकपुष्पदन्ताः।
जलाधिनाथोऽप्यसुरस्य शे(शो)षः सपापयक्ष्मापि च रोगनागौ।।८।।
मुख्यश्च भल्लाटकुबेरशैलास्तथैव बाह्येऽदितितो दितिश्च।
द्वात्रिंशदेवं क्रमतोऽर्चनीयास्त्रयोदशैव त्रिदशास्तु मध्ये।।९।।

पूर्व दिशा में ईश, पर्जन्य, जय, इन्द्र, सूर्य, सत्य, भृश व आकाश होते हैं। (अग्नि कोंण से दक्षिण दिशा में) अग्नि, पूषा, वितथ, गृहक्षत, यम, गन्धर्व, भृंग व मृग होते हैं। (नैर्ऋत्य कोण से पश्चिम की ओर) पितृ, दौवारिक (नन्दी), सुग्रीव, पुष्पदन्त, वरुण, असुर, शेष (शोष) व पापयक्ष्मा तथा (उत्तर दिशा के देवता) रोग, नाग, मुख्य, भल्लाट, कुबेर, शैल, अदिति व दिति की स्थापना करें। इस प्रकार बाहर के बत्तीस पद में देवताओं की पूजा करें तथा मध्य के पदों में तेरह देवताओं का पूजन करें।

इन्द्रवज्रा

प्रागर्यमा दक्षिणतो विवस्वान् मैत्रोऽपरे सौम्यदिशाविभागे।
पृथिवीधरोऽसौ स्त्व(त्व)थ मध्यतोऽपि ब्रह्मार्च्यनीयः सकलेषु मध्ये।।१०।।

(मध्य के पद के देवता इस प्रकार हैं, ब्रह्मा से) पूर्व में अर्यमा, दक्षिण में विवस्वान, पश्चिम में मैत्र तथा उत्तर में पृथ्वीधर तथा सबके मध्य पदों में ब्रह्मा का पूजन करें।

आपापवत्सौ शिवकोणमध्ये सावित्रकोऽग्नौ सविता तथैव
कोणे महेन्द्रेऽथ जयस्तृतीये रुद्रोऽनिलेऽन्योऽपि च रुद्रदासः।।११।।

(ब्रह्मा से) ईशान कोण में आप व आपवत्स तथा अग्निकोण में सवित्र व सविता, नैर्ऋत्य कोण में इन्द्र व जय तथा वायव्य कोण में रुद्र व रुद्रदास की पूजा करें।

उपजाति

ईशानबाह्ये चरकी द्वितीये विदारिका पूतनिका तृतीये।
पापाभिधा मारुतकोणके च पूज्याः सुरा उक्तविधानतस्तु।।१२।।



(वास्तुपद के) बाहर ईशान कोण में चरकी की, आग्नेय कोण में विदारिका की, नैर्ऋत्य कोण में पूतना की तथा वायव्य कोण में पाप (राक्षसी) की पूजा विधिपूर्वक करें।

१.२.६ चौंसठ पद वास्तु

शार्दूलविक्रीडित

ब्रह्मा वेदपदस्तु तेन समका देवार्यमाद्या अमी
कोणेऽष्टौ द्विपदास्तथाष्टमरुतः कोणेऽर्द्धभागाद् बहिः।
शेषा एकपदाः सुराश्च कथिता वेदर्तुकोष्ठे नव
ब्रह्मा षट्पदिनोऽर्यमादिविबुधा ईशादयश्चैकशः।।१३।।

चौंसठ पद वास्तु (पदविन्यास) में ब्रह्मा के चार पद, आर्यमा आदि चार देवताओं के चार-चार पद (ब्रह्मा के समान चार-चार पद), कोणों के आठ देवताओं के दो-दो पद तथा बाहर के कोणों में आठ देवताओं के आधे-आधे पद एवं शेष देवताओं के एक-एक पद होते हैं।

रोग / पाप	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	शैल	अदिति	दिति / शिखी
शोष	रुद्रजय		भूधर		आपवत्स		पर्जन्य
असुर	रुद्र				अपवत्स		जयन्त
वरुण	मित्र		ब्रह्मा		आर्यमा		महेन्द्र
पुष्पदन्त							सूर्य
सुग्रीव	इन्द्र				सवित्र		सत्य
दौवारिक	इन्द्रराज		विवस्वान		सावित्र		भृश
पितृ / मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ	पूषा	अन्तरिक्ष / अग्नि

६४ पद विन्यास

१.२.७ इक्यासी पद वास्तु

इक्यासी पद वास्तु में नौ पद ब्रह्मा के, अर्यमा आदि देवताओं के छह-छह पद, कोण में आठ देवताओं के दो-दो पद तथा ईश आदि शेष देवताओं के एक-एक पद होते हैं।

उत्तर

रोग	नाग	मुख्य	भल्लाट	सोम	सर्प	अदिति	दिति	शिखी
पाप	रुद्र	रुद्रजय	भूधर				आपवत्स	पर्जन्य
शोष						अपवत्स		जयन्त
असुर								महेन्द्र
वरुण	मित्र		ब्रह्मा			आर्यमा		सूर्य
पुष्पदन्त								सत्य
सुग्रीव		इन्द्र				सावित्र		भृश
दौवारिक	इन्द्रराज		विवस्वान				सवित्र	अन्तरिक्ष
पितृ	मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ	पूषा	अग्नि

१.२.८ सौ पद वास्तु

उपजाति

ब्रह्मा कलांशो वसुतोऽर्यमाद्याः कोणेष्टबाह्येऽपि च सार्द्धभागाः।

विधातृकोणे द्विपदास्तथाष्टौ शेषाः सुरा एकपदा शतांशाः।।१४।।

एक सौ पद वास्तु में ब्रह्मा सोलह पद का, अर्यमा आदि देवता आठ-आठ पद में, बाहर के कोण में स्थित देवता डेढ़-डेढ़ पद में, ब्रह्मा के कोण के देवता दो-दो पद में तथा शेष देवता एक-एक पद में होते हैं।



उत्तर

रोग | नाग | मुख्य | मल्लाट | कुबेर | शैल | अदिति | दिति

पाप | रुद्रजय | आपवत्स | शिखी

शोष | रुद्र | भूधर | अपवत्स | पर्जन्य

असुर | जयन्त

वरुण | मित्र | ब्रह्मा | आर्यमा | महेन्द्र

पुष्पदन्त | सूर्य

सुग्रीव | सत्य

दौवारिक | इन्द्र | सवित्र | भृश

पितृ | इन्द्रराज | विवस्वान | सावित्र | अन्तरिक्ष

मृग | भृंगराज | गन्धर्व | यम | गृहक्षत | वितथ | पूषा | अग्नि

१०० पद वास्तुविन्यास

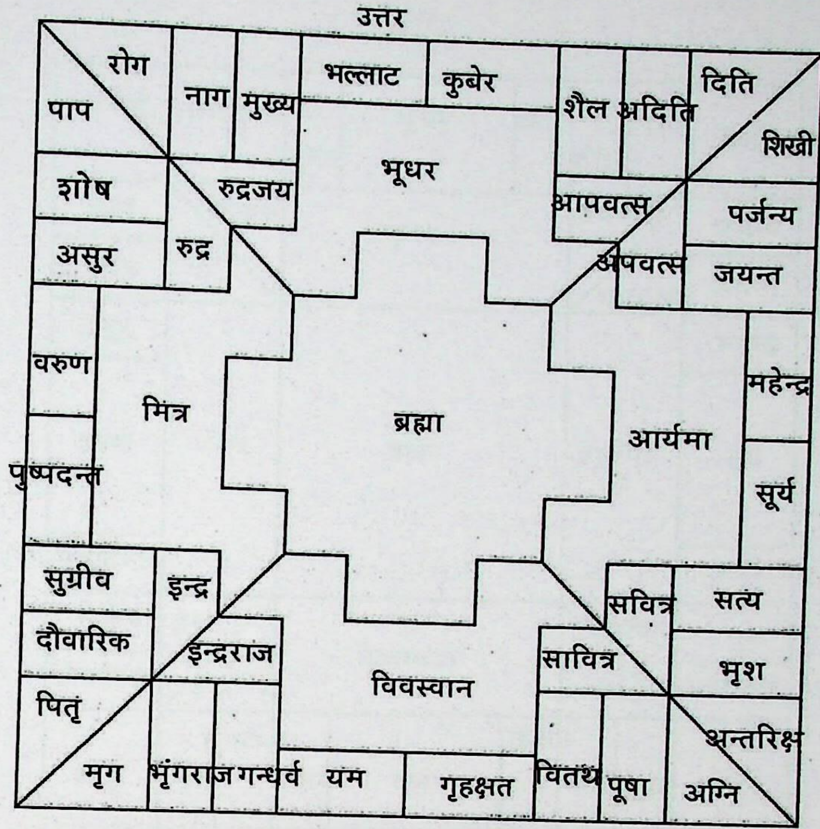
१.२.९ एक सौ चवालीस पद वास्तु

वसन्ततिलका

ब्रह्मा जिनांश उदितः शिवतोऽर्यमाद्याः
कोणेषु सार्द्धपदतोऽपि तथैव चाष्टौः।
शेषा द्विभागसमका रविभागकोऽयम्
पूज्यो रथाश्वगजवाहनकेऽम्बुयन्त्रे।।१५।।

एक सौ चवालीस पद वास्तु में चौबीस पद का ब्रह्मा, आर्यमा आदि चार देवताओं के ग्यारह-ग्यारह पद तथा कोण के आठ देवताओं के डेढ़-डेढ़ पद, शेष देवताओं के दो-दो पद होते हैं। इस वास्तु को रथशाला, अश्वशाला, गजशाला, यानशाला और जल यन्त्र में पूजें।





१४४ पद वास्तुविन्यास

१.२.१० एक सौ उनहत्तर पद वास्तु

यन्त्रे त्रयोदशपदैरपि पूजनीयः
तत्पञ्चविंशतिरजो दशतोऽर्यमाद्याः।
कोणेऽब्धयोऽमरगणा बहिके कलांशा
भद्रेऽब्धिके रसपदाश्च परे द्विभागाः।।१६।।

एक सौ उनहत्तर पद के वास्तु में पच्चीस पद के ब्रह्मा, आर्यमा आदि चार देवताओं के दस-दस पद तथा बाहर के देवताओं के (ईश, अग्नि, पितृ, रोग) चार-चार पद, भद्र के चार देवताओं के (सूर्य, यम, वरुण, सोम) के छह-छह पद तथा शेष देवताओं के दो-दो पद होते हैं।

१.२.११ एक सौ छियानवे पद वास्तु

शार्दूलविक्रीडित

द्वात्रिंशत्कमलासनोऽर्यममुखाः स्युः सूर्यभागाः क्रमात्
कोणे तेऽष्टसुरा द्विभागसहिता बाह्येषु सार्द्धांशकाः।
अष्टौ रामपदा पुनर्द्विपदिका षड्भागिनोऽष्टौ सुराः
क्षेत्रे षण्णवचन्द्रभागसहिते स्याद्देवतानां क्रमः।।१७।।

उत्तर

रोग | नाग | मुख्य | भल्लाट | कुबेर | शैल | अदिति | दिति | शिखी
पाप | रुद्रजय | भूधर | आपवत्स | पर्जन्य
शोष | रुद्र | अपवत्स | जयन्त
असुर | महेन्द्र
वरुण | मित्र | ब्रह्मा | आर्यमा | सूर्य
पुष्पदन्त | सत्य
सुग्रीव | इन्द्र | विवस्वान | सवित्र | भृश
दौवारिक | इन्द्रराज | सावित्र | अन्तरिक्ष
पितृ | मृग | भृंगराज | गन्धर्व | यम | गृहक्षत | वितथ | पूषा | अग्नि

१६९ पद वास्तुविन्यास

उत्तर

रोग | नाग | मुख्य | भल्लाट | कुबेर | शैल | अदिति | दिंति
पाप | रुद्रजय | भूधर | आपवत्स | शिखी
शोष | रुद्र | अपवत्स | पर्जन्य
असुर | जयन्त
वरुण | मित्र | ब्रह्मा | आर्यमा | महेन्द्र
पुष्पदन्त | सूर्य
सुग्रीव | सत्य
इन्द्र | सविंत्र | भृश
दौवारिक | विवस्वान | सावित्र
पितृ | इन्द्रराज | अन्तरिक्ष
मृग | भृंगराज | गन्धर्व | यम | गृहक्षत | वितथ | पूषा | अग्नि

१९६ पद वास्तुविन्यास

एक सौ छियानवे पद के वास्तु में ब्रह्मा के बत्तीस पद, आर्यमा आदि चार देवता के बारह-बारह पद, कोण में स्थित आठ देवताओं के दो-दो पद, बाहर के देवता (आठ) के डेढ़-डेढ़ पद, आठ देवताओं के तीन-तीन पद, आठ देवताओं के दो-दो पद तथा शेष देवता (आठ) के छह-छह पद होते हैं।

१.२.१२ उनचास पद वास्तु

वेदांशो विधिरर्यमप्रभृतयः त्र्यंशा नवत्यष्टकम्
कोणे तेऽष्टपदार्द्धगाः परसुरा षड्भागहीने परे।
वास्तुर्नन्दयुगांश एवमधुनाष्टांशैः चतुष्षष्टिकः।
सन्धेः सूत्र मितान् सुधीः परिहरेद् भित्तितुलास्तम्भकान्।।१८।।

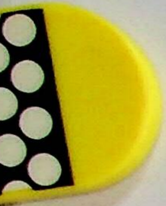
उनचास पद वास्तु में ब्रह्मा के चार पद, अर्यमा आदि चार देवताओं के तीन-तीन पद, आठ देवता नौ पदों में, कोण में स्थित आठ देवता के आधे-आधे (डेढ़-डेढ़) पद तथा शेष (चौबीस) देवताओ को बीस पदों में स्थापित करें।

वास्तु के चौंसठ भाग करें। सूत्रों की सन्धि के स्थान पर दीवार, तुला व स्तम्भ नहीं बनवाना चाहिए।

उत्तर

रोग / पाप	नाग	मुख्य	भल्लाट	कुबेर	शैल	अदिति	दिति / शिखी
शोष	रुद्रजय / रुद्र		भूधर		आपवत्स / अपवत्स		पर्जन्य
असुर							जयन्त
वरुण	मित्र		ब्रह्मा		आर्यमा		महेन्द्र
पुष्पदन्त							सूर्य
सुग्रीव	इन्द्र / इन्द्रराज		विवस्वान		सवित्र / सावित्र		सत्य
दौवारिक							भृश
पितृ / मृग	भृंगराज	गन्धर्व	यम	गृहक्षत	वितथ	पूषा	अन्तरिक्ष / अग्नि

४९ पद वास्तुविन्यास

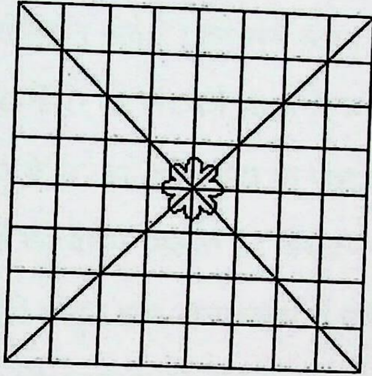


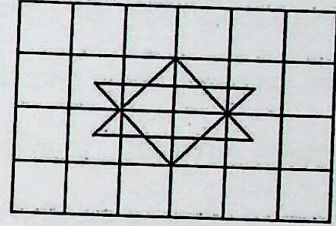
१.२.१३ कमल वेध परिणाम

उपजाति

रेखाद्वयं कोणगतं विधेयमंशान्तरेणैव तु कर्णसूत्रात्।
यदष्टसूत्रैः कथितं च पद्मं तत्पीडनात्स्वामिधनप्रणाशौ।।१९।।

घर के चौंसठ भाग करके, चार कोणों में, दो रेखा करें। (एक कोने से दूसरे कोने तक रेखा खींचें।)





इनके अंशों में ब्रह्मा के चार पद, आठ सूत्र जहाँ इकट्ठा होते हैं वहाँ, कमल होता है। उस कमल को पीड़ित न करें। उस पर दीवार, तुला, स्तम्भ बनवाए तो घर के मालिक तथा धन का नाश होता है।

कमल का वेध	परिणाम
दीवार, तुला, स्तम्भ	घर के मालिक तथा धन का नाश

प्रोक्तं चतुर्विंशति लाङ्गलं यत् पदार्द्धगं हानिकरं प्रजायाः।
षड्भिस्तु सूत्रैः मरणाय वज्रं कोणे त्रिशूलं च रिपोर्भयाय।।२०।।

घर की भूमि के चौबीस भाग करें, षट्कोण बनाए। षट्कोण के आधे पद के ऊपर स्तम्भ हो तो बालक का नाश तथा वज्र आकृति के ऊपर दीवार या स्तम्भ हो तो मरण एवं त्रिशूल के ऊपर स्तम्भ की भित्ति हो तो शत्रु का भय उत्पन्न होता है।

स्थान वेध परिणाम	
स्थान का वेध	परिणाम
षट्कोण के आधे पद के ऊपर स्तम्भ	बालक का नाश
वज्र आकृति के ऊपर दीवार या स्तम्भ	मरण
त्रिशूल के ऊपर स्तम्भ की भित्ति	शत्रु का भय

वास्तुशास्त्र में किसी भी भूखण्ड या प्लाट या निर्मित क्षेत्र में एक वास्तुपुरुष की कल्पना की गई है। एक पुरुष के समान वास्तुपुरुष बताया गया है। उसके शरीर में कुछ नाजुक बिन्दु, संवेदनशील बिन्दु या मर्म स्थान होते हैं। इन मर्म स्थान के आहत होने पर वास्तुपुरुष का शरीर पीड़ित होता है। भवन के उन स्थानों पर जो की मर्म स्थान हैं, स्तम्भ, दीवार अथवा नकारात्मक पदार्थ होने पर गृहस्वामी को (तथा परिवार के सदस्यों को) पीड़ा या कष्ट होता है। वास्तुशास्त्र के ग्रन्थों में इन मर्म स्थानों को ज्ञात करने की विधियों का वर्णन मिलता है। विश्वकर्म प्रकाश, मनुष्यालय चन्द्रिका, अग्निपुराण, मत्स्यपुराण में इसका वर्णन है। प्रस्तुत ग्रन्थ राजवल्लभ में मर्मस्थान ज्ञात करने की विधि श्लोक क्रमांक १९ व २० में बताई गई है। ६४ पद वास्तु करके मर्म स्थान ज्ञात करना। या भूमि के २४ भाग करके षट्कोण बनाकर मर्मस्थान ज्ञात करना। किसी भी एक विधि से मर्मस्थान ज्ञात करना चाहिए तथा उस पर स्तम्भ, दीवार, तुला (बीम) आदि नहीं बनवाना चाहिए। स्तम्भ बनवाने से मरण दोष तक कहा गया है।

मर्मस्थान पर भूमि के अन्दर शल्य भी अत्यन्त दोषकारक माना गया है। ऐसा वर्णन बृहत्संहिता ग्रन्थ के अध्याय ५३ वास्तुविद्या में मिलता है।

१.२.१४ भूमि शुद्धि

परीक्ष्य भूमिमुपसेचयेत् तां सुपञ्चगव्येन ततो विलेख्या।
रेखा सुवर्णेन मणिप्रवालैः पिष्टाक्षतैर्वापि पुनस्तदूर्ध्वे।।२१।।

पहले भूमि का परीक्षण करें, उसके पश्चात् भूमि को पञ्चगव्य (गाय का दूध, दही, घी, गोमूत्र तथा गोबर) से सींचे। उसके बाद सुवर्ण, मणि, प्रवाल (मूँगा) या पिसे चावल से रेखा बनाएं।



इस श्लोक में भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करने की विधि का वर्णन किया गया है। मयमत व मानसार ग्रन्थ के अध्याय ४ व ५ में भी इस विधि का उल्लेख्र कुछ इस प्रकार है। भूमि पर गोवंश (गाय, वृषभ तथा बछड़े को लाए तथा सात दिन तक भूमि पर रखें। गो की जुगाली तथा पददलन एवं गोमूत्र व गोबर से भूमि सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होती है। इसके साथ ही कहा गया है कि बैल से भूमि को जौतें। इससे भूमि परीक्षण तथा बैलों के पददलन से भूमि सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होती है। ब्राह्मणों के द्वारा स्वस्तिवाचन तथा पूरे भूखण्ड पर चलने से भी भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करने का विधान बताया है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में वर्णन इस प्रकार मिलता है भूमि को पंचगव्य (गाय के दूध, उससे बने दही तथा घी, गोमूत्र तथा गोबर) से भूमि को सींचें। जब इसके प्रायोगिक पक्ष को देखते हैं तो पाते हैं कि इस प्रकार कहते हैं कि ४०० से ६०० लीटर पानी में २० लीटर गोमूत्र, २० किलो गोबर, १० किलो दूध, ५ किलो दही, १ किलो घी इन सबको मिलाकर, घोल का भूमि पर छिड़काव करें। ऐसा करने से भूमि सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होती है।

अनेकानेक शोध के द्वारा यह सिद्ध किया जा चुका है कि गोमूत्र में इस प्रकार की क्षमता है कि वह अनेकानेक कीटाणु, रोगाणु, विषाणु का नाश करने में सक्षम है।

शोध द्वारा यह भी सिद्ध किया गया है कि गोबर से निर्मित घरों में रेडियोधर्मी विकिरण का प्रभाव लगभग नगण्य होता है।

हमारे यहाँ ऋषि मुनियों ने हजारों-हजार वर्ष पूर्व इस रहस्य का पता लगा लिया था। इसलिए उन्होंने कहा कि भूमि पर पंचगव्य का छिड़काव करना चाहिए।

इसी श्लोक में यह बताया गया है कि वास्तु पदविन्यास करते समय जो रेखाएँ भूखण्ड पर बनाना है, वे रेखाएँ भी किस पदार्थ से खींची जाए तो कहते हैं कि ये रेखाएँ सोने, मणी, मूँगा से खींचना चाहिए अथवा पीसे हुए चाँवल से ये रेखाएँ बनाना चाहिए।

अन्य ग्रन्थ में कोयला, शस्त्र, लोहा, राख, हड्डी, घास का तिनका, लकड़ी आदि से रेखा खींचना अशुभ होता है, यह बताया है। (वि. प्र. अध्याय ५- श्लोक ३९-४०)



वास्तु या वैदिक विद्या में इतनी सूक्ष्मता तक जाकर विषय का चिन्तन किया गया है कि यदि रेखा भी खींचना है तो किस पदार्थ से, किस प्रकार से खींचना, बाएँ से दाएँ या दाएँ से बायें। इससे विषय की गहराई का पता चलता है तथा ऋषि-मुनियों के प्रति श्रद्धा से सिर झुक जाता है।

१.२.१५ एक हजार पद का वास्तु

इन्द्रवज्रा

द्वात्रिंशदंशा पृथुले च दैर्घ्ये कोणेषु वर्ज्या जिनसंख्यभागाः।
एतत्पदानां कथितं सहस्त्रं क्षेत्रं सर्वोत्तममेव वास्तोः।।२२।।

बत्तीस खड़ी व आड़ी रेखाओं से एक हज़ार चौबीस पद बनाए। कोने के छह-छह पद (कुल चौबीस पद) छोड़ने पर एक हज़ार पद का वास्तु होता है। जो सर्वोत्तम हैं।

शालिनी

मध्ये ब्रह्मा पूजनीयाः शतांशैश्चत्वारिंशद्भिः पदैर्बाह्यवीथ्याम्।
प्रोक्ता देवा अर्यमाद्या अशीत्या मध्ये कोणेऽष्टौ शतं चाष्टषष्ट्या।।२३।।

एक हज़ार पद में वास्तु में मध्य में एक सौ पद में ब्रह्मा को पूजें। इस ब्रह्मा के चारों ओर, दस-दस पद का मार्ग रखें अर्थात् चारों ओर के चालीस पद खाली रखें। आर्यमा आदि चार देवताओं को अस्सी-अस्सी पद में पूजें। मध्यकोण में आठ देवताओं को इक्कीस-इक्कीस पद में पूजें।

उपजाति

कोणेऽब्ध्यो नन्दपदैः सुराश्च शेषाश्च बाह्ये वसुभागिनश्च।
वीथी च बाह्ये रविभागयुक्तं शतं पदानां कथितं मुनीन्द्रैः।।२४।।

बाहर के कोणों के चार देवताओं को नौ-नौ पद में पूजें। शेष देवताओं को आठ-आठ पद में पूजें। बाहर का मार्ग चारों ओर छब्बीस-छब्बीस पदों का तथा चारों दिशाओं के कोण में दो-दो पद खाली रहें, ऐसे एक सौ बारह पद होते हैं।

दुर्गप्रतिष्ठाविषये निवेशे तथा महार्चासु च कोटिहोमे।
मेरौ च राष्ट्रेष्वपि ज्येष्ठलिङ्गे वास्तुः सहस्त्रेण पदैः प्रपूज्यः।।२५।।



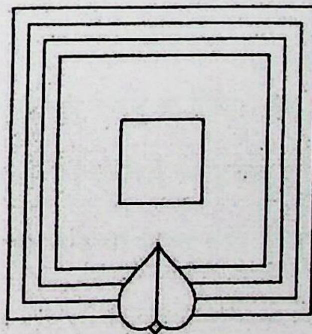
एक हज़ार पद का वास्तु किले की प्रतिष्ठा में, नगर को बसाने में, बड़ी पूजा में, करोड़ आहुति देते समय, मेरु प्रासाद में, देश व बसाहट के समय तथा बड़े लिंग की स्थापना के समय पूजें।

१.२.१६ वास्तुपूजन

त्रिमेखलं शङ्करदिग्विभागे कुण्डं प्रकुर्यात् करतो युगास्त्रम्।
होमं सुराणां शतमष्टयुक्तं प्रत्येकमष्टाधिकविंशतिं वा।।२६।।

घर के ईशान कोण में एक हाथ का चतुस्र (चौकोर) कुण्ड बनवाए। कुण्ड तीन मेखला वाला बनवाए। उस कुण्ड में प्रत्येक देवता को एक सौ आठ अथवा अठ्ठाईस आहुति दें।

इस श्लोक में यज्ञ वेदी या हवन कुण्ड का वर्णन मिलता है। इसी ग्रन्थ के अध्याय १० में गणित, विशेष रूप से रेखागणित का वर्णन किया गया है। एक कुशल वास्तुविद् को रेखा गणित में निपुण होना चाहिए। अपने यहाँ शुल्व सूत्र के माध्यम से रेखा गणित को समझाया गया है। चार शुल्व सूत्र अत्यन्त प्रसिद्ध हैं-बोधायन, कात्यायन, मानव तथा आपस्तम्भ। इन शुल्व सूत्रों में यज्ञ वेदी निर्माण विधि का विस्तार से वर्णन किया गया है। यज्ञ वेदी निर्माण में ईंटों की संख्या (थर की संख्या) उनके नाम एवं पूजन की विधि का वर्णन है।



वास्तुशास्त्र के ग्रन्थ में सामान्य रूप में दिशा के अनुसार आठ आकार की यज्ञवेदी का वर्णन मिलता है। इस श्लोक में सभी कार्यों के लिए उपर्युक्त चतुस्र, चौकोर या वर्गाकार यज्ञवेदी का वर्णन किया गया है। सभी यज्ञ वेदियों में रहस्यात्मक रूप से योनि के चिह्न बनाए जाते हैं।



नेवैद्य

मध्वाज्यदुग्धैर्दधिशर्कराभ्यां कृष्णैस्तिलैर्व्रीहियवैर्नवान्नैः।
पलाशदूर्वाङ्कुरदुग्धवृक्षैर्होमं तदन्ते सुरपूजनञ्च।।२७।।

मधु (शहद), घी, दूध, दही, शक्कर, काला तिल, ब्रीहि, जौ, नवान्न से हवन करें। पलाश, दूर्वा के अंकुर, दूध वाला वृक्ष इत्यादि समिधा से होम कर देवताओं का पूजन करें।

जैसा कि हम पहले देख चुके हैं कि देवता शब्द ऊर्जा को अभिव्यक्त करता है। यहाँ देवता के लिए हवन पदार्थ का वर्णन किया जा रहा है। इस वास्तुपूजन के द्वारा स्थान को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित किया जाता है। इसका वास्तुशोधन में भी अत्यधिक महत्व है। जो पद दूषित या दोषपूर्ण होता है, उसका शोधन या दोष दूर करने के लिए वास्तुपद के देवताओं के लिए, उनके नाम व मन्त्र के साथ हवन करने का विधान है, यही विधि वास्तुपूजन या वास्तुशान्ति कहलाती है।

इस श्लोक में हवन के पदार्थ तथा समिधा (हवन की लकड़ी) का वर्णन किया गया है। जैसा कि हम जानते हैं कि देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा होता है। वास्तुपुरुष के शरीर स्थित ४५ देवता, ४५ अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त करते हैं। किसी विशेष प्रकार की ऊर्जा की कमी होने पर, उस ऊर्जा को देने वाले पदार्थ का भोजन करना, अत्यधिक कमी होने पर उन पदार्थों का हवन कर सीधे रोम-रोम द्वारा उस ऊर्जा को ग्रहण करने का विधान यहाँ बताया गया है।

सभी देवताओं की ऊर्जा एक साथ प्राप्त करने के लिए शहद, घी, दूध, दही, शक्कर, काला तिल, ब्रीही (चाँवल), जौ तथा नया अन्न (चाँवल) इन पदार्थों का हवन करना चाहिए। इस प्रकार से हवन करने पर सभी प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है। पूरा घर या वास्तु तथा वायुमण्डल सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित हो जाता है।

वसन्ततिलका

ईशे घृतान्नमपरे सघृतौदनं च दद्याज्जयाय हरिताम्बरमेव कूर्मम्।
रत्नानि पैष्टिकमयं कुलिशं सुरेन्द्रे धूम्रं वितानमुदितं च दिवाकरस्य।।२८।।

ईश को घी व खिचड़ी (अन्न), पर्जन्य में चावल और घी, जय में हरे रंग के वस्त्र युक्त कछुआ, इन्द्र को रत्न एवं आटे का वज्र, सूर्य को धूम्र का वितान प्रदान करना चाहिए।



इन्द्रवज्रा

गोधूमयुक्तं घृतमेव सत्ये मत्स्यान् भृशे शकुलिमन्तरिक्षे।
वह्नौ शुचिं पूष्णि तथैव लाजान् दद्यादधर्मे चणकौदनञ्च।।२९।।

सत्य को घी मिश्रित गेहूँ, भृश को मछली, अन्तरिक्ष को शकुलि (तिल व गुड़ की मिठाई), अग्नि को शुचि, पूषा को शुचि व लाजा, वितथ को चने व भात प्रदान करना चाहिए।

शार्दूलविक्रीडित

मध्वन्नं च गृहक्षताय यमतो मांसौदनं दापयेत्
गन्धर्वे शतपत्रमोदनयुतं भृङ्गेऽजजिह्वां तथा।
प्रोक्ता नीलयवा मृगाय पितृतो देयाश्च सन्मोदकाः
पैष्टं कृष्णबलिं तथैव विधिवद् दद्याच्च दौवारिके।।३०।।

गृहक्षत को मधु व अन्न, यम को मांस मिश्रित भात, गन्धर्व को भात मिश्रित शतपत्र (कमल), भृंगराज को बकरे की जीभ, मृग को हरा जौ, पितृ को लड्डू, दौवारिक (नंदी) को उड़द का बड़ा प्रदान करना चाहिए।

सुग्रीवाय च पूपका गणवरे श्वेतप्रसूनं पयः
पद्मं वारुणके सुराप्यसुरके तैलं तिलाः शोषके।
पापाख्येऽपि च पक्वमांसमुदितं रोगाय सर्वोषधी-
र्गोक्षीरं फणिने च मुख्यविबुधे श्रीखण्डभक्षौ तथा।।३१।।

सुग्रीव को पुआ, पुष्पदन्त को दूध व सफेद फूल, वरुण को कमल, असुर को शराब, शेष (शोष) को तिल व तिल का तेल, पाप को पका मांस, रोग को सर्वोषधि, सर्प को गाय का दूध, मुख्य को श्रीखण्ड व भात प्रदान करना चाहिए।

भल्लाटाय सुवर्णकं धनपतौ मण्डाज्यं दुग्धं तथा
सक्तुं पर्वतकेऽदितेस्तु लपिकां दद्यादितौ पूरिकाम्।
तत् क्षीरं दधिकं क्रमेण विहितं त्वापापवत्से तथा।
प(अ)र्यम्णेऽरुणचन्दनं च पयसा युक्ता तथा शर्करा।।३२।।

भल्लाट को सुवर्ण, कुबेर को माण्डा व बकरी का दूध, पर्वत (शैल) को सत्तू, अदिति को लपसी, दिति को पूड़ी, आप को दूध, आपवत्स को दही, आर्यमा को लाल चंदन व शक्कर सहित दूध प्रदान करना चाहिए।

सावित्रेऽपि लड्डुकाश्च सवितुरपूपाः गुडश्च सघृतः
देयं चाथ विवस्वते घृतयुतं दुग्धं तथा मोदकाः।
इन्द्राख्ये कुसुमस्त्रगे(गि)न्द्रजयके देयं तथा चम्पकम्
मैत्रे दुग्धघृते च गुग्गुलुयुतो दुग्धस्तथा रुद्रके।।३३।।

सवित्र को लड्डू, सविता को पूआ, गुड़ व घी, विवस्वान को घी युक्त दूध व लड्डू, इन्द्र को फूलों की माला, इन्द्रजय को चम्पा का फूल, मित्र को घी व दूध, रुद्र को गूगल की धूप (तथा कपूर) आदि सुगन्धित पदार्थ प्रदान करना चाहिए।

तत्सिद्धमन्नं त्वपि रुद्रदासे सद्रत्नमालां पृथिवीधराय।
पयस्विनीं गाममृतं घटं च दद्याद् विधौ स्वर्णमतोऽखिलेभ्यः।।३४।।

रुद्रदास को उबला हुआ अन्न, पृथ्वीधर को रत्न की माला, ब्रह्मा को दूधवाली गाय तथा अमृत का घड़ा (दूध से भरा हुआ घड़ा), इस प्रकार सब को बलि दें तथा सुवर्ण भी दें।

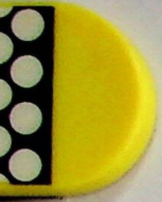
सुरास्थिमांसं विहितं चरक्यै तथैव पीतौदनकं विदार्यै।
रक्तौदनैः पूतनिकार्चनीया मत्स्यासवेन तथैव पापा।।३५।।

चरकी को मदिरा, मांस व हड्डी की, विदारिका को पीला भात, पूतना को लाल भात, पाप को मदिरा व मछली प्रदान कर पूजा करना चाहिए।

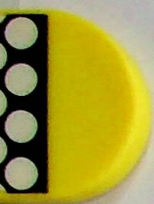
मासं पक्वं पिलिपिच्छायै जृम्भायै तद् विहितं सद्यः।
स्कन्दायै तन्मदिरायुक्तं त्वस्थ(स्थि)नार्यम्णे दिशि पूर्वादौ।।३६।।

पीलीपिच्छक को पका हुआ मांस, जृंभा को ताजा मांस, स्कन्धा को मदिरा व मांस तथा आर्यमा को बघारा हुआ मांस वाली हड्डी दें।

इस श्लोक में बलि पदार्थ का वर्णन किया गया है। विभिन्न देवताओं के लिए विभिन्न पदार्थ बताया है। ग्रन्थ रचनाकाल में मांस, मदिरा, रक्त आदि को उस प्रकार की ऊर्जा देने वाले माना गया है। आज के समय में इनके स्थान पर अन्य पदार्थ का उपयोग कर सकते हैं।



देवता एवं उनके बलि पदार्थ	
देवता	**बलि के पदार्थ**
ईश	घी व खिचड़ी (अन्न),
पर्जन्य	चावल और घी
जय	हरे रंग के वस्त्र युक्त कछुआ
इन्द्र	रत्न एवं आटे का वज्र
सूर्य	धूम्र का वितान
सत्य	घी मिश्रित गेहूँ,
भृश	मछली
अन्तरिक्ष	शकुलि (तिल व गुड़ की मिठाई)
अग्नि	शुचि
पूषा	शुचि व लावा,
वितथ	चने व भात
गृहक्षत	मधु व अन्न
यम	मांस मिश्रित भात
गन्धर्व	भात मिश्रित शतपत्र (कमल)
भृंगराज	बकरे की जीभ
मृग	हरा जौ
पितृ	लड्डू
दौवारिक	उड़द का बड़ा
सुग्रीव	पुआ
पुष्पदन्त .	दूध व सफेद फूल
वरुण	कमल
असुर	शराब
शेष (शोष)	तिल व तिल का तेल
पाप	पका मांस



देवता एवं उनके बलि पदार्थ	
देवता	**बलि के पदार्थ**
रोग	सर्वोषधि
सर्प	गाय का दूध
मुख्य	श्रीखण्ड व भात
भल्लाट	सुवर्ण
कुबेर	माण्डा,बकरी का दूध,
पर्वत	सत्तू
अदिति	लपसी
दिति	पूड़ी
आप	दूध,
आपवत्स	दही
आर्यमा	लाल चंदन , शक्कर सहित दूध
सवित्र	लड्डू
सविता	पूआ गुड़ व घी,
विवस्वान	घी युक्त दूध व लड्डू,
इन्द्र	फूलों की माला,
इन्द्रजय	चम्पा का फूल,
मित्र	घी व दूध,
रुद्र	गूगल की धूप तथा कपूर आदि सुगन्धित पदार्थ
रुद्रदास	उबला हुआ अन्न,
पृथ्वीधर	रत्न की माला,
ब्रह्मा	दूधवाली गाय, अमृत का (दूध से भरा हुआ) घड़ा

१.२.१७ पूजनफल

यः पूजयेद् वास्तुमनन्ययुक्त्या न तस्य दुःखं भवतीह किञ्चित्।
जीवत्यसौ वर्षशतं सुखेन स्वर्गे नरस्तिष्ठति कल्पमेकः।।३७।।

जो मनुष्य अनन्य भक्तिभाव से वास्तुपूजन करता है उसे (गृह में) किसी प्रकार का कष्ट नहीं होता है। वह एक सौ वर्ष तक जीवित रहता है एवं उसके उपरान्त एक कल्प तक सूखपूर्वक स्वर्ग में निवास करता है।

इस प्रकार से वास्तुपूजन (घर सही प्रकार की सकारात्मक ऊर्जा से भरा हो) गृह स्वामी १०० वर्ष तक स्वस्थ जीवन व्यतीत करता है।

सूक्ष्म रूप से देखने पर हम यह पाते हैं कि सभी प्रकार की ऊर्जा आवश्यकता से अधिक होने पर गृहस्वामी क्रोधित, दबंग, साहसी होता है, उचित मात्रा में होने पर सदैव शान्त व स्थिर चित्त वाला होता है।

१.२.१८ अपूर्ण निर्माण व बिना पूजन के प्रवेश का फल

अकपाटमनाछि(छ)न्नमदत्तबलिभोजनम्।
गृहं न प्रविशे(द्)धीमान् विपदामाकरं तु तत्।।३८।।

बुद्धिमान को बिना दरवाजे के, बिना छत के तथा बिना वास्तुदेवता का पूजन किए घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने पर विपत्ति का कारण होता है।

व्याख्या- इस श्लोक में यह बताया गया है कि बिना द्वार लगे घर में प्रवेश करने पर चोर आदि से भय रहता है। उस घर में कुत्ते, बिल्ली, सर्प आदि जीव भी आसानी से प्रवेश कर सकते हैं। घर में निजता या गोपनीयता का अभाव रहता है। वर्षा आदि के प्रकोप की आशंका रहती है अतः बिना छत वाले व द्वार वाले घर में प्रवेश नहीं करना चाहिए।

इसी प्रकार घर को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित किए बिना प्रवेश नहीं करना चाहिए।

विश्लेषण (आज के परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):-

सर्वप्रथम वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन मिलता है। अपने यहाँ सामान्य रूप में सांकेतिक विद्या का प्रयोग किया जाता है। यहाँ भी सांकेतिक रूप से वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन किया गया है। देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है। जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा है।

जब हम किसी भी ग्राम, नगर, दुर्ग, जलाशय या घर आदि का निर्माण करते हैं तब उस पूरे क्षेत्र पर एक वास्तुपुरुष की कल्पना करते हैं। उस वास्तुपुरुष के विभिन्न अंगों पर विभिन्न देवता की स्थापना करते हैं या उस वास्तुपुरुष के विभिन्न अंगों पर विभिन्न प्रकार की ऊर्जा होती है, उसे देवता के नाम से कहा है।

इसका सामञ्जस्य करने पर हम पाते हैं कि प्लाट के विभिन्न भाग में अलग-अलग देवता या अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा होती है। जो ऊर्जा जिस कार्य के लिए अनुकूल है, वहाँ उस प्रकार का निर्माण करने से, प्रकृति की पोषणकारी ऊर्जा प्राप्त होती है, जिसे कहते हैं कि प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है तथा विपरीत करने पर कार्य में बाधा आती है। ऊर्जा के अनुकूल निर्माण करना ही वास्तुविद्या है।

उसके पश्चात् देवताओं के लिए हवन पदार्थ का वर्णन किया है। इस वास्तुपूजन के द्वारा स्थान को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित किया जाता है। इसका वास्तुशोधन में भी अत्यधिक महत्व है। जो पद दूषित या दोषपूर्ण होता है, उसका शोधन या दोष दूर करने के लिए वास्तुपद के देवताओं के लिए, उनके नाम व मन्त्र के साथ हवन करने का विधान है, यही विधि वास्तुपूजन या वास्तुशान्ति कहलाती है।

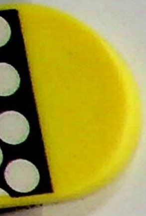
जैसा कि हम जानते हैं कि देवता शब्द संस्कृत की दिव् धातु से बना है, जिसका अर्थ प्रकाश या ऊर्जा होता है। वास्तुपुरुष के शरीर स्थित ४५ देवता, ४५ अलग-अलग प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त करते हैं। किसी विशेष प्रकार की ऊर्जा की कमी होने पर, उस ऊर्जा को देने वाले पदार्थ का भोजन करना, अत्यधिक कमी होने पर उन पदार्थों का हवन कर सीधे रोम-रोम द्वारा उस ऊर्जा को ग्रहण करने का विधान यहाँ बताया गया है।

सभी देवताओं की ऊर्जा एक साथ प्राप्त करने के लिए शहद, घी, दूध, दही, शक्कर, काला तिल, ब्रीही (चाँवल), जौ तथा नया अन्न (चाँवल) इन पदार्थों का हवन करना चाहिए। इस प्रकार से हवन करने पर सभी प्रकार की ऊर्जा प्राप्त होती है। पूरा घर या वास्तु तथा वायुमण्डल सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित हो जाता है।

आधुनिक समय में भी इस प्रकार से स्थान को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित किया जा सकता है।

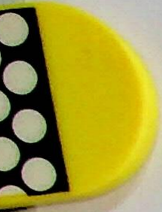
अध्याय-२

आयादि, दुर्गपुरयन्त्रजलाशयादिलक्षण



अध्याय-२

आयादिं, दुर्गपुरयन्त्रजलाशयादिलक्षण



अध्याय-२

आयादि, दुर्गपुरयन्त्रजलाशयादिलक्षण



आयादि लक्षण

वास्तु के अनुसार भूखण्ड, कमरे, द्वार आदि की लम्बाई, चौड़ाई का मान ज्ञात करेंगे।

परिभाषा-आयादि गणित के सूत्र या फार्मूले हैं, जिससे वास्तु के अनुसार शुभ लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई ज्ञात करते हैं।

उपयोग-लम्बाई व चौड़ाई चाहे भूखण्ड (प्लाट) की हो या कमरे की, टेबल की हो या कुर्सी की या खिड़की, दरवाजे या रोशनदान सभी के लिए इन्हीं आयादि सूत्र का उपयोग किया जाता है।

वैसे तो वास्तुशास्त्र में अनेक आयादि सूत्र का वर्णन मिलता है। ये सूत्र भी ग्रन्थ के अनुसार अलग-अलग हैं। किसी-किसी ग्रन्थ में (जैसे मानसार, मयमत आदि) छह सूत्र हैं तो इन्हें **षड्वर्ग** कहा है। इस ग्रन्थ में (विश्वकर्म प्रकाश) नौ सूत्र हैं।

किसी ग्रन्थ में क्षेत्रफल से आयादि ज्ञात करते हैं तो किसी में परिधि से, किसी में लम्बाई व चौड़ाई व ऊँचाई ज्ञात करने के अलग-अलग सूत्र हैं।

इकाई-लम्बाई व चौड़ाई नापने के लिए हम आजकल फीट या इंच का प्रयोग करते हैं। वास्तुशास्त्र में नापने के लिए जिस **इकाई** का उपयोग किया जाता है वह है हस्त व अंगुल।

हस्त व अंगुल के उपयोग का महत्व

जैसे किसी व्यक्ति के लिए, कोई वस्त्र का निर्माण करते हैं, जैसे पेन्ट, शर्ट इत्यादि, तो वह पेन्ट, शर्ट व्यक्ति के नाप के अनुसार होना चाहिए। चूँकि प्रत्येक व्यक्ति का नाप या आकार अलग-अलग होता है। अतः उसके शर्ट, पेन्ट आदि का नाप भी अलग होता है।

जब हम किसी व्यक्ति के लिए घर बनवाते हैं तो उसके उपयोग में आने वाली वस्तुएँ भी उस व्यक्ति के नाप के अनुसार होना चाहिए। जैसे एक व्यक्ति जेसलमेर, बाड़मेर आदि क्षेत्र में रहने वाला है, उसकी ऊँचाई या

उसके शरीर की लम्बाई साढ़े छह फीट है, दूसरा व्यक्ति लद्दाख क्षेत्र का है, पहाड़ी क्षेत्र का है, जिसकी ऊँचाई या जिसके शरीर की लम्बाई सामान्यतः पांच या साढ़े पांच फीट है।

इस प्रकार दोनों व्यक्तियों के घर बनवाते समय हमें यह ध्यान रखना होगा कि उसके शरीर का क्या मान है? जेसलमेर वाले व्यक्ति के लिए पलंग करीब सात फीट का बनेगा, जबकि लद्दाख क्षेत्र में रहने वाले व्यक्ति का पलंग लगभग साढ़े पांच या छह फीट का बनेगा।

इसी प्रकार उनके बैठने के लिए जो कुर्सी होगी उसकी ऊँचाई भी अलग-अलग होगी।

इसलिए वास्तु में व्यक्ति के शरीर के नाप के अनुपात में गृह का निर्माण किया जाता है।

इससे घर तथा व्यक्ति के बीच में सामञ्जस्य स्थापित होता है।

व्यक्ति के शरीर के जिस अंग के अनुपात में निर्माण किया जाता है वह है हाथ या हस्त। छोटे माप के लिए जिस इकाई का प्रयोग करते हैं वह है अंगुल। एक हस्त में चौबीस अंगुल होते हैं।

राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय ३ आयादि लक्षण में घर, मंदिर, राजमहल आदि के मान का निर्धारण करने के १५ मानदण्ड बताए हैं, जो इस प्रकार हैं-(१) आय, (२) नक्षत्र, (३) व्यय, (४) अंश, (५) तारा, (६) चन्द्रमा, (७) राशि, (८) गण, (९) नक्षत्र, (१०) वर्ण, (११) योनि, (१२) तिथि, (१३) वार, (१४) लग्न, (१५) वर्ग व नाड़ी के आधार पर विचार किया गया है।

२.१.१ आयादि

आयास्तु ध्वजधूमसिंहशुनकागौरासभेभाः क्रमात्

ध्वांक्षस्त्वष्ट(म) आयकेषु विषमाः श्रेष्ठाः सुराणां गृहे।।१।।

आय का क्रम इस प्रकार है पहली ध्वज, दूसरी धूम, तीसरी सिंह, चौथी श्वान, पाँचवीं वृष, छठी गर्दभ, सातवीं गज़ तथा आठवीं आय ध्वांक्ष होती है। इन आयों में विषम (पहली, तीसरी, पाँचवीं तथा सातवीं) आय देव मन्दिर के लिए श्रेष्ठ है।



राजवल्लभ ग्रन्थ में माप की इकाई का वर्णन पूर्व में किया जा चुका है। मान कौन सा लेना, इसका निर्णय करने के उपरान्त आयादि सूत्रों को देखेंगे।

२.१.२ मान

मानं देवगृहादिभूपसदने शास्त्रोक्तहस्तेन तत्
गेहे कर्मकरेण नाथकरतः स्यात् त्रैणछि(छ)न्ने गृहे।
आयो दण्डकराङ्गुलादिमपितो हस्ताङ्गुलैरंशतः
क्षेत्रस्याप्यनुमानतोऽपि नगरे दण्डेन मानं पुरे।।२।।

देवमन्दिर तथा राजघर के विषय में शास्त्र में कहे अनुसार हस्त से माप करें। साधारण लोगों के घर में, शिल्पी के हाथ से माप लें। घास व तृण के घर में स्वामी के हस्त का माप लें।

भूमि को हस्त, अंगुल तथा यव में मापें। भूमि का क्षेत्रफल निकालें। नगर का क्षेत्रफल दण्ड में लें।

मान कौन सा लें (आय की कल्पना)

शालिनी

आयः कल्प्यो हस्तमैयैः करैश्च क्षेत्रे मात्रानिर्मिते मात्रिकाभिः।
मध्ये पर्यङ्कासने मन्दिरे च देवागारे मण्डपे भित्तिबाह्ये।।३।।

हस्त व अंगुल से माप लेकर, क्षेत्रफल निकालकर आय करें। पलंग (पर्यंकादि) में मध्य का मान लेकर, उसी प्रकार घर में चारों ओर का मध्य मान लेकर करें, परन्तु देवमन्दिर व मंडप के बाहर के चारों ओर का दीवार के बाहर से माप लेकर गणना करें।

व्याख्या-सामान्य रूप से देवमन्दिर में ओटले सहित मान लेकर गणना करते हैं।

घरों में दीवार के अन्दर-अन्दर का मान लेते हैं। मंदिर में ओटले सहित मान लिया जाता है। तथा उपकरण जैसे पलंग, सिंहासन, कुर्सी आदि में मध्य का मान लेते हैं।

२.१.३ शुभ आय

शार्दूलविक्रीडित

छत्रे देवगृहे द्विजस्य भवने स्याद् वेदिकायां जले
विस्तारोच्छ्रयवस्त्रभूषणमखागारेषु शस्तो ध्वजः।
धूमो वह्न्युपजीविनामपि गृहे कुण्डे च होमोद्भवे
सिंहद्वारनृपालयेऽस्त्रनिचये सिंहश्च सिंहासने।।४।।

छत्र, देवमन्दिर, ब्राह्मण का घर, वेदी, जलाशय क्षेत्र का विस्तार, क्षेत्र की चौड़ाई व ऊँचाई, वस्त्र, आभूषण, यज्ञशाला के लिए **ध्वज** आय श्रेष्ठ है। अग्नि से आजीविका करने वालों का घर, होमकुण्ड के लिए **धूम** आय श्रेष्ठ है। सिंहद्वार, राजघर, अस्त्र संग्रह कक्ष तथा सिंहासन में **सिंह** आय श्रेष्ठ है।

दिशानुसार आय एवं उसके उपयोग		
दिशा	**आय**	**उपयोग**
पूर्व	ध्वज	छत्र, मन्दिर, ब्राह्मण, वेदी, जलाशय, वस्त्र, आभूषण, यज्ञशाला
अग्नि	धूम	अग्नि से आजीविका, होमकुण्ड
दक्षिण	सिंह	सिंहद्वार, राजघर, अस्त्र संग्रह कक्ष तथा सिंहासन
नैर्ऋत्य	श्वान	चाण्डाल के घर
पश्चिम	वृष	वैश्य, अश्वशाला, दुकान, लकड़ी का कमरा, भोजनशाला
वायव्य	खर	वादित्रों, गधे से आजीविका चलाने वाले
उत्तर	गज़	शूद्र, पालकी, स्त्रियाँ, वाहन, शय्या व गजशाला
ईशान	ध्वांक्ष	शिल्पी, तपस्वी के लिए

$\frac{(\text{लंबाई} \times \text{चौड़ाई})}{८}$, **शेषफल को आय कहते हैं।**

$\frac{\text{नक्षत्र}}{८}$ शेषफल को **व्यय** कहते हैं।

$\frac{(\text{लंबाई} \times \text{चौड़ाई}) \times ८}{२७}$ शेषफल को **नक्षत्र** कहते हैं।

चाण्डाले शुनको विशां तु वृषभो हर्म्यो हयानां हितो
वाणिज्ये धनभोजनस्य भवनेऽथो वाद्यगेहे खरः।
वादित्रे ख(स्व)रजीविनामपि गृहे शूद्र गजो योजितो
याने स्त्रीगृहवाहने च शयने शस्तो गृहे हस्तिनाम्।।५।।

चाण्डाल के घर के लिए **श्वान** आय श्रेष्ठ है। वैश्य (व्यापारी, बनिए) के घर के लिए, अश्वशाला, व्यापारी की दुकान के लिए, लकड़ी का कमरा, भोजनशाला के लिए **वृष** आय श्रेष्ठ है। वादित्रों (वाद्य व स्वर से आजीविका चलाने वालों) के लिए, गधे से आजीविका चलाने वालों के लिए **खर** आय श्रेष्ठ है। शूद्र, पालकी, स्त्रियाँ, वाहन, शय्या व गजशाला के लिए **गज़** आय श्रेष्ठ है।

२.१.४ आय स्वरूप

ध्वांक्षः शिल्पितपस्विने हितकरस्तेषां मुखं नामवत्
ध्वांक्ष काकमुखे बिडालवदने धूमो ध्वजो मानुषः।
सर्वे पक्षिपदा हरेरिव गलो हस्तो नरस्येव तु
प्राच्याः सृष्टिगताः क्रमेण पतयो ह्यष्टौ च ते सन्मुखाः।।६।।

शिल्पी, तपस्वी के लिए **ध्वांक्ष** आय सुखकारी है। ध्वांक्ष आय का मुख काग, धूम का मुख बिल्ली, ध्वज का मनुष्य मुख है। (शेष आय के मुख उनके नाम के समान होते हैं।) सभी आय के पैर, पक्षी के समान हैं। गला सिंह के समान एवं हाथ मनुष्य के समान हैं।

इस आय का क्रम पूर्व, अग्नि, दक्षिण, नैर्ऋत्य, पश्चिम, वायव्य, उत्तर व ईशान है। इसी सृष्टि मार्ग के अनुक्रम से (प्रदक्षिण क्रम से) दिशाओं में स्वामी की आठ आय है अर्थात ध्वज का मुख पूर्व में, धूम का अग्नि में, सिंह का दक्षिण में, श्वान का नैर्ऋत्य में, वृष का पश्चिम में, गर्दभ का वायव्य में, गज़ का उत्तर दिशा में तथा ध्वांक्ष का मुख ईशान कोण में है।

दिशानुसार आय	
दिशा	आय
पूर्व	ध्वज
आग्नेय	ध्वज, सिंह
दक्षिण	सिंह
नैर्ऋत्य	सिंह, वृष
पश्चिम	वृष
वायव्य	वृष, गज
उत्तर	गज
ईशान	गज, ध्वज

२.१.५ आय विचार

देया सिंहगजध्वजा हि वृषभे सिंहध्वजौ कुञ्जरे
सिंहे वै ध्वज इष्यते न वृषभोऽन्यत्रापि देयो बुधैः।

घर के लिए वृष. सिंह, ध्वज व गज आय शुभ हैं। गज आय वाले गृह में सिंह व ध्वज आय का द्वार शुभ होता है। ध्वज आय के घर में सिंह आय का द्वार शुभ होता है। वृष आय के घर में सिंह का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

सिंहो हस्तिवृषालये मृतिकरस्त्वायस्थवक्त्रं गृहं
तस्मिन्नेव च वामदक्षिणदिशाद्वारे स आयः शुभः।।७।।

वृष आय के घर में सिंह व गज का प्रयोग मृत्यु देने वाला होता है। आय का उपयोग, जिस दिशा के आय हो उस दिशा में करना चाहिए। दाहिनी व बाई ओर भी आय का प्रयोग कर सकते हैं।

व्याख्या- श्लोक ८ में बताया जाएगा कि आय ८ होती हैं तथा आय किस प्रकार ज्ञात करते हैं या निकालते हैं। इन आठ आय के अलग-अलग उपयोग हैं। इनमें विषम आय शुभ हैं, अर्थात् ध्वज (१), सिंह (३), वृष (५) तथा गज (७) आय शुभ हैं।

हम देख चुके हैं कि ध्वज आय पूर्व दिशा में, सिंह आय दक्षिण दिशा में, वृष आय पश्चिम दिशा में तथा गज आय उत्तर दिशा में स्थित होती हैं।

यहां दो-तीन बातें ध्यान देने योग्य हैं। इस श्लोक में यह बताया है कि किस शुभ आय के स्थान पर हम अन्य आय का शुभ प्रयोग कर सकते हैं तथा किस अन्य आय का प्रयोग नहीं करना चाहिए। वृष आय का प्रयोग अन्य आय के स्थान पर नहीं करना चाहिए। इसी प्रकार वृष आय के स्थान पर सिंह या गज आय का प्रयोग नहीं करना चाहिए।

इस बात को हम इस प्रकार समझ सकते हैं कि जिस कार्य में वृष अर्थात व्यापारिक मनोवृत्ति का प्रयोग करना है, उस कार्य में सिंह (क्षत्रिय, प्रशासन) की आय देने पर उस व्यक्ति की मनोवृत्ति में क्रोध आदि अधिक हो सकता है, जो की व्यापारिक मनोवृत्ति के विपरीत है, अतः वृष के स्थान पर सिंह आय नहीं देना चाहिए।

इसी प्रकार वृष आय के स्थान पर गज आय नहीं देना चाहिए। गज आय विलासिता के लिए शुभ है, भोग-विलास, आनन्द, शयन कक्ष के लिए गज आय शुभ है। वृष आय (व्यापारिक मनोवृत्ति के लिए) के स्थान पर गज आय देने से व्यक्ति के लिए विलासिता के गुण बढेंगे तो व्यापार के लिए हितकर नहीं हैं।

श्लोक में आगे वर्णन आया है कि दाहिनी ओर तथा बाई ओर भी वह आय शुभ है, उसका तात्पर्य यह है कि जिस दिशा की जो आय है वह आय, उस दिशा से दाहिनी व बाई ओर भी शुभ है। उदाहरण जैसे पूर्व दिशा की आय ध्वज है तो ध्वज आय पूर्व दिशा से दाहिनी ओर तथा बाई ओर अर्थात अग्नि कोण तथा ईशान कोण में भी शुभ है। इसी प्रकार सिंह आय दक्षिण के अतिरिक्त आग्नेय कोण व नैर्ऋत्य कोण में भी शुभ है। इसी प्रकार वृष आय पश्चिम दिशा के अलावा नैर्ऋत्य कोण व वायव्य कोण में भी शुभ है। गज आय वायव्य, उत्तर व ईशान में शुभ है।

उदाहरण- माना कि किसी घर की लम्बाई २१ हस्त तथा चौड़ाई १९ हस्त है तो क्षेत्रफल हुआ-

क्षेत्रफल = लम्बाई X चौड़ाई २१X १९ = ३९९

आय ३९९/८ =४९ बार भाग गया तथा शेषफल ७ आया। यह गज आय है।

आयादि के सूत्रों को अन्य ग्रन्थ देखने का प्रयास करेंगे-

मत्स्यपुराण के अध्याय २६७ के श्लोक १५-१६ में बताया गया है कि

व्यासेन गुणिते दैर्घ्ये अष्टाभिर्वे हृते तथा।।१५।।

यच्छेषमायंतं विद्यादष्टभेदं वदामि वः। ध्वजो धूमश्च सिंहश्च खरः श्वावृष एव च।।१६।।

हस्ती ध्वांक्षश्च पूर्वाद्याः करशेषा भवन्त्यमी।



घर के व्यास से लम्बाई के मान में गुणा कर आठ का भाग दें, जो शेष बचे उसे आय जानना चाहिए । अब मैं आप लोगों को आठ भेद बता रहा हूँ। उन शेष हस्त की क्रमशः ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृषभ, खर, हस्ती और काक की संज्ञा होती है।

समरांगण सूत्रधार ग्रन्थ के अनुसार

देवतानां तु धिष्ण्येषु कर्महस्तेन केवलम्।
दैर्घ्यं हन्यात् पृथुत्वेन हरेद् भागं ततोऽष्टभिः।।१७।।
यच्छेषमायं तं विद्याच्छास्त्रदृष्टं ध्वजादिकम्।

देवताओं के मन्दिरों में केवल कर्म-हस्त से मान किया जाता है। पृथुत्व से दैर्घ्य को मारे और उसके बाद आठ भागों से हरण करें, जो शेष रह जाय उसको आय समझना चाहिए। वही शास्त्रोक ध्वजादिक भी जानने चाहिए।

आयादि-विचार

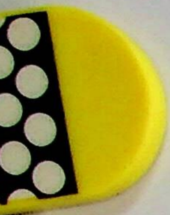
अब वेश्मों के आय (income), व्यय (expense), अंश और ऋक्षों (नक्षत्र) का वर्णन करता हूँ। गृह-स्वामी के प्रमाण-वश से ठीक तरह विचार कर नगर में अथवा पुरादि में दंडों (measuring rods) से मान-विधान कहा गया है। इसे दण्डाश्रित मान कहना चाहिए।

उसके अलाभ (non-availability) में ठीक तरह से आय की विशुद्धि के लिए हस्तों (हाथ) के द्वारा मान करना चाहिए। यहाँ पर क्षेत्र में हस्तों के द्वारा मान करना चाहिए।

जहाँ पर क्षेत्र में हस्तों के द्वारा मान किया जाता है, वहाँ पर हस्ताश्रित आय होता है। क्षेत्र के अलाभ में तो वहीं पर अंगुलों से ग्राह्य (ग्रह्ण) होता है, अंगुलों (12 of which make a vitasti and 24 a hasta or cubit) के द्वारा नापे गए क्षेत्र में वह अंगुलाश्रित मान कहा जाता है।

उसके अलाभ में क्षेत्र के अनुसार पादों (squares) से अथवा अलाभ में क्षेत्र के अनुसार पादों से अथवा यवों (लंबाई की एक नाप- एक अंगुल का १/६ या १/८) से मान करना चाहिए। स्वामी के हाथ से अथवा कर्म-हस्त (i.e. practical cubits) से भवनों में मान होता है।

देवताओं के मन्दिरों में केवल कर्म-हस्त से मान किया जाता है। पृथुत्व से दैर्घ्य को मारे और उसके बाद आठ भागों से हरण करें, जो शेष रह जाय उसको आय समझना चाहिए। वही शास्त्रोक



ध्वजादिक भी जानने चाहिए।

इन ध्वजाओं में निम्नलिखित उपलक्षण कहे जाते है–ध्वज, धूम, सिंह (a lion), श्वा (a dog), वृष (a bull), खर (donkey), कुंजर (हाथी, tusker) तथा ध्वांश (a crow)। प्राची (पूर्व) आदि दिशाओं में प्रदक्षिण (clockwise) और परस्पर अभिमुख (सामने की और मुख करके) और स्वतन्त्रतापूर्वक, स्वच्छन्दचारी वृद्धि-विधायक आय की ये संज्ञाएँ पूर्वाचार्यों के द्वारा समुद्दिष्ट (पूर्णतः निर्देश की गई) की गयी हैं।

वृष (a bull), सिंह (a lion) और गजवाली (a tusker) ध्वजाएँ प्रासादों, पुरों (नगर, शहर) एवं वेश्मों (गृहों) में मंगलकारी कही गई हैं। ध्वज में अर्थलाभ (धन लाभ), धूम में सन्ताप (दुःख, पीड़ा, वेदना), सिंह में भोग, कुत्ते (श्वान)(dog) में कलि (झगड़ा, लड़ाई), वृष में धन और धान्य, खर में स्त्री-दूषण, गज में मंगल दिखाई देते है, ध्वांश में तो मरण निश्चित है, वृष के स्थान में गज और वृषभ और गज के स्थान में सिंह रखें, वृष को दूसरे स्थान पर न रखें, तो ध्वज सर्वत्र प्रशस्त (श्रेष्ठ) माना जाता है।

सिंह विशेषकर ब्राह्मण का कल्याण-कर्ता है। क्षत्रिय के लिए गज प्रशस्त (श्रेष्ठ) है। वृषभ वैश्य के लिए प्रशस्त है। शुद्र के लिए ध्वज ही एक प्रशस्त है। वह सदा अर्थप्रद (धन प्रदान करने वाला) होता है। इस प्रकार से भवनों के ये सब आय वर्णित (वर्णन करना) किए गए हैं।

आसन् अर्थात् राजासन में सिंह और आतपत्र अर्थात् राजछत्र में, ध्वज को, इसी प्रकार चामर और व्यजनादि राज-चिन्हों (trademarks or royal insignia) में, शस्त्रों में, रथों में, कवचों में, सब में सिंह अथवा गज को प्रदान करें। सारी (पक्षिविशेष), घोड़ा, गज, पर्याण (काठी, जीन कसना) में गज या वृषभ को प्रदान करें। अर्थ (धन) के रखने वाले पात्रों (बर्तनों) में, शयनों में गज को प्रदान करें। इसी प्रकार यान (वाहन, रथ) में और वाहन में भी बुद्धिमान् को गज की योजना करनी चाहिए।

' प्रासाद (मंदिर), मूर्ति, लिंग, पीठ, मंडप और वेदियों में, कुंडों (bowl-shaped).vessels or holes in grounds meant for receiving and preserving water, a pool, a basin, a well especially connected with a deity or holy purpose or bowl of a mendicant) में और देवोपकरणों में ध्वज देना चाहिए। गृह के समान ही विवाह की वेदी और मंडप इन दोनों में आय की व्यवस्था होती है।

रसोई में वृष को और जलाधार जलाशाय में, थाली या अन्य भोजन-पात्र में, अन्न रखने वाले कोष्ठागार (store house of grains.)में भी वृष दे। घर में गृहोपकरणों (luggage's of the house) में भी वृष को दे। गजशाला (elephant mews or stud) में वृष अथवा गज को दें।



अश्वशालाओं में, गोशालाओं (cow-pens) में और गोकुलों (i.e. among the herds of kine) में वृष को दे। गजशालाओं में, अश्वशालाओं (horses stables) में और वृषशालाओं में यत्नपूर्वक (with effort) सिंह का वर्जन (छोड़ दें) करें।

अधमों (lowly beings) के लिए खर, ध्वांश, धूम, और श्वान ये शुभ कहे गए हैं। अग्नि-जीवियों (आग से जीविका जिनकी चलती हैं, अर्थात आय होती हैं) के लिए धूम प्रशस्त (श्रेष्ठ) कहा गया है और सन्यासियों के लिए ध्वांश हितकारी कहा गया है।

स्वगणों (a pack of hounds or terriers)(a hunter with a pack of hounds), चांडालों (पतित, अधम) के अपने घरों के लिए खर शुभ कहा गया है। इसी प्रकार नटों, नर्तकों तथा वेश्याओं के भवनों के लिए भी खर शुभ कहा गया है। कुम्भकारों (potters), धोबियों (washer men) आदि के भवनों के लिए भी यही विधान है।

व्यय-विचार–घरों आदि में क्षेत्रफल को आठ भागों से गणना करें, तीन घन से शेष प्राप्त करें। अष्टहृत क्षेत्र या नक्षत्र में व्यय होता है। पिशाच, राक्षस और यक्ष इन तीन नामों से व्यय (खर्च) माना गया है।

अशंक-विचार–क्रमशः सम, अधिक न्यून आय से क्षेत्रफल में व्यय को क्षिप्तकर और गृहनाम और अक्षरों को भी क्षिप्त (हटाया हुआ, उपेक्षित) करके तीन से भाग का हरण करें और जो बाकी बचे वह अंशक कहलाता है।

जिस प्रकार चतुरंग मन्त्र मुख्य है और लग्न में नवांशक मुख्य है, उसी प्रकार से घरों में प्रधानता तीन अंश मुख्य होते हैं। वे है–इन्द्र, यम और राजा। इन तीन नामों से अशंक होते है। यथार्थ नाम फल देने वाले ये तीनों जानने चाहिए।

तारा-विचार–स्वामी के नक्षत्र से गणना करें और जब तक भरणी का नक्षत्र न आजाए तब तक गणना करनी चाहिए। फिर उसमें नौ से भाग करने पर जो शेष हो उसे तारा कहा गया है।

१. जन्म २. सम्पत् ३. विपत् ४. क्षेम ५. पाप ६. साधक ७. नैधनी ८. मैत्री ९. परम मैत्री--ये संज्ञाएँ कही गई हैं। ये फल में सब समान हैं। तीसरी, सातवीं और पाँचवीं तारा स्वामी के गृह में वर्जित कही गई हैं।



पहली, दूसरी, आठवीं तारा को मध्यम तारा कहा गया है। अनिष्ट ऋक्ष (नक्षत्र, तारा) में भी और अष्टम चन्द्रमा में भी चौथी, छठी और नवमी ताराएँ मनुष्यों का दुरित अर्थात् पाप ले जाते हैं।

सुर, राक्षस और मर्त्स संज्ञा वाले ऋक्षों के तीन गण होते हैं। जो गण और ऋक्ष (नक्षत्र) स्वामी का होता है उसी गण और नक्षत्र का घर शुद्ध होता है।

१. मृग २. अश्विनी ३. रेवती ४. स्वाती ५. मैत्र ६. पुण्य ७. पुनर्वसु ८. हस्त ९. श्रवण–ये नौ देवगण होते है।

१. विशाखा २. कृत्तिका, ३. आश्लेषा ४. नैर्ऋत ५. वारुण ६. मघा ७. चित्रा ८. ज्येष्ठा ९.घनिष्ठा–ये नौ राक्षसगण कहलाते हैं।

१. आर्द्र २. भरणी और ३. रोहणी–ये तीन पहिले वाले नक्षत्र और छः बाद वाले मिलकर (तीनों पूर्वा तथा तीनों उत्तरा) नवगण मानुषगण (मनुष्यगण) समझने चाहिए।

जिस घर में गण-साम्य (समता), शुभ नक्षत्र और आय से व्यय कम तथा हितकारी अंश होते हैं, वह घर शुभ फल देने वाला होता है।

आय, व्यय, योनि, नक्षत्र, भवनांशक और गृहनाम के घर के छः करण जानने चाहिए। तीन शुभ करणों से शुभ वेश्म, दो और एक से अशुभ और चारों करणों से अति शुभ घर होता है।

घर समान आय और व्यय वाला नहीं होना चाहिए और न अ-व्यय होना चाहिए और न अधिक-व्यय होना चाहिए। द्वितीयांश, असमान-योनि और असमान-नक्षत्र वाला घर नहीं बनाना चाहिए और स्वामी के तुल्य अभिधान (कहना, बोलना, नाम रखना, संकेत करना) वाले घर को दूर ही से त्याग देना चाहिए।

समान-सप्तक, एक-नक्षत्र, तीसरा-ग्यारहवां और चौथा तथा दशवां-ऐसे नक्षत्र में घर वनवाना चाहिए।

छः कोष्ठ वाला, तीन कोने वाला और साथ ही साथ दूसरा और बारहवाँ वाला इस प्रकार के भवन वर्ज्य (त्यागने योग्य) हैं। षट्-कोष्टक गृह में मृत्यु, दैन्य (गरीबी, दरिद्रता) तथा वियोग (अलग होना) प्राप्त होते हैं। त्रिकोण (three cornered house) में बसने वालों को दुःख और वैधव्य (विधवापन) (widowhood) उत्पन्न होता है।



द्विद्वादश (double bordered, twelve cornerd or started house) में बसने वालों को पुत्र, पौत्र, गुरु, बन्धु (रिश्तेदार) और धन आदि का नाश प्राप्त होता है।

आठ से हृत क्षेत्रफल के ख (०) नेत्र (२) शशि (१) (अर्थात् १२०) इनसे विभाजित होने पर जो शेष बचे उसमें जीवन और पाँच से विभाजित करने पर मृत्यु बताई गयी है।

सभुज, षड्दारु (the six fagotted beams)-सहित, मुख-मंडप (opening pavilion) से युक्त भवन के आयाम और पृथुत्व (by length and breadth) से मान करके विभाजन करें।

जो वास्तु सब प्रकार से शोधित (round polish) और ठीक तरह से नापा गया हो वह स्वामी के लिए धन्य है और स्थपति के लिए बड़ा कीर्तिकारक होता है।

स्त्रियों, पशुओं, मनुष्यों, कीर्ति, आयु, धन, धान्यों से प्रमोद एवं महोत्सवों से अर्चित (पूजित, आदर किया हुआ) वास्तु वृद्धि को प्राप्त करता है।

मानसार ग्रन्थ के अनुसार

आयादि सूत्र

३२ ग्राम के प्रयोग के लिए आयादि लक्षण का वर्णन करते हैं। नौ प्रकार की लंबाई या (एक) लंबाई, चौड़ाई या परिधि का शुद्ध मान के स्थापन हेतु आयादि के नौ सूत्रों का प्रयोग करें। कुछ विद्वानों ने कहा है कि **आय व नक्षत्र का संबंध लंबाई से, तिथि व वार का संबंध परिधि से, व्यय व योनि का संबंध चौड़ाई से है।**

३४ जब लंबाई को आठ से गुणा कर बारह से भाग देते हैं तो जो शेष बचता है वह **आय** है। जब लंबाई को आठ से गुणा कर सत्ताईस से भाग देते हैं तो जो शेष बचता है वह **क्षप (नक्षत्र)** है। जब चौड़ाई को नौ से गुणा कर दस से भाग देते हैं, तो जो शेष बचता है वह **व्यय** है।

३६ जब (चौड़ाई) को तीन से गुणा कर आठ से भाग देते हैं तो जो शेष बचता है वह **योनि** है। (परिधि) को नौ से गुणा कर सात से भाग देते हैं, जो शेष बचता है वह **वार** है। (परिधि) को नौ से गुणा कर तीस से भाग देते हैं, जो शेष बचता है वह **तिथि** है।

३७ विद्वान इन आयादि षड्वर्ग का प्रयोग करें।



मानसार अध्याय १९

३ ये हर्म्य पुनः स्थानक आदि तीन प्रकार के होते है। इन्हें आयादि से शुद्ध करना चाहिए। उत्सेधे मान(नं) गृ(ग्रा)ह्यं चेत्स्थानकं तत्प्रकथ्यते। विस्तारे मान(नं) संकल्प्य चासनं तदुदीरितम्।।४।।

४ ऊँचाई के मान से गृह के मान का करने पर वह स्थानक होता है। जब मान लंबाई से करते हैं तो वह आसन कहलाता है।

५ जब मान चौड़ाई से करते हैं तो वह शयन कहलाता है। इन तीन प्रकार में हर्म्य में आसन को संचित, स्थानक को असंचित तथा शयन को अपसंचित कहा गया है।

मयमत ग्रन्थ के अनुसार अध्याय ९

आयादि

२० लंबाई व चौड़ाई के जोड़ को, आठ से गुणाकर, बारह से विभाजित (भाग) करने पर तब जो शेष बचता है, उसे **आय** कहते हैं। लंबाई व चौड़ाई को जोड़कर नौ से गुणा कर, दस से भाग देने पर जो शेष बचता है उसे **व्यय** कहते हैं।

२१ जब लंबाई व चौड़ाई के जोड़ को तीन से गुणा कर, गुणनफल को आठ से भाग देने पर जो शेष बचता है उसे **योनि** कहते हैं ये क्रम से ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज़ तथा काक होती है।

२२ इन आठ योनियों में से ध्वज, सिंह, वृष तथा हाथी (गज़) शुभ है। लंबाई व चौड़ाई के जोड़ को आठ से गुणाकर, सत्ताईस से भाग देने पर quotient (भागफल) को वय (अवस्था) तथा जो शेष बचता है उसे **नक्षत्र** कहते हैं।

आयादि सूत्र

$$\frac{(\text{लंबाई} + \text{चौड़ाई}) \times ८}{१२}$$ **शेषफल को आय कहते हैं।**

$$\frac{(\text{लंबाई} + \text{चौड़ाई}) \times ९}{१०}$$ शेषफल को **व्यय** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई} + \text{चौड़ाई}) \times ३}{८}$$ शेषफल को **योनि** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई} + \text{चौड़ाई}) \times ८}{२७}$$ शेषफल को **नक्षत्र** कहते हैं।

$$\frac{(\text{लंबाई} + \text{चौड़ाई}) \times ८}{३०}$$ शेषफल को **तिथि** कहते हैं।

२३ लंबाई व चौड़ाई को जोड़ कर आठ से गुणाकर, तीस से भाग देने पर जो शेष बचता है वह **तिथि** होती है।

वार में पहला वार रविवार होता है।

पूरा निर्माण इसी ज्ञान के आधार पर करना चाहिए।

२४ आय, व्यय से अधिक होने पर वह सुख देने वाली होती है। व्यय, आय से अधिक होने पर सर्वनाश होता है। इस प्रकार विपरीत होने पर विपत्ति होती है। अतः भली भाँति परीक्षा करके कार्य करना चाहिए।

आयादि लक्षण

२०६ चौड़ाई को तीन से गुणा कर गुणनफल को आठ से भाग देने पर जो शेष बचता है उसे **आय** कहते हैं।

ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज़, व वायस-ये योनि (आय) हैं।

२०७ इनमें ध्वज, मृग (सिंह), वृष व गज़ ये शुभ हैं। अन्य अशुभ है।

चौड़ाई को आठ से गुणा कर गुणनफल को सत्ताईस से भाग देने पर जो शेष बचता है, उसे **नक्षत्र** कहते हैं।

२०८-१० इनमें अश्विनी आदि नक्षत्र होते हैं। इससे राशि ज्ञात करते हैं। जब लंबाई को आठ से गुणा कर बारह से भाग देते हैं तो **धन**, तथा जब लंबाई को नौ से गुणा कर दस से भाग देते है तो **ऋण** प्राप्त होता है। धन अधिक व ऋण कम हो तो शुभ होता है।

जब परिधि को नौ से गुणा कर, तीस से भाग देते हैं तो शेष फल को **तिथि** कहते हैं।

सूर्य वार में पहला होता है,(रविवार)। इनके व नक्षत्रों के संयोग से योग होते हैं। अमृत, वर, सिद्ध योग शुभ है। अन्य नहीं।

२११ घर का व स्वामी का एक नक्षत्र शुभ है। यह मनुष्यों के घरों के लिए है। अमरों के लिए जो कर्ता के लिए शुभ है, वही भवन के लिए शुभ है।

आयादि विचार

२४ आठ (८) से गुणाकर १२ से भाग देने पर (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **आय** प्राप्त होता है, नौ से गुणाकर कर दस से भाग देने पर (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **व्यय** का परिमाण कहा है। तीन से गुणाकर आठ से भाग देने पर (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **योनि** का परिणाम कहा है। आठ से गुणाकर सत्ताईस से भाग देने पर (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **नक्षत्र** कहा है। चार से गुणाकर नौ से भाग देने पर (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **अंश** प्राप्त होता है।



नौ से गुणाकर सात से भाग देने (जो शेष बचता है, वह शेषफल) **दिन** कहा है। इन तत्वों की सहायता से तथा वाहन व पालकियों के सामान्य नियमों के अनुसार रथ व आसन का निर्माण किया जाता है।

आयादि

आयादि

उत्सेधऽष्टगुणैः सप्तविंशद्भिर्हरणे ततः।
शेषमश्वयुजाद्यं तु नक्षत्रं तु चतुर्गुणे।।५८।।

५८ ऊँचाई को ८ से गुणा कर २७ से भाग दे, शेषफल को **नक्षत्र** जाने, इनमें पहला अश्विनी नक्षत्र होता है।

नवभिर्हरणे शिष्टमंशकं तस्करादिकम्।
भुक्तिः शक्तिवर्धनं राज षण्डश्चाभयकं विपत्।।५९।।
समृद्धिरिति विख्यातान्यंशकानि नव क्रमात्।
तस्करं च विपत् षण्डं निन्दितं वस्तुपारगैः।।६०।।

५९-६० ऊँचाई को ४ से गुणाकर ९ से भाग दे, शेषफल को **अंश** जाने। पहला तस्कर, दूसरा भुक्ति, तीसरा शक्ति, चौथा धन, पांचवां राज, छटा षण्ड, सातवां अभय तथा आठवां विपत तथा नवां समृद्धि होता है। ये क्रम से ९ अंश कहे गए हैं। इनमें तस्कर, विपत तथा षण्ड विद्वानों ने निन्दित बताए हैं।

चौ	ल	क्षेत्र		आय		नक्षत्र	व्यय
२१	१९	३९९	४९.८७५	७	११८.२२२२२२२	६	६
२१	२०	४२०	५२.५	४	१२४.४४४४४४४	१२	४
२१	२१	४४१	५५.१२५	१	१३०.६६६६६६७	१८	२
२१	२२	४६२	५७.७५	६	१३६.८८८८८८९	२४	८
२१	२३	४८३	६०.३७५	३	१४३.११११११११	३	३
२१	२४	५०४	६३	८	१४९.३३३३३३३	९	१
२१	२५	५२५	६५.६२५	५	१५५.५५५५५५६	१५	७
२१	२६	५४६	६८.२५	२	१६१.७७७७७७८	२१	५
२१	२७	५६७	७०.८७५	७	१६८	२७	३
२१	२८	५८८	७३.५	४	१७४.२२२२२२२	६	६
२१	२९	६०९	७६.१२५	१	१८०.४४४४४४४	१२	४
२१	३०	६३०	७८.७५	६	१८६.६६६६६६७	१८	२
२१	३१	६५१	८१.३७५	३	१९२.८८८८८८९	२४	८
२१	३२	६७२	८४	८	१९९.११११११११ ३	३	३



उत्तुङ्गवश्सुनन्दाग्नि गुणैरर्कदशाष्टभिः।

शिष्टं धनमृणं चैव योनिकं स्याद् यथाक्रमम्।।६१।।

६१ ऊँचाई को ८ से गुणाकर १२ से भाग देने पर जो शेषफल प्राप्त होता है उसे **धन** कहते हैं। ऊँचाई को ९ से गुणाकर १० से भाग देने पर जो शेषफल प्राप्त होता है उसे **ऋण** कहते हैं। ऊँचाई को ३ से गुणाकर ८ से भाग देने पर जो शेषफल प्राप्त होता है उसे **योनि** कहते हैं।

धनाधिकमृणं क्षीणं मानं तत् संपदां पदम्।

योनिषु ध्वजसिंहश्च वृषो हस्ती शुभावहाः।।६२।।

६२ धन का मान अधिक तथा ऋण का मान कम होने पर सम्पदा प्राप्त होती है। योनि में ध्वज, सिंह, तथा वृष व हस्ती योनि शुभ हैं।

तुङ्गं नवगुणं कृत्वा सप्तभिः क्षपयेत् ततः।

शेषं सूर्यादिवारं स्यात् क्रूरास्तत्र विवर्जिताः।।६३।।

६३ ऊँचाई कों ९ से गुणाकर ७ से भाग देने पर **वार** प्राप्त होते हैं, इनमें रविवार पहला है। क्रूर ग्रह के वार (रवि, मंगल व शनि) को छोड़ देना चाहिए।

ग्रामादीनां च कर्तुश्च नक्षत्रेणाविरोधि यत्।

तल्लिङ्गं देशदेशेशदेहिनां शुभकारणम्।।६४।।

६४ वह लिंग, जो ग्राम आदि, बनवाने वाले के नक्षत्र, वह लिंग उस देश (स्थान) के लिए जहाँ उसे स्थापित करते है, के विरोध का न हो. तो वह उस देश के स्वामी तथा उस देश में रहने वालों के लिए शुभ होता है।

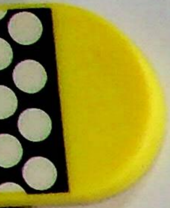
बेरायामं गृहीत्वाष्टनवभिस्त्रिगुणैर्हते।

द्वादशाष्टाष्टभिर्व्यासधनर्णाख्यं तु योनिकम्।।२९७।।

२९७ प्रतिमा की ऊँचाई को आठ, नौ तथा तीन से गुणा कर उसे बारह, आठ व आठ से भाग दे जो शेषफल मिले उसे क्रमशः आय, व्यय व योनि जाने।

आयाधिकं व्ययक्षीणं मानं तत्सम्पदां पदम्।

योनिष्वष्टासु स्युः..................।।२९८।।



२९८ आय अधिक व व्यय कम होने पर सम्पदा की प्राप्ति होती है। आठ योनियों में से ध्वज, सिंह, वृष व गज शुभ हैं।

नक्षत्र ३९९ X ८ /२७ -शेषफल ६। यह घर का नक्षत्र है। इसका नाम अश्विनी आदि क्रम से गिनने पर आर्द्रा है।

(नक्षत्र २७ हैं जिनका क्रम इस प्रकार है- यह क्रम अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ कर हैं। इसमें अभिजित नक्षत्र मिलाने पर कुल नक्षत्र २८ होते हैं-

१ अश्विनी, २ भरणी, ३ कृतिका, ४ रोहिणी, ५ मृगशिरा, ६ आर्द्रा, ७ पुनर्वसु, ८ पुष्य, ९ आश्लेषा, १० मघा, ११ पूर्वाफाल्गुनी, १२ उत्तराफाल्गुनी, १३ हस्त, १४ चित्रा, १५ स्वाति, १६ विशाखा, १७ अनुराधा, १८ ज्येष्ठा, १९ मूल, २० पूर्वाषाढा, २१ उत्तराषाढा, २२ श्रवण, २३ धनिष्ठा, २४ शतभिषा, २५ पूर्वाभाद्रपद, २६ उत्तराभाद्रपद, २७ रेवती)

नक्षत्र संख्या को आठ से भाग देने पर व्यय प्राप्त होता है।

व्यय = नक्षत्र/८ = ६/ ८ -शेषफल ६

तो व्यय ६ हुआ।

इसमें आय ७ तथा व्यय ६ है। आय से व्यय कम है अतः शुभ है।

तारा के नाम अन्य ग्रन्थ में इस प्रकार बताए गए हैं-शान्ता, मनोहरा, क्रुरा, विजया, कुलोद्भवा (?), पद्मिनी, राक्षसी, बाला, आनन्दा।

२.१.६ आय नक्षत्र व व्यंय-विचार

व्यासे दैर्घ्यगुणेऽष्टभिर्विभजिते शेषो ध्वजाद्यायक-
रष्टघ्ने तद्गुणिते च धिष्णयभजिते स्यादृक्षमश्वादिकम्।
नक्षत्रे वसुभिर्व्ययो विभजिते हीनस्तु लक्ष्मीप्रदः
तुल्यायश्च पिशाचको ध्वजमृते संवर्द्धितो राक्षसः।।८।।

घर के क्षेत्रफल (लम्बाई में चौड़ाई का गुणाकर जो आए उसे क्षेत्रफल कहते हैं) को आठ से भाग देने पर जो शेष रहता है, उसे ध्वज आदि आय जानना।

क्षेत्रफल को आठ से गुणा करने (भाग देने) पर जो अंक आता है उसे सत्ताईस से भाग देने पर जो शेष रहे उसे अश्विनी आदि नक्षत्र कहते हैं।

नक्षत्र के अंक को आठ से भाग देने पर जो शेष रहे उसे **व्यय** जाने। यदि व्यय का अंक, आय के कम हो तो लक्ष्मी की प्राप्ति कराता है। सम हो तो पिशाच तथा अधिक हो तो राक्षस जाने।

२.१.७ अंश-विचार

तन्मूले व्ययहर्म्यनामसहिते भक्ते त्रिभिस्त्वंशकान्
स्यादिन्द्रो यमभूपती क्रमवशाद् देवे सुरेन्द्रो हितः।
वेद्यामेव यमस्तु पण्यभवने नागे तथा भैरवे
राजांशो गजवाजियाननगरे राजालये मन्दिरे।।९।।

मूल राशि (क्षेत्रफल) के अंक में व्यय का मिलाए, उसके पश्चात् उसमें ध्रुव आदि जो घर का नाम हो उसके अक्षर के बराबर अंक मिलाए, प्राप्त अंक को तीन से भाग दें। एक शेष रहे तो इन्द्रांश, दो शेष रहे तो यमांश, शून्य (तीन) शेष रहे तो राजांश होता है।

व्याख्या-मूलराशि अर्थात् क्षेत्रफल में व्यय का अंक जोड़े तथा उसमें ध्रुव आदि जो एकशाला वाले १६ प्रकार के घर हैं, उसके नाम की संख्या के बराबर (जैसे मनोहर घर होने पर ४ अंक) जोड़े, जो आए उसे तीन से भाग दें। यदि एक शेष रहे तो कहते हैं कि इन्द्र का अंश अर्थात् इन्द्रांश, दो शेष हो तो यमांश तथा तीन शेष हो तो राजांश होता है। इनमें यमांश अशुभ है।

देवालय व वेदिका में इन्द्रांश, हाट, नागदेवता तथा भैरव के लिए यमांश श्रेष्ठ है। गजशाला, अश्वशाला, यान, नगर, राजा का घर, साधारण लोगों के लिए राजांश श्रेष्ठ है।

२.१.८ तारा-विचार

इन्द्रवज्रा

यावद् गृहर्क्षं गणयेत् स्वधिष्ण्यात् ताराविभक्ते नवभिश्च शेषाः।
बुधैस्तृतीया सकले विवर्ज्या या पञ्चमी सप्तमिका न शस्ता।।१०।

गृहस्वामी के नक्षत्र से गृह के नक्षत्र तक गिनने पर जो अंक आए, उसे नौ से भाग देने पर जो शेष रहता है उसे **तारा** कहते हैं।

तीसरा तारा सभी कार्य में त्यागने योग्य है। पांचवां व सातवां तारा भी शुभ नहीं है। अर्थात पहली, दूसरी, चौथी, छठी, आठवीं व नवीं तारा शुभ होती है।

चन्द्रमा

शार्दूलविक्रीडित

धिष्ण्यानीह च सप्तशः क्रमतया वह्नेस्तु पूर्वादितः
सृष्ट्या तानि भवन्ति यत्र गृहभं तत्रैव चन्द्रो भवेत्।
हानिं पृष्ठगतः करोति पुरतस्त्वायुःक्षतिं चन्द्रमाः
पार्श्वे दक्षिणवामके शुभकरोऽग्रे भूपदेवालयोः (ये)।।११।।

कृतिका आदि सात नक्षत्रों की पूर्व दिशा में, मघा आदि सात नक्षत्र की दक्षिण में, अनुराधा आदि सात नक्षत्रों की पश्चिम दिशा में, धनिष्ठा आदि सात नक्षत्रों की उत्तर दिशा में स्थापना करें।

इस रीति से दिशाओं में अनुक्रम लेकर नक्षत्रों को अनुक्रमानुसार प्रत्येक दिशा के भाग में सात नक्षत्रों की स्थापना करें। घर का नक्षत्र जिस दिशा में हो, उस दिशा में चन्द्रमा जाने। देवमंदिर व राजगृह के लिए चन्द्रमा घर के पीछे आए तो हानि, सामने आए तो आयु का नाश तथा दाएँ या बाएँ ओर आए तो श्रेष्ठ है।

२.१.९ राशि-विचार

प्रीतिः स्यात्समसप्तमी च दशमी चैकादशी शोभना
दारिद्र्यं युगला करोति मरणं षष्ठी कलिं पञ्चमी।

गृहस्वामी की राशि से, घर की राशि सातवीं आए तो प्रीति होती है। दसवीं राशि, ग्यारहवीं राशि भी शुभ है, परन्तु दूसरी राशि आए तो दरिद्रता करती है। छठवीं आए तो मरण होता है। पांचवी आए तो क्लेश उत्पन्न होता है।

मेषोऽश्वित्रितये हरिस्तु पितृभाच्चापत्रये मूलतः
शेषैः (षे) स्युर्नवराशयोऽपरमते नन्दांशकैस्ते पृथक्।।१२।।

अश्विनी आदि तीन नक्षत्र में मेष राशि होती है। मघा आदि तीन नक्षत्र में सिंह, मूलादि में धनु राशि शेष नक्षत्रों में नौ राशियाँ होती है।

(नक्षत्र २७ हैं जिनका क्रम इस प्रकार है, यह क्रम अश्विनी नक्षत्र से प्रारम्भ कर हैं। इसमें अभिजित नक्षत्र मिलाने पर कुल नक्षत्र २८ होते हैं।



नक्षत्र, तारों का समूह होता है। एक नक्षत्र में एक या एक से अधिक तारे होतें हैं। सत्ताईस नक्षत्र मिलकर, कुल ३६० डिग्री होती है। एक नक्षत्र में ३६० डिग्री को २७ से भाग देने पर १३ डिग्री २० मिनिट होते हैं।

एक नक्षत्र के चार भाग करने पर प्रत्येक भाग (तीन डिग्री बीस मिनिट) चरण कहलाता है। इस प्रकार २७ नक्षत्र के कुल १०८ चरण होते हैं।

राशि, नक्षत्रों से बनी विशेष आकृति है। कुल बारह राशियाँ होती हैं। जो कि सत्ताईस नक्षत्रों से बनती हैं। एक राशि में ९ चरण (तीस डिग्री) होती है।

राशियों का क्रम इस प्रकार है- मेष, वृषभ, मिथुन, कर्क, सिंह, कन्या, तुला, वृश्चिक, धनु, मकर, कुम्भ व मीन।

मेष राशि में अश्विनी नक्षत्र पूरा (चार चरण), भरणी नक्षत्र पूरा (चार चरण) तथा कृतिका का एक चरण (पहला) कुल नौ चरण होते हैं। आगे के नौ चरण से वृषभ राशि बनती है। इसी प्रकार क्रम से राशियाँ होती हैं।)

राशि

भौमो वृश्चिकमेषयोर्वृषतुले शुक्रस्य राशिद्वयं
कन्यायुग्मबुधस्य कर्कसदनं चन्द्रस्य सिंहो रवेः।
जीवो मीनधनुष्पतिर्मृगघटौ मन्दस्य गेहं स्मृतम्
मित्राण्यर्ककुजेन्दुदेवगुरवोऽन्ये चारयस्ते मिथः।।१३।।

वृश्चिक व मेष राशि का स्वामी **मंगल** है। वृष व तुला राशि का स्वामी **शुक्र** है। मिथुन व कन्या राशि का स्वामी **बुध** है। कर्क राशि का स्वामी **चन्द्रमा** है। सिंह राशि का स्वामी **सूर्य** है। धनु व मीन राशि का स्वामी **गुरु** है। मकर व कुम्भ राशि का स्वामी **शनि** है। सूर्य, मंगल, चन्द्र व गुरु ये चार परस्पर **मित्र** हैं। अन्य (बुध, शुक्र, शनि व राहू) उन चारों के शत्रु हैं।

२.१.१० गण-विचार

दैवर्क्षं श्रुतिपुष्यतोऽश्विभमृगौ मैत्रानिलं पौष्णभं
हस्तादित्यमनोनुरन्तकविधेः पूर्वोत्तराभद्रकम्।
रक्षो मूलविशाखिकाग्निपितृभं चित्रा धनिष्ठाद्वयम्
ज्येष्ठाश्लेषमपीह दैत्यमनुजे मृत्युस्तु दैवे कलिः।।१४।।



श्रवण, पुष्य, अश्विनी, मृगशिरा, अनुराधा, स्वाती, रेवती, हस्त व पुनर्वसु ये नौ नक्षत्र **देवगण** है। भरणी, रोहणी, पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा, पूर्वाभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद व आर्द्रा ये नौ नक्षत्र **मनुष्यगण** के हैं। मूल, विशाखा, कृत्तिका, मघा, चित्रा, धनिष्ठा, शतभिषा, ज्येष्ठा व आश्लेषा ये नौ नक्षत्र **राक्षसगण** के हैं।

घर का नक्षत्र राक्षस गण का व गृहस्वामी का नक्षत्र मनुष्य गण अथवा घर का नक्षत्र मनुष्य गण का व गृहस्वामी का नक्षत्र राक्षस गण हो तो गृहस्वामी की मृत्यु करे। घर का नक्षत्र देवगण का और गृहस्वामी का नक्षत्र राक्षस गण का अथवा घर का नक्षत्र राक्षस गण का व गृहस्वामी का नक्षत्र देव गण का हो तो क्लेश करे। इस प्रकार परस्पर विरोधी नक्षत्रों का सर्वथा त्याग करना चाहिए।

(घर का नक्षत्र देवगण व स्वामी का नक्षत्र मनुष्य गण, घर का नक्षत्र मनुष्य गण व स्वामी का नक्षत्र देवगण अथवा दोनों का नक्षत्र देवगण या मनुष्य गण का हो तो श्रेष्ठ होता है।)

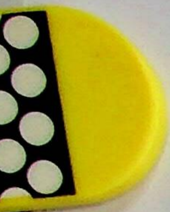
२.१.११ नक्षत्र-विचार

वैरं चोत्तरफाल्गुनीयुगलयोः स्वातीभरण्योर्द्वयोः
रोहिण्युत्तराषाढयोः श्रुतिपुनर्वस्वोर्विरोधस्तथा।
चित्राहस्तभयोश्च पुष्यफणिनोर्ज्येष्ठाविशाखर्क्षयोः
प्रासादे भवनासने च शयने नक्षत्रवैरं त्यजेत्।।१५।।

उत्तराफाल्गुनी व अश्विनी, स्वाती व भरणी, रोहणी व उत्तराषाढा, श्रवण व पुनर्वसु, चित्रा व हस्त, पुष्य व आश्लेषा, ज्येष्ठा व विशाखा इन नक्षत्रों का परस्पर वैर (शत्रुता) है, अतः प्रासाद, घर, आसन व शय्या के लिए उपरोक्त नक्षत्र वैर का त्याग करें।

२.१.१२ वर्ण-विचार

विप्राः कर्कझषालिनो निगदिताः सिंहाजचापा नृपाः
विट् कन्या मकरो वृषोऽथ वृषला युग्मं च कुम्भस्तुला।
वर्णेनोत्तमकामिनीं च भवनं वर्ज्या बुधैर्यत्नतः
श्रेष्ठा द्वादशनन्दरागगुणतो विप्रक्रमाद् राशयः।।१६।।



कर्क, मीन व वृश्चिक राशियाँ ब्राह्मण वर्ण की होती हैं। सिंह, मेष व धनु इन तीन राशियों का क्षत्रिय वर्ण होता है। कन्या, मकर व वृष इन तीन राशियों का वैश्य वर्ण तथा मिथुन, कुम्भ व तुला इन तीन राशियों का शूद्र वर्ण जानें।

जिस प्रकार स्वामी की राशि के वर्ण से स्त्री की राशि का वर्ण उत्तम हो तो उस स्त्री को स्वामी न वरण करे, उसी प्रकार गृहस्वामी की राशि से गृह की राशि का उत्तम वर्ण हो तो वह घर न करें।

ब्राह्मण वर्ण वाला बारह राशियों, क्षत्रिय वर्ण वाला नौ राशि (ब्राह्मण राशि छोड़कर शेष राशि), वैश्य वर्णवाला छः राशि (ब्राह्मण व क्षत्रिय राशि छोड़कर शेष राशि) व शूद्र वर्ण वाला तीन राशि (केवल शूद्र राशि) का घर करें।

२.१.१३ योनि-विचार

वसन्ततिलका

अश्वोऽश्विनीशतभयोर्यमपौष्णहस्ती
छागोऽग्निपुष्य उरगोऽपि विधातृसौम्ये।
मूलार्द्रयोः शुनकः उतुरह्यदित्ये
पूफा मघास्तु मत उन्दुरु एव योनिः।।१७।।

अश्विनी व शतभिषा की **अश्व** योनि, भरणी व रेवती की **हस्ती** (गज), कृतिका व पुष्य की **छाग** (बकरी, बकरा), रोहिणी व मृगशिरा की **सर्प**, मूल व आर्द्रा की **श्वान** (कुत्ता), आश्लेषा व पुनर्वसु की **मार्जर** (बिल्ली), पूर्वाफाल्गुनी व मघा की **मूषक** योनि होती है।

शार्दूलविक्रीडित

गौर्भद्रोत्तरफाल्गुनी च उदिता स्वातौ करे माहिषी
व्याघ्रस्त्वाष्ट्रविशाखयोश्च हरिणो ज्येष्ठानुराधाभयोः।
पूषाढश्रवणे कपिर्निगदितो वैश्वाभिजिन्नाकुलः
पूभायां वसुभे मृगेन्द्र उदितो वैरं त्यजेत् लोकतः।।१८।।

उत्तराभाद्रपद व उत्तराफाल्गुनी की **गो**, स्वाती व हस्त की **महिष** (भैंस), चित्रा व विशाखा की **व्याघ्र** (बाघ), ज्येष्ठा व अनुराधा की **हरिण**, पूर्वाषाढ़ा व श्रवण की **वानर**, उत्तराषाढ़ा व अभिजित की **नकुल** (नेवला), पूर्वाभाद्रपद व धनिष्ठा की **सिंह** योनि होती है। गृह व स्वामी के वैर का त्याग करें (इनके वैर (शत्रुता) का त्याग करें।

गोव्याघ्रं गजसिंहमश्वमहिषं श्वैणं च बभ्रूरगं
वैरं वानरमेषकं च सुमहत् तद्वद् बिडालोन्दुरम्
लोकानां व्यवहारतोऽन्यदपि च ज्ञात्वा प्रयत्नादिदं
दम्पत्योर्नृपभृत्ययोः रिपुः सदा वर्ज्या(र्ज्यः) गुरुशिष्ययोः।।१९।।

गाय व व्याघ्र में, गज व सिंह में, अश्व व महिष में, श्वान व हिरण में, सर्प व नकुल में, वानर व मेष में अत्यधिक शत्रुता होती है। इसी प्रकार बिल्ली व चूहे की शत्रुता होती है। लोक व्यवहार तथा अन्य में भी शत्रुता का ज्ञान कर दम्पति, राजा व सेवक तथा गुरु व शिष्य के बीच हमेशा शत्रुता का त्याग करना चाहिए।

२.१.१४ तिथि, वार, लग्न-विचार

इन्द्रवज्रा

आयर्क्षताराव्ययमंशकं च ह्येकत्र कृत्वा विभजेत् क्रमेण
तिथ्या च वारेण तथैव लग्नैः शेषैस्तु तान्येव भवेयुरङ्कैः।।२०।।

आय, नक्षत्र, तारा, व्यय व अंशक के अंक को जोड़कर पन्द्रह से भाग देने पर जो शेष रहे उसे घर की **तिथि** कहते हैं, सात से भाग देने पर जो शेष रहे उसे **वार** जानें, बारह से भाग देने पर जो शेष रहे उसे **लग्न** जानें।

आयर्क्षव्ययतारकांशमधिपं योज्यं फले क्षेत्रजे
भक्तार्कै लग्नमष्टगुणिते लग्ने शरैर्हृते।
शेषं तावत् तिथिः स्वनामसमकं दत्ते फलं तत्तिथौ
नन्दघ्ने मुनिभाजिते प्रभवति सूर्यादिवारस्फुटः।।२१।।

आय, नक्षत्र, व्यय, तारा, अंश की संख्याओं को क्षेत्रफल में जोड़कर बारह से भाग दें, जो शेष आए उसे **लग्न** जानें।

लग्न की संख्या को आठ से गुणाकर पन्द्रह से भाग दें, शेषफल को **तिथि** जानें।

तिथि को नौ से गुणाकर सात से भाग दें, जो शेष हो उसे रविवार आदि **वार** जानें।

२.१.१५ वर्ग-विचार

उपजाति

दैर्घ्यं पृथुत्वेन च ताडनीयं तयोर्यदैक्यं पुनरुच्छ्रयेण

शेषोऽधिनाथो वसुभाजितेऽस्मिन् समः प्रशस्तो विषमस्तु नैव।

घर की लम्बाई को चौड़ाई के अंक से गुणा करें, जो अंक आए उसमें घर की ऊँचाई का अंक मिलाकर आठ का भाग दें, जो शेष रहे उसे घर का अधिपति वर्ग जानें। इनमें दो, चार, छह, व आठ श्रेष्ठ हैं। एक, तीन, पांच व सात अशुभ हैं।

वसन्ततिलका

वर्गाष्टकस्य पतयो गरुडो बिडालः

सिंहस्तथैव शुनकोरगमूषकेणः(णाः)

मेषः स्युराकचटताः पयसा(शा)श्च वर्गा

यः पञ्चमः स रिपुरेव बुधैः विवर्ज्यः।।२३।।

गरुड़, बिल्ली, सिंह, श्वान, सर्प, मूषक, मृग, मेष ये आठ वर्ग (पूर्वादि दिशा के क्रम से सृष्टि मार्ग से दिशा व विदिशा के स्वामी) हैं। विद्वान गृहस्वामी के वर्ग से घर का पाँचवा वर्ग आए तो शत्रु होने से त्याग दें।

२.१.१६ नाड़ी-विचार

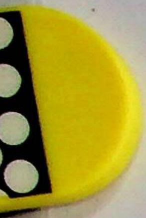
शार्दूलविक्रीडित

अश्विन्यादिकभत्रयं फणिनिभं चक्रं त्रिनाड्युद्भवं

ह्येकस्थां(स्थं) वरकन्ययोश्च यदि भं तन्मृत्युदं चांशतः।

नाडी सेवकमित्रगेहपुरतश्चैक्या शुभा सव्यधा

आयादित्रिकपञ्चसप्तनवभिस्त्वेवं गृहं सौख्यदम्।।२४।।



सर्प की आकृति में तीन नाड़ी का चक्र कर उसमें अश्विनी आदि सत्ताईश नक्षत्रों का वेध करें। सर्प आकृति चक्र में एक नाड़ी में वर व कन्या का नक्षत्र आए तो मृत्यु करे, अतः शुभ नहीं है, अतः उस नक्षत्र के अंश त्याग दें, पर स्वामी व सेवक, मित्र व मित्र, घर व गृहस्वामी, नगर व राजा इनका एक नाड़ी में वेध हो तो शुभ है। पहले भाग में घर के लिए आयादि नौ प्रकार से देखने का कहा है। किन्तु उनमें विशेषकर तीन, पांच या सात या नौ प्रकार से देखकर जो गृह करे तो घर स्वामी सुखी हों।

२.१.१७ गृहविचार

द्रुतविलम्बित

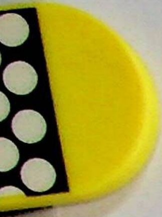
गुणगणलघुदोषसमन्वितं भवनदेवगृहादिकमीष्यते।
जललवेन शिखी बहुतापवान् न शममेति गुणैरधिको यतः।।२५।।

जिस घर में ज्यादा गुण व थोड़ा दोष हो, उस घर में व देवमन्दिर आदि को करने में कोई हानि नहीं है। जिस प्रकार अत्यधिक ऊष्मा वाली अग्नि को पानी की बूँद नहीं बुझा सकती, उसी प्रकार अधिक गुण वाली वस्तु को थोड़े दोष वाले पदार्थ से कोई हानि नहीं होती है।

विश्लेषण (अभियान्त्रिकी के आलोक में परिशीलन):- आयादि गणित के वे सूत्र हैं जिनके आधार पर हम क्षेत्र का निर्धारण करते हैं। इसके आधार पर उचित लम्बाई, चौड़ाई, ऊँचाई, गहराई, मोटाई आदि के माप का निर्धारण करते हैं। आधुनिक अभियान्त्रिक से बहुत आगे जाकर हमारे ऋषि मुनियों ने कार्य व वर्ण के आधार पर माप का निर्धारण किया है।

जैसे रंग के गुण होते हैं, उदाहरण के लिए लाल रंग ऊर्जा, क्रोध आदि को प्रदर्शित करता है या बढ़ाता है।

जैसे स्वाद के गुण होने हैं, उदाहरण के लिए मीठा स्वाद ब्राह्मणोचित गुण विकसित करता है। ठीक इसी प्रकार आकार तथा आकार के मान के गुण होते है। चौकोर या वर्गाकार धर्म, अर्थ, काम व मोक्ष देता है। आयताकार भौतिक समृद्धि प्रदान करता है। इसी का एक अनुपात आधुनिक अर्किटेक्चर में गोल्डन अनुपात के नाम से पढ़ाया जाता है। हमारे ऋषि-मुनियों ने प्रत्येक आकार (वर्गाकार, आयताकार आदि के लिए) कार्य व वर्ण के अनुसार मान का निर्धारण किया। राजवल्लभ ग्रन्थ अध्याय ३ में इन्हीं सूत्र व मान को बताया है, जो आधुनिक अभियान्त्रिकी से बहुत आगे का विषय है।



२.२ नगर, प्राकार, यन्त्र, वापी, कूप तडाग व कुण्ड लक्षण

२.२.१ दुर्गनिर्माण फल

शार्दूलविक्रीडित

वापीकूपतडागदेवभवनान्यारामयागादिकं
तीर्थानामवगाहनं च विधिवत् कन्याप्रदानादिकम्।
सर्वं पुण्यमिदं नृपः स लभते यः कारयेत् पर्वते।।१।।

(सब लोगों के सुख के लिए व शत्रु के भय से बचने के लिए) राजा, दुर्ग की रचना पर्वत के ऊपर करें तो राजाओं को कुआँ, तालाब, बावड़ी, देव मन्दिर, बाग़ व यज्ञ आदि का पुण्य फल प्राप्त होता है। इतना ही नहीं वरन् तीर्थ स्नान, विधि सहित कन्या दान का फल भी राजा को क़िला बनवाने से प्राप्त होता है।

दुर्ग

सिंहो वैरिपराभवं प्रकुरुते तिष्ठन् गिरेर्गह्वरे
दुर्गस्थो नृपतिः प्रभूतकटकं शत्रुं जयेत् सङ्गरे।
कैलासे नगरं शिवेन रचितं गौर्यादिसंरक्षणे
दुर्गं पश्चिमसागरे च हरिणाऽन्येषां किमत्रोच्यते।।२।।

पर्वत की गुफा में रहने वाला सिंह, जिस प्रकार शत्रुओं का नाश करता है, उसी प्रकार क़िले में रहने वाला राजा, शत्रु का नाश करता है।

पार्वती की रक्षा के लिए, महादेव ने, कैलाश पर्वत पर, नगर रचा। उसी प्रकार पश्चिम तट पर, श्रीकृष्ण ने द्वारिका नगरी की रचना की, तो अन्य जनों की क्या बात की जाए (अतः राजा को भी क़िले की रचना अवश्य करना चाहिए)।

भूदुर्गं जलदुर्गमद्रिविषये दुर्गं भवेद् गह्वरे
तेषामुत्तममद्रिमूर्ध्नि रचितं तद्वैरिणा दुर्गमम्।
अन्नाद्यैः घृततोयतैललवणैः काष्ठैस्तृणाद्यैस्तथा
यन्त्रोपस्करबाणशस्त्रसुभटैः सम्पूरयेद् भूपतिः।।३।।



भूमि दुर्ग, जल दुर्ग, गिरि (पर्वत के शिखर पर स्थित) दुर्ग, गह्वर (पर्वत की गुफा में) दुर्ग। चारों दुर्ग में गिरि दुर्ग श्रेष्ठ है क्योंकि इसमें शत्रु सरलता से प्रवेश नहीं कर सकता।

(राजा) दुर्ग में अन्न, घी, पानी, तेल, लवण, लकड़ी, घास व संग्राम की सामग्री, यन्त्र, उपस्कर, बाण, शस्त्र एवं उत्तम योद्धा इत्यादि पूर्ण रीति से रखें।

२.२.२ नगर आकार

माहेन्द्रं चतुरस्रमायतपुरं तत्सर्वतोभद्रकं
वृत्तं सिंहविलोकनं च सुवृत्तायतं तथा वारुणम्।
नन्दाक्षं च विमुक्तकोणमथ नन्द्यावर्तं स्वस्त्याकृतिः
प्रोक्तं तद् यववज्जयन्तमपि तद्दिव्यं गिरेर्मस्तके।।४।।

चतुस्र (वर्गाकार) दुर्ग (नगर) हो तो माहेन्द्र, आयताकार हो तो सर्वतोभद्र, ग़ोल हो तो सिंहविलोकन, दीर्घ वृत्ताकार तो वारुण, कोण रहित हो तो नन्दाक्ष, स्वस्तिक के आकार का दुर्ग हो तो नन्द्यावर्त, यव की आकृति का हो तो जयन्त, पर्वत शिखर पर हो तो दिव्य नगर कहलाता है।

पुष्पं चाष्टदलोपमं च पुरुषाकारं पुरं पौरुषं
स्नाहं कुक्षिषु भूधरस्य कथितं दण्डाभिधं दैर्घ्यकम्।
शक्रं प्राक् सरितः परत्र कमलं याम्ये नदी धार्मिकम्
द्वाभ्यां चैव महाजयं च धनदाशायां नदी सौम्याकम्।।५।।

अष्टदल पुष्प के समान हो तो पुष्पपुर, पुरुष के आकार का हो तो पौरुष, पर्वत की कोख में हो तो स्नाह, लम्बा हो तो दण्ड नगर, जिसके पूर्व दिशा में नदी बहती हो तो शक्र, पश्चिम में नदी हो तो कमल पुर, दक्षिण दिशा में नदी बहती हो तो धार्मिक पुर, दोनों ओर नदी हो तो महाजय तथा जिसके उत्तर में नदी बहती हो तो सौम्य पुर कहलाता है।

दुर्गैकेन युतं श्रियाख्यनगरं द्वाभ्यां रिपुघ्नं परं
त्वष्टास्नं कथयन्ति स्वस्तिकमिति प्रोक्ता गुणा विंशतिः।।
भूपानां सुखदा यथोऽर्थफलदाः कीर्तिप्रतापोद्भवाः
लोकानां च निवासतो विरचिता प्राक् शम्भूनेमें गुणाः।।६।।



जिस नगर में एक किला हो तो श्रीनगर, दो हों तो रिपुघ्न कहलाता है। जिस नगर में आठ कोण हो तो वह स्वस्तिक नगर कहलाता है।

इस प्रकार से महादेव ने नगर के बीस भेद कहे हैं। लोगों के निवास के लिए, इन नगर को बनाए तो नगर के राजा को सुख, यश व धन की प्राप्ति तथा कीर्ति व प्रताप की वृद्धि होती है। यह दुर्ग रचना प्राचीन समय में शम्भु के द्वारा कही गई है।

दुर्ग के आकार एवं गुण के अनुसार नाम	
दुर्ग (नगर)	नाम
चतुस्र (वर्गाकार) दुर्ग (नगर)	माहेन्द्र
आयताकार	सर्वतोभद्र
ग़ोल	सिंहविलोकन
दीर्घ वृत्ताकार	वारुण
कोण रहित	नन्दाक्ष
स्वस्तिक के आकार का	नन्द्यावर्त
यव की आकृति का	जयन्त
पर्वत शिखर पर हो तो	दिव्य नगर
अष्टदल पुष्प के समान	पुष्पपुर
पुरुष के आकार का	पौरुष
पर्वत की कोख में	स्नाह
लम्बा हो तो	दण्ड नगर
जिसके पूर्व दिशा में नदी बहती हो	शक्र
पश्चिम में नदी हो	कमल पुर
दक्षिण दिशा में नदी बहती हो	धार्मिक पुर
दोनों ओर नदी हो	महाजय
उत्तर में नदी बहती हो	सौम्य पुर
जिस नगर में एक किला हो तो	श्रीनगर
जिस नगर में दो किले हों	रिपुघ्न
जिस नगर में आठ कोण हो	स्वस्तिक नगर

अशुभ आकार व परिणाम

वह्नेर्भीतिकरं त्रिकोणनगरं षट्कोणकं क्लेशदं

वज्रे वज्रभयं च शाकटपुरं रोगं त्रिशूले कलिः।

प्रोक्तं तस्करभीतये द्विशकटं कर्णाधिकेऽर्थक्षयो

दोषाः सप्त भयावहाः प्रकटिता ये विश्वकर्मोदिताः।।७।।

यदि नगर त्रिकोण हो तो अग्निं का भय, षट्कोण हो तो क्लेश, वज्र की आकृति के समान हो तो वज्र (बिजली का भय), गाड़ी के आकार का हो तो रोग का भय, त्रिशूलाकार में युद्ध का भय, दो गाड़ियों के आकार का हो तो चोर का भय होता है।

जिस नगर का कोण अधिक हो तो उसमें धन का क्षय होता है। यह सात दोष विश्वकर्मा ने कहे हैं।

नगर

वक्ष्येऽथो विविधं पुरं मुनिमतं मध्योत्तमं कन्यसं
तेषां हस्तसहस्रमन्तिमपुरं मध्यं ततः सार्द्धकम्।
श्रेष्ठं युग्मसहस्रमेषु चरमं भागाष्टकेनान्वितम्
मध्यं द्वादशभागतः शशिकलं ज्येष्ठं विदध्यात् सुधीः।।८।।

इस प्रकार मुनियों ने नाना प्रकार के नगर कहें हैं। इस विधि से तीन प्रकार के नगर हैं, उनमें कनिष्ठ (छोटा) एक हज़ार हस्त का, मध्यम पन्द्रह सौ हस्त का तथा उत्तम दो हजार हस्त होता है।

कनिष्ठ नगर एक हज़ार हस्त का कहा है, उससे अष्टमांश अधिक (एक सौ पच्चीस हस्त अधिक अर्थात् ग्यारह सौ पच्चीस हस्त तक) बनवाना। मध्यम नगर बारह अंश अधिक (सोलह सौ पच्चीस हस्त तक) का बनवाए। उसी प्रकार उत्तम नगर सोलह अंश अधिक (इक्कीस सौ पच्चीस हस्त तक) बनवाना।

मार्गाः सप्तदशैव चादिमपुरे हीनं चतुर्भिः परम्
प्रोक्तं कन्यसमेव मार्गनवभिर्दैर्घ्ये तथा विस्तरे।
ग्रामश्चैव पुरार्द्धतो हि तदनु ग्रामार्द्धतः खेटकं
खेटार्द्धेन तु कूटमेव विबुधैः प्रोक्तं ततः खर्वटम्।।९।।

उत्तम प्रकार के नगर में सत्रह, मध्यम प्रकार के नगर में तेरह तथा कनिष्ठ प्रकार के नगर में नौ मार्ग बनवाना।



नगर की लम्बाई में जितने मार्ग में हों, उतने ही मार्ग चौड़ाई में करना। विद्वान, नगर के आधे को ग्राम, ग्राम के आधे को खेटक, खेटक के आधे कूट, कूट के आधे को खर्वट कहते हैं।

हस्तानां च युगाष्टषोडशसहस्रं भूपतीनां पुरं
तन्मध्ये दशधा वदन्ति मुनयो वृद्ध्या सहस्रेण तत्।
आयामे च सपादसार्द्धवसुतो भागः प्रशस्तोऽधिक-
स्त्वैकैकं च चतुर्विधं निगदितं कार्यं समं कर्णयोः।।१०।।

राजा के रहने का नगर, चार हजार हस्त अथवा आठ हजार अथवा सोलह हजार हस्त का बनवाना। एक-एक हजार हस्त के अन्तर से दस प्रकार कहे हैं। ग्राम इस प्रकार पांच हजार हस्त, छह हजार हस्त, सात हजार, आठ हजार, नौ हजार, दस हजार, ग्यारह हजार, बारह हजार, तेरह हजार, चौदह हजार, पन्द्रह हजार तथा सोलह हजार हस्त का नगर कहा है।

इनमें प्रत्येक के चार प्रकार होते हैं। लम्बाई व चौड़ाई बराबर हो। लम्बाई, चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक हो। लम्बाई, चौड़ाई से डेढ़ गुना हो। लम्बाई, चौड़ाई से अष्टमांश अधिक हो। सभी नगरों में कर्ण समान होना चाहिए।

उपजाति

षट्त्रिंशतः षट्क्रमतो विवृद्ध्या दैवे पुरे चत्वरके क्रमेण।
यदृच्छया मानमुशन्ति केचित् प्राकारकोटस्य च भित्तिकायाः।।११।।

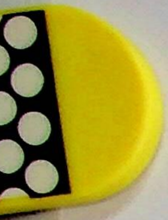
देवमन्दिर, नगर व चौराहों में छत्तीस हस्त चौड़ाई हो तो बयालीस हस्त लम्बाई रखना। चौड़ाई, बहत्तर हस्त हो तो लम्बाई बारह हस्त अधिक अर्थात चौरासी हस्त रखना। इसी प्रकार जितनी चौड़ाई हो, उसमें छत्तीस हस्त पर छह-छह हस्त लम्बाई अधिक रखना। दुर्ग, कोट व भित्ति का मान विवेकानुसार रखना।

२.२.३ देवता-मुख

इन्द्रवज्रा

पूर्वापरास्याः पुरसम्मुखाश्च देवाः शुभा नोत्तरदक्षिणास्याः।
भङ्गं पुरस्यापि पराङ्मुखास्ते कुर्वन्ति धातार्कजनार्दनेशाः।।१२।।

देवता का मुख पूर्व व पश्चिम दिशा वाला तथा नगर के सामने हो तो शुभ है। परन्तु देव का मुख, उत्तर व दक्षिण नहीं होना चाहिए।



ब्रह्मा, सूर्य, विष्णु व शंकर इन चार देवताओं की पीठ, नगर की ओर हो तो नगर का भंग (नष्ट) होता है।

शार्दूलविक्रीडित

ब्रह्माविष्णुशिवेन्द्रभास्करग्रहाः पूर्वापरास्याः शुभाः
प्रोक्तौ सर्वदिशामुखे शिवजिनौ विष्णुर्विधाता तथा।
चामुण्डा ग्रहमातरो धनपतिर्द्वैमातुरो भैरवो
देवा दक्षिणदिङ्मुखाः कपिवरो नैर्ऋत्यवक्त्रो भवेत्।।१३।।

ब्रह्मा, विष्णु, शिव, इन्द्र, सूर्य व ग्रह इन देवताओं का मुख, पूर्व व पश्चिम दिशा वाला हो तो शुभ है। उनमें भी शिव, तीर्थंकर, विष्णु व ब्रह्मा का मुख (अनेक मुखी प्रतिमा में) चारों दिशाओं में शुभ है।

चामुण्डा, षोडशमातृकाओं, कुबेर, गणपति व भैरव का मुख दक्षिण दिशा में शुभ है तथा हनुमान का मुख नैऋत्य कोण में करना।

२.२.४ मार्ग व परकोटा

मार्गा सप्तदशाङ्कपञ्चशिखिनो युग्मं पुरात् खर्वटम्
मार्गा षोडशसूर्यविंशतिकराः कार्यास्त्रिधा विस्तरे।
प्राकारोदय ऋक्षहस्तमपितो द्वाभ्यां विहीनाधिको
व्यासाधन तद्दूर्ध्वतश्च कपिशीर्षाण्यष्टमांशान्तरम्।।१४।।

पुर में सत्रह, ग्राम में नौ, खेट में पांच, कूट में तीन तथा खर्वट में दो मार्ग रखना। मार्ग की चौड़ाई इस प्रकार करना, बीस हस्त का ज्येष्ठ मार्ग, सोलह का मध्यम तथा बारह हस्त का कनिष्ठ मार्ग जानना।

दुर्ग की प्राकार की ऊँचाई सत्ताईस हस्त, उससे दो हस्त कम या अधिक अर्थात पच्चीस या उन्तीस हस्त करना।

दुर्ग की चौड़ाई का (विस्तार का) आधे भाग में कांगरा बनाना। उन कांगरा अथवा कपिशीर्ष के बीच की दूरी आठ अंगुल रखना।

प्राकारेऽपि च कोष्ठका दशकराः सूर्येन्द्रहस्तास्तथा
प्रोक्तास्तेन समैव कोणसहिता विद्याधरी मध्यगा
तस्यां वाथ सुवृत्तके च विविधं युद्धासनं कारयेत्
प्राकारोदयतो द्विधा च परिखाविस्तार उक्तो बुधैः।।१५।।

प्राकार अथवा दुर्ग में कोष्ठ करने की विधि-कनिष्ठ की चौड़ाई दस हस्त, मध्यम की बारह तथा ज्येष्ठ की चौड़ाई चौदह हस्त रखना। दो कोष्ठों के बीच, एक चौरस विद्याधरी (बजीरी) कोष्ठ के बराबर बनाना। विद्याधरी व कोष्ठ में योद्धाओं के बैठने के लिए आसन करना। प्राकार की जितनी ऊँचाई हो, उससे दोगुना विस्तार की खाई बनवाना, ऐसा पंडितों ने कहा है।

उपजाति
विद्याधरी कोष्ठकयोश्च मध्ये बाहुप्रमाणं शररामहस्ताः।
पञ्चाधिकं पञ्चकरेण हीनमिति त्रिधा वास्तुमतोदितं च।।१६।।

विद्याधरी व कोष्ठ के बीच में पैंतीस हस्त का अन्तर रखना। पांच-पांच हस्त के अन्तर से तीन प्रकार कहे हैं। (पैंतीस, तीस या चालीस हस्त का अन्तर रखना।)

इन्द्रवज्रा
दूर्गोदयं नन्दकरप्रमाणं तिथ्या समं सप्तदशैव केचित्।
एकोनविंशत् पृथुलं त्रयाणां दिक्पालसूर्याष्टकरं वदन्ति।।१७।।

किले की ऊँचाई नौ हस्त रखना। परन्तु कई आचार्य (किले की ऊँचाई का) कनिष्ठ पक्ष पन्द्रह हस्त वाला, मध्यम सत्रह हस्त वाला तथा ज्येष्ठ उन्नीस हस्त की ऊँचाई वाला कहते हैं। इन तीन प्रकार के दुर्ग की चौड़ाई, मध्यम की दस हस्त, ज्येष्ठ की बारह हस्त तथा कनिष्ठ की आठ हस्त होती है।

२.२.५ नगर बसाहट

शार्दूलविक्रीडित
ताम्बूलं फलदन्तगन्धकुसुमं मुक्तादिकं यद् भवेत्
राजद्वारसुराग्रतो हि सुधिया कार्यं पुरे सर्वतः।
प्राग् विप्राश्च नृपा हि दक्षिणदिशि स्युः शूद्रकाः सौम्यतः
कर्तव्या पुरमध्यतोऽपि वणिजो वैश्या विचित्रैर्गृहैः।।१८।।



नगर में पान की, फल की, हाथीदांत की, सुगन्धित पदार्थों की, पुष्पों की, मोती आदि रत्नों की दुकानें, बुद्धिमान मनुष्य, राजद्वार तथा देवमन्दिर के सामने करें।

नगर की पूर्व दिशा में ब्राह्मण, दक्षिण में क्षत्रिय, उत्तर दिशा में शूद्र तथा वैश्यों व अन्य व्यापारी लोगों के लिए नगर के मध्य में चित्रित घर निवास बनाए।

ईशे रङ्‌गकराः कुविन्दरजकाः वह्नौ च तज्जीविनः
प्रोक्ता अन्त्यजचर्मकारबरडाः स्युः शौण्डिका राक्षसे।
पण्यस्त्री निर्ऋतौ च मारुतयुते कोणे न्यसेल्लुब्धकान्
वाणीकूपतडागकुण्डमखिलं तोयं तथा वारुणे।।१९।।

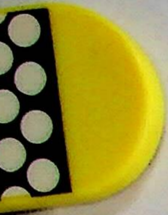
नगर के ईशान कोण में रंगरेज, जुलाहे, धोबियों तथा अग्निकोण में अग्नि से आजीविका चलाने वाले, सुनार, लोहार, कलई करने वालों को बसाए। अन्त्यज, चर्मकार आदि लोगों को दक्षिण दिशा में बसाए। नैर्ऋत्य कोण में वैश्याओं को तथा वायव्य कोण में पारधी लोगों (व्याध) को बसाए। नगर की पश्चिम दिशा में कुआँ, तालाब, बाबड़ी, कुण्ड इत्यादि जलाशय बनवाए।

दरवाजा

सिंहद्वारचतुष्टयं च खेटकीद्वाराणि चाष्टौ तथा
कर्तव्यानि दृढार्गलानि रुचिरैः कापाटकैः सुदृढैः।
कीर्तिस्तम्भनृपालयामरगृहैर्हट्टैः सुधानिर्मितैः
हर्म्यैश्चोपवनैर्जलाश्रययुतैः कार्यं पुरं शोभनम्।।२०।।

नगर में चार सिंहद्वार तथा आठ खटकी (पार्श्व) द्वार करें। इन द्वारों में मजबूत अर्गला, जिसे मंगल भी कहते हैं, करें। मजबूत व शोभायमान कपाट बनवाए।

राजमन्दिर के आगे एक कीर्ति स्तम्भ करें। राजघर, देवप्रासाद, हाट व हवेलियों इन सबको चूने से उज्ज्वल करें। नगर के पास बाग तथा बाग में जलाशय बनवाए। नगर में तथा राजमहल के पास भी जलाशय बनवाए।



२.२.६ यन्त्र

उपजाति

यन्त्राः पुराणापमथ रक्षणा सङ्ग्रामवह्न्यम्बुमरुतः प्रसिद्धाः।
विनिर्मितास्ते जयदाः नृपाणां भवन्ति पूज्याः सुरया च मांसैः।।२१।।

नगर की रक्षा के लिए, सङ्ग्राम में उपयोग के लिए यह देखे कि जल, अग्नि व वायु से चलने वाले इन यन्त्रों को, मांस व सुरा से बलि अर्पित करें, जिससे राजा की जय हो।

शार्दूलविक्रीडित

हस्ता अष्टकभैरवो नवकरश्चान्द्रो दशार्को भवेत्
रुद्रैर्भीमगजोऽपि भास्करकरैः युग्मं तु विश्वैः शिखी।
प्रोक्तोऽसौ यमदण्ड एव मनुभिस्तिथ्या महाभैरवो
ह्यष्टौ शङ्करनिर्मिताश्च समरे देवासुरे भैरवाः।।२२।।

देवताओं व असुरों के संग्राम के समय, महादेव ने, आठ प्रकार के भैरव यन्त्रों की रचना की। इनके जिस यन्त्र की लम्बाई आठ हस्त हो वह भैरव, नौ हस्त हो वह चन्द्र, दस हस्त लम्बा हो वह अर्क, ग्यारह हस्त लम्बा भीमगज, बारह हस्त का युग्म, तेरह हस्त का शिखी, चौदह हस्त का यमदण्ड तथा पन्द्रह हस्त लम्बा यन्त्र महाभैरव कहलाता है।

यन्त्रे चाष्टकरेऽष्टहस्तफणिनी सूर्याङ्गुला विस्तरे
स्तम्भो मर्कटिका च पञ्जरमतः षट्त्रित्रिहस्ताः क्रमात्।
यष्ट्या पृष्ठविभागकोऽपि रदनैस्तुल्योऽष्टमात्राङ्गुलैः
प्रोक्ताः कुण्डलवेल्लिणी बहिरतो मध्यादशीत्यङ्गुलैः।।२३।।

आठ हस्त के यन्त्र की फणिनी (गोफण) आठ हस्त की करना। उस फणिनी का विंस्तार बारह अंगुल तथा दो स्तम्भ के बीच छह हस्त की चौड़ाई रखना। तीन हस्त की मांकड़ी (मर्कटिका) तथा तीन हस्त का पंजर रखना।

यन्त्र के पिछला भाग में बत्तीस अंगुल की यष्टी करना। यष्टी की गोलाई आठ अंगुल रखना। उस यन्त्र की जो कुण्डल वेणी रखने में आए वह अस्सी अंगुल बाहर निकलती हुई रखना।



इन्द्रवज्रा

यष्ट्यां दृढां मर्कटिकां विदध्याल्लौहस्य कीलेन च चर्मणापि।

यन्त्रं प्रकुर्यात् दृढकाष्ठकस्य तन्यात् तथा ज्योतिकया समेतम्।।२४।।

यन्त्र की यष्टि में लोह की कील अथवा चमड़े से मांकड़ी मजबूत करना (तानना) ज्योतिका सहित मजबूत लकड़ी का यन्त्र बनवाना।

उपजाति

कलाङ्गुलैः पञ्जरकस्य दैर्घ्यं केषां मते हस्तमितं च यन्त्रे।

या ढिंकुली वह्निजलानिलाख्यास्ते लक्ष्यतो ज्ञैः परिकल्पनीयाः।।२५।।

कई आचार्यो का मत यह है कि एक हस्त का यन्त्र करे और उस यन्त्र में सोलह (पन्द्रह) अंगुल का पंजर करना। अभियन्त्र, जलयन्त्र और वायु यन्त्र जो है उस यन्त्र में ढिंकुली (सलाई) सहित करना। पंडितो को परिकल्पना अनुसार रचना करना।

२.२.७ जलाशय

उपेन्द्रवज्रा

नीराश्रयं पुण्यवता विधेयं मध्ये पुरस्यापि तथैव बाह्ये।

वाप्यश्चतस्रोऽपि दशैव कूपाश्चत्वारि कुण्डानि च षट् तडागाः।।२६।।

नगर के मध्य में और नगर के बाहरी भाग में पुण्यवान पुरुष जलाशय करे। चार प्रकार की बाबड़ी, दस प्रकार के कुआँ, चार प्रकार के कुण्ड तथा छह प्रकार के तालाब करना।

शार्दूलविक्रीडित

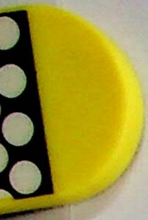
कूपाः श्रीमुखवैजयौ च तदनु प्रान्तस्तथा दुन्दुभिः

तस्मादेव मनोहरश्च परतः प्रोक्तास्तु चूडामणिः।

दिग्भद्रो जयनन्दशङ्करमतो वेदादिहस्तैर्मिता

विश्वान्तैः क्रमवर्द्धितैश्च कथिता वेदादधः कूपिका।।२७।।

चार हस्त से तेरह हस्त चौड़ाई वाला कुआँ करना। चार हस्त का श्रीमुख, पांच हस्त का वैजय, छह का प्रान्त, सात हस्त का दुन्दुभि, आठ हस्त का मनोहर, नौ हस्त का चूड़ामणि, दस हस्त का दिग्भद्र, ग्यारह हस्त चौड़ाई का जय, बारह हस्त का नन्द तथा तेरह हस्त चौड़ाई का कुआँ शंकर कहलाता है।चार हस्त से छोटा कुआँ, कूपिका (कुई) कहलाता है।



कुए की चौड़ाई अनुसार नाम	
मान (चौड़ाई)	नाम
चार हस्त	श्रीमुख
पांच हस्त	वैजय
छह	प्रान्त
सात हस्त	दुन्दुभि
आठ हस्त	मनोहर
नौ हस्त	चूड़ामणि
दस हस्त	दिग्भद्र
ग्यारह हस्त	जय,
बारह हस्त	नन्द
तेरह हस्त	शंकर
चार हस्त से छोटा कुआँ, कूपिका (कुई) कहलाता है।	

उपजाति

वापी च नन्दैकमुखी त्रिकूटा षट्कूटिका युग्ममुखा च भद्रा।

जया त्रिवक्त्रा नवकूटयुक्ता त्वर्कैस्तु कूटैर्विजया मता सा।।२८।।

जिस बावड़ी में एक मुख हो उसमें तीन कूट हो उसका नाम नन्दा, दो मुख व छह कूट हो वह भद्रा, तीन मुख व नौ कूट हो तो जया, चार मुख व बारह कूट वाली बावड़ी विजया कहलाती है।

बावड़ी के नाम		
मुख	कूट	नाम
एक मुख	तीन कूट	नन्दा
दो मुख	छह कूट	भद्रा
तीन मुख	नौ कूट	जया
चार मुख	बारह कूट	विजया

सरोऽर्द्धचन्द्रं तु महासरश्च वृत्तं चतुष्कोणकमेव भद्रम्।
भद्रैः सुभद्रं परिघैकयुग्मं बकस्थलैकद्वयमेव यस्मिन्।।२९।।

जो तालाब अर्धचन्द्राकार हो वह अर्धचन्द्र तथा चारों ओर से बंधा हो तो महासर, गोल हो तो वृत्त, चार कोण वाला चतुःकोण, एक भद्र वाला भद्र, चारों ओर भद्र वाला सुभद्र कहलाता है। इन तालाबों में एक या दो परिधि करना। तालाबों के बीच में एक या दो स्थानों पर बक स्थल (बगुला आदि पक्षियों के बैठने का स्थान) रखना।

तालाब के गुण एवं नाम	
तालाब	**नाम**
अर्धचन्द्राकार	अर्धचन्द्र
चारों ओर से बंधा	महासर
जो कुण्ड गोल	वृत्त
चार कोण वाला	चतुःकोण
एक भद्र वाला	भद्र
जो कुण्ड चौकोर	भद्र
चारों ओर भद्र वाला	सुभद्र
जो भद्र सहित हो	सुभद्र
जो प्रतिभद्र सहित हो	नन्द
जिस कुण्ड में भिट्ट हो	परिधि

ज्येष्ठं मितं दण्डसहस्त्रकैस्तु मध्यं तदर्धेन ततः कनिष्ठम्।
ज्येष्ठं करैः पञ्चशतानि दैर्घ्ये तदर्धमध्यं तु पुनः कनिष्ठम्।।३०।।

ज्येष्ठ, मध्य एवं कनिष्ठ तालाब के मान		
ज्येष्ठ	**मध्य**	**कनिष्ठ**
एक हजार दण्ड	पाँच सौ दण्ड	ढाई सौ दण्ड
पाँच सौ हस्त	ढाई सौ हस्त चौड़ा	सवा सौ हस्त चौड़ा



एक हजार दण्ड का तालाब ज्येष्ठ, पाँच सौ दण्ड का तालाब मध्य तथा ढाई सौ दण्ड का तालाब कनिष्ठ कहलाता है। इसी प्रकार पाँच सौ हस्त (लम्बा) चौड़ा ज्येष्ठ, ढाई सौ हस्त चौड़ा (लम्बा) मध्य तथा सवा सौ हस्त चौड़ा (लम्बा) कनिष्ठ कहलाता है।

भद्राख्यकुण्डं चतुरस्रकं तु सुभद्रकं भद्रयुतं द्वितीयम्।

नन्दाख्यकं स्यात् प्रतिभद्रयुक्तं मध्ये सभिट्टं परिघं चतुर्थम्।।३१।।

जो कुण्ड चतुस्र (चौकोर) वह कुण्ड का नाम भद्र, जो भद्र सहित हो वह सुभद्र तथा जो प्रतिभद्र सहित हो वह नन्द तथा जिस कुण्ड में भिट्ट हो वह परिधि कहलाता है।

कराष्टतो हस्तशतं प्रमाणं द्वारैश्चतुर्भिः सहितानि कुर्यात्।

मध्ये गवाक्षश्च दिशो विभागे कोणे चतुष्कास्त्वपि पट्टशालाः।।३२।।

आठ हस्त से सौ हस्त तक कुण्ड बनवाना तथा उसमें चारों ओर से उतरने के लिए द्वार करना। दिशाओं में मध्य में गवाक्ष बनवाना। कुण्ड में कोणों में चौकियाँ व पट्टशाला बनवाना।

शार्दूलविक्रीडित

गङ्गाद्या रवयो हरेश्च दशकं रुद्रा दशैकाधिका

दुर्गा भैरव मातृका गणपतिर्वह्नैस्त्रिकं चण्डिका।

दुर्वासा मुनिनारदस्तु सकला द्वारावतीलीलका

लोकाः पञ्च पितामहादिविबुधाः स्युर्मध्यभिट्टे सदा।।३३।।

कुण्ड के भिट्ट में गङ्गा आदि नदी, सूर्य की बारह, विष्णु के दस अवतार, ग्यारह रुद्र, दुर्गा, भैरव, सोलह मातृका, गणपति, तीन अग्नि, चण्डिका, दुर्वासा मुनि, नारद, द्वारिका की लीला, पांच लोक एवं ब्रह्मा आदि देवगण की प्रतिमा की स्थापना करें।

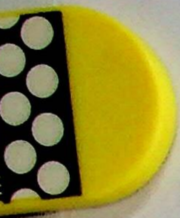
तस्योर्द्ध्वतत्र श्रीधरमाडमस्य सन्दर्शनात् पूर्णफलं च काश्याः।

स्नानाच्च गङ्गाप्लवनस्य पुण्यं कृतं भवेच्चेद् विधिवद् विधिज्ञैः।।३४।।

कुण्ड के ऊपर श्रीधर संज्ञक मांड का अङ्कन करना। यह शास्त्र प्रमाण में हो तो उनकी मूर्ति का दर्शन करने से काशी यात्रा का फल तथा स्नान करने पर गंगा में स्नान करने का फल मिलता है।

विधारितं जीवनमेव येन तद् गोपदैकेन समं पृथिव्याम्।

स षष्टिसंख्यं च सहस्रवर्षं स्वर्लोकसौख्यान्यखिलानि भुङ्क्ते।।३५।।



जो जल प्राणियों का प्राण बचाता है उसके जल के स्थान पर गाय के पग (पैर) जितनी भूमि भी कोई मनुष्य बनाता है, उसे साठ हजार वर्ष तक स्वर्ग लोक का सब सुख मिलता है।

२.२.८ राजमहल

शार्दूलविक्रीडित

ग्रामे वाथ पुरे नरेन्द्रभवनं तत्षोडशांशं भवेत्

मध्यात् पश्चिमदिक्समाश्रितमिदं दुर्गे भवेद् भूवशात्।

द्वाराद् दक्षिणवामतश्च पुरतः कार्यास्त्रयश्चत्वराः।

सर्वं वास्तुगृहादिवासरचना भूपेच्छया कारयेत्।।३६।।

ग्राम या नगर के प्रमाण (माप) के सोलहवें अंश में उस नगर के राजा का घर या दरबार बनवाए। ग्राम या नगर के मध्य भाग से पश्चिम दिशा में करें। महल के सामने दाएँ व बाएँ तीन ओर चौराहा बनवाए। शेष भाग में राजा की इच्छानुसार (विवेकानुसार) सब लोगों के घरों की रचना करना।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):-

राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय ४ दुर्ग, नगर, प्राकार, यन्त्र, जलस्थान आदि बनाने के फल को कहा है। इनका विश्लेषण हम क्रमशः करेंगे।

सबसे पहले इस अध्याय में दुर्ग के प्रकार तथा उनके निर्माण के महत्व को बताया है। दुर्ग या किस स्थान को सुरक्षित करने के लिए किस प्रकार से निर्माण करना चाहिए इसके नियम बताए हैं। उदाहरण के लिए हमें बहुत सुरक्षित स्थान जैसे किसी महत्वपूर्ण व्यक्ति (प्रधान मंत्री, राष्ट्रपति, मुख्य मन्त्री) का निवास स्थान, व कार्यालय अथवा महत्वपूर्ण स्थान मंदिर या मॉल आदि, संसद, विधान सभा आदि-आदि का निर्माण किस प्रकार करना चाहिए, यह बताया है।

उसमें प्रवेश किस प्रकार का हो, कैसे सुरक्षा चौकी हो, उसका आकार कैसा हो, उसमें आपातकाल के लिए किस प्रकार के भोजन आदि सामान का संग्रह हो यह बताया है।

आधुनिक समय में जबकि आतंक आदि का गतिविधि पूरे विश्व में कुछ बढ़ती हुई सी दिखाई दे रही है, दुर्ग निर्माण के सिद्धान्तों का उपयोग कर महत्वपूर्ण स्थानों को सुरक्षित रखा जा सकता है।



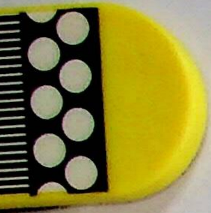
इसके पश्चात् नगर निर्माण के सिद्धान्तों को बताया है। नगर के लिए कौन-कौन से आकार अशुभ होते हैं, इन्हें जानकार उन आकारों का प्रयोग नगर निर्माण में निषिद्ध किया जा सकता है। आधुनिक समय में हम देखते हैं तो पाते हैं कि नगर या नगर का कोई भाग जिसका आकार या बसाहट शुभ नहीं है, अनियमित (इर्रेग्लूर) आकार है, वहाँ निवास करने वाले व्यक्ति असामाजिक गतिविधियों में लिप्त पाए जाते हैं। इसके विपरीत जिन नगरों का निर्माण वास्तु के सिद्धान्तों के साथ किया जाता है, वे नगर समृद्धि को प्राप्त करते हैं।

आधुनिक समय में इन्दौर का उदाहरण देना उचित होगा। इन्दौर के आसपास लगभग २००-३०० किलोमीटर तक इसके समकक्ष कोई नगर विकसित नहीं हो पाया या यूँ कहें कि इन्दौर अपने आसपास के क्षेत्रों की तुलना में सर्वाधिक विकसित नगर बना। इसकी नगर संरचना का जब हम अध्ययन करते हैं तो पाते हैं कि इन्दौर नगर के निर्माण या टाऊन-प्लानिंग का इसमें सर्वाधिक हाथ है। इसके मुख्य मार्ग (महात्मा गाँधी मार्ग व जवाहर मार्ग) पूर्व-पश्चिम हैं या अन्य मार्ग (जेलरोड़, रविन्द्रनाथ टैगोर मार्ग, रेसकोर्स रोड़ आदि) उत्तर-दक्षिण हैं।

इसी प्रकार नगर की बसाहट उदाहरण के लिए पश्चिमी भाग में व्यापारिक क्षेत्र आदि का होना, बाजार की संरचना उदाहरण के लिए कपड़ा मार्केट, सराफा, बर्तन बाजार, मारोठिया बाजार, बोहरा बाजार आदि संरचना वास्तु के सिद्धान्तों के अनुरुप है। बाजार के सम्बन्ध जैसा वर्णन मयमत ग्रन्थ में किया है, ठीक वैसे ही बाजार राजबाड़ा के आसपास के क्षेत्र में निर्मित हैं।

इसी अध्याय में जलाशय निर्माण के लिए उचित आकार तथा महत्व पर प्रकाश डाला है। बड़े-बड़े जलाशय से लेकर छोटे कुएँ तक नगर में बनवाना चाहिए ताकि नगर में पानी की किसी भी प्रकार की कमी न हो। पहले के समय में इन्दौर नगर में यशवन्त सागर तालाब, बिलावली तालाब, सिरपुर आदि तालाब थे, इसके अलावा अन्य कई स्थानों पर कुण्ड थे उदाहरण के लिए खातीवाला टैन्क, गौरा कुण्ड, लाल बाग के पास कुण्ड आदि थे, अनेक बड़े कुएँ तथा छोटे-छोटे कुएँ थे। पानी की कोई कमी नहीं थी। कहा जाता था-पग-पग रोटी, डग-डग नीर (पानी)। इन्हीं सब कारणों से उत्तरप्रदेश आदि अनेक प्रान्तों से लोग आकर यहाँ बस गए।

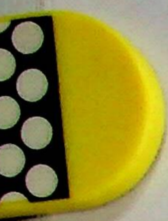
इस प्रकार से वास्तुशास्त्र के सिद्धान्तों के आधार पर नगर का निर्धारण करने पर सभी नगरवासी सुखी होते हैं।





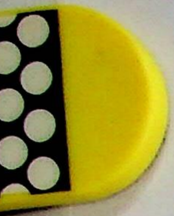
अध्याय-३

राजगृह, एकशालद्विशाल गृह लक्षण



अध्याय-३

राजगृह, एकशालद्विशाल गृह लक्षण





३.१ राजगृहनिवेशादिलक्षण

३.१.१ विविधराजगृहमान

उपजाति

अथो नृपाणां भवनानि वक्ष्ये त्वेकातपत्रावनिपालकस्य।
शतं च हस्ताष्टसमन्वितं च व्यासे गृहं चोत्तममेव तस्य।।१।।

अब राजाओं के भवन का वर्णन करता हूँ। एक चक्रवर्ती राजा के उत्तम घर का व्यास अर्थात विस्तार, चौड़ाई, एक सौ आठ हस्त रखना।

इन्द्रवज्रा

ये द्वापरे भूमिभुजो बभूवुस्तेषां गृहं हस्तशतं द्विहीनम्।
तत् त्र्यंशभूमीश्वरको नृनाथस्त्वष्टाधिकाशीतिकरं गृहं स्यात्।।२।।

द्वापर युग में चक्रवर्ती राजाओं का घर अठानवें हस्त का था। चक्रवर्ती राजा की भूमि के तीसरे भाग की भूमि का मालिक जो राजा हो वह नृनाथ कहलाता हैं, उसका घर अठासी हस्त चौड़ाई का होता है।

उपजाति

ग्रामैकलक्षद्वयमस्ति यस्य प्रोक्तो महामण्डलिको नरेशः(नरेन्द्रः)।
अशीतिहस्तं द्विकरेण हीनं कुर्याद् गृहं शोभनमेव तस्य।।३।।

जो एक या दो लाख ग्राम का राजा हो, वह महामंडलिक नरेश कहलाता है तथा उसका घर अठहत्तर हस्त का होता है।

पञ्चायुतेशो नृपमण्डलीको भवेद् गृहं तस्य कराष्टषष्टिः।
सामन्तमुख्यो द्व्ययुताधिपोऽसौ तद् गेहमष्टेषु करप्रमाणम्।।४।।

पचास हजार ग्राम के राजा नृपमण्डलीक कहलाता है, उसका घर अडसठ हस्त का तथा बीस हजार ग्राम का मुख्य सामन्त का घर अठावन हस्त का रखना।

तद् वेश्म पञ्चाशदपि द्विहीनं सामन्तसंज्ञोयुतनाथ एव।
तथा तृतीयोऽपि ततोऽर्द्धहीनं त्रिंशत्कराष्टाधिकमेव गेहम्।।५।।



दस हजार ग्राम के स्वामी सामन्त होता है, उसका घर अड़तालीस हस्त का तथा पांच हजार ग्राम के स्वामी तृतीय (सामन्त) का घर अड़तीस हस्त का होता है।

इन्द्रवज्रा

प्रोक्तः प्रवीणैश्चतुराशिकोऽसौ ग्रामा हि यस्यैव सहस्त्रमेकम्।
अष्टाधिकं विंशतिहस्तहर्म्यं सिद्ध्यै समस्तानि यथोदितानि।।६।।

जो राजा एक हजार ग्राम का स्वामी हो वह चतुराशिक कहलाता है तथा उसका घर अट्ठाईस हस्त का होता है। इस प्रकार शास्त्र प्रमाण के अनुसार घर बनवाए तो सिद्धि होती है।

उपजाति

ग्रामाधिपा ये तु शताधिपाश्च ते स्वल्पराष्ट्रा अपि सैनिकाश्च।
तेषां गृहा अष्टदशाधिकैश्च करैः समाना मुनिनिर्मिताश्च।।७।।

एक सौ ग्राम के स्वामी, जो अल्प देश का राजा, होता कहलाता है, के लिए तथा सेनापति दोनों के लिए अठारह हस्त का घर बनवाना ऐसा मुनिश्वरों ने कहा है।

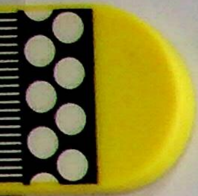
भूपालयार्द्धेन तु मन्त्रिगेहं यथाधिकारेण भवन्ति हीनाः (हीनम्)
व्यासाद् दशांशाधिकमेव दैर्घ्यं कुर्यादथो पञ्चमभागमिष्टः(ष्टम्)।।८।।

राजा के घर से प्रधानमन्त्री का घर आधा भाग का करना। मन्त्रियों के उतरते क्रम के अधिकारियों का घर भी प्रधानमन्त्री के घर से अनुक्रमानुसार आधे-आधे भाग का करना। घर की लम्बाई, चौड़ाई से दशांश या पंचांश अधिक रखना।

गृहं चतुर्हस्तमितं करादिवृद्ध्या द्विरामान्तमिति प्रमाणम्।
ततः परं भूपतिमन्दिराणि यावच्छतं चाष्टकराभिर्युक्तम्।।९।।

चार हस्त से बत्तीस हस्त की चौड़ाई वाला घर साधारण मनुष्यों का, उसके उपरान्त एक सौ आठ हस्त तक का चौड़ाई वाला घर राजाओं का होता है।

स्याद् भूमिरेका वस्तुहस्तगेहे दशाभिवृद्ध्या द्वितीया पुनश्च।
प्रासाद एवामरभूपयोश्च हर्म्याणि लोके मुनिनोदितानि।।१०।।



आठ हस्त का घर हो तो एक मंजिल और अठारह हस्त का घर हो तो दो मंजिल करना। देवताओं व राजाओं का घर, प्रासाद कहलाता है तथा अन्य साधारण लोगों का घर हर्म्य कहलाता है। ऐसा मुनियों ने कहा है।

३.१.२ दीवार

शार्दूलविक्रीडित

शालाया नवधा च पञ्चकरतो मानं च विश्वान्तकम्
भित्तेरेव चतुर्दशाङ्गुलमितिर्यावत् सपादं करम्।
आगारस्य तु षोडशांशसहितोऽप्यर्द्धेन हीनोऽथवा
भित्तेर्मानमिदं त्रिधा विरचितं कल्पयं यथायोग्यतः।।११।।

शालाएँ नौ प्रकार की कही गई है। जो पांच हस्त से तेरह हस्त तक की होती है। उन शालाओं की दीवार का मान चौदह अंगुल से सवा हस्त तक करना। यदि ऐसा न हो तो, घर की चौड़ाई का सोलहवां भाग, साढ़े सोलहवां भाग अथवा साढ़े पन्द्रहवां भाग भित्ति (दीवार) करना। इस प्रकार से दीवार की चौड़ाई के तीन मान कहे गए हैं। जो यथायोग्य करना।

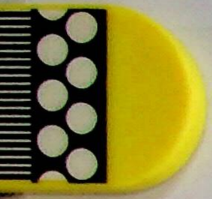
३.१.३ शिला

दैर्घ्ये चन्द्रकलाङ्गुलोत्तमशिला मध्याङ्गुलोनान्तिमा
व्यासो दिङ्नवभूभृदुच्छ्रितिरपि त्र्यंशेन विस्तारतः।।
हस्तादेस्त्रिकरोदयं नवविधं पीठं गृहे सर्वतो (सर्वतः)
विप्रादे रसभूतवेदगुणकाः स्युः पीठके मेखला।।१२।।

सोलह अंगुल लम्बी तथा दस अंगुल चौड़ी शिला हो तो उत्तम, पन्द्रह लम्बी नौ अंगुल चौड़ी मध्यम, चौदह अंगुल लम्बी तथा सात अंगुल चौड़ी कनिष्ठ शिला जानना। शिलाओं की चौड़ाई से तृतीयांश (एक तिहाई) मोटी होनी चाहिए।

उस शाला की पीठ अथवा भूमि तल की ऊँचाई एक हस्त से प्रारंभ कर छह -छह अंगुल बढ़ाते हुए तीन हस्त तक नौ प्रकार की होती है। एक हस्त, सवा, डेढ़, पौने दो, दो, सवा दो, ढाई, पौने तीन तथा तीन हस्त की होती है।

पीठ के ऊपर ब्राह्मण के लिए छह हस्त की मेखला, क्षत्रिय के आगे पांच हस्त की, वैश्य की चार तथा शूद्र तीन हस्त की मेखला बनाए।



३.१.४ दरवाजा

षष्ट्या वाऽथ शतार्धसप्ततियुतैर्व्यासस्य हस्ताङ्गुलै-
र्द्वारस्योदयको भवेच्च भवने मध्यः कनिष्ठोत्तमौ।
दैर्घ्यार्द्धेन च विस्तरः शशिकलाभागोऽधिकः शस्यते
दैर्घ्यं (दैर्घ्यात्) त्र्यंशविहीनमर्द्धरहितं मध्यं कनिष्ठं क्रमात्।।१३।।

घर की चौड़ाई जितने हस्त की हो, उतने अंगुल में सत्तर अंगुल मिलाकर जितने अंगुल हो उतनी घर की द्वार की ऊँचाई रखना, यह उत्तम प्रकार के घर के लिए द्वार की ऊँचाई कही है।

चौड़ाई जितने हस्त की हो, उतने अंगुल में साठ जोड़ने पर मध्यम प्रकार के भवन के लिए द्वार की ऊँचाई बताई है।

कनिष्ठ प्रकार के द्वार की ऊँचाई, घर की चौड़ाई जितने हस्त हो, उतने अंगुल में पचास जोड़ने पर प्राप्त होती है।

द्वार की ऊँचाई का आधे भाग में, ऊँचाई का सोलहवां भाग, मिलाकर जितना अंगुल हो वह द्वार की चौड़ाई रखना, यह श्रेष्ठ है। द्वार की ऊँचाई के तीन भाग के बाद शेष रहे दो भाग में जितनी चौड़ाई आए वह मध्यम द्वार तथा ऊँचाई से आधी ऊँचाई का द्वार कनिष्ठ प्रकार का कहलाता है।

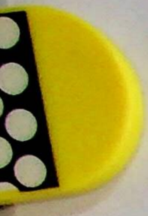
३.१.५ प्रतोली

उपजाति

ज्येष्ठा प्रतोली तिथिहस्तसंख्या प्रोक्तोदये विश्वकरा च मध्या।
कनिष्ठिका रुद्रकरा क्रमेण व्यासेऽष्ट सप्तैव च रागसंख्या।।१४।।

जिस प्रतोली अथवा प्रवेश द्वार की ऊँचाई पन्द्रह हस्त हो वह ज्येष्ठ मान, तेरह हो तो मध्यमान तथा ग्यारह हस्त हो तो कनिष्ठ मान कहलाता है।

उत्तम प्रतोली की चौड़ाई आठ हस्त, सात हस्त का व्यास (चौड़ाई) हो तो मध्यमान, छह हस्त का हो तो कनिष्ठ मान कहलाता है।



शार्दूलविक्रीडित

वेश्म व्यासकलांशकैर्युगगुणैर्हस्तैस्त्रिसार्धैर्युते
हर्म्यस्य त्रिविधोदयः क्षितितलावच्च (क्षितितलाद् यावच्च)पीठोद्र्ध्वगम्।
एकैकोऽपि पुनस्त्रिधा निगदितः सर्वे त एकादश
क्षेप्याः षण्णवतो नखाः शशिकला अष्टादशाद्यास्त्रिधा।।१५।।

घर का उदय (ऊँचाई) के लिए यह विधि है कि घर की चौड़ाई का सोलहवां भाग लेकर उसमें चार हस्त जोड़कर, घर की ऊँचाई करना तो वह ज्येष्ठ प्रकार, तीन हस्त जोड़ने पर कनिष्ठ तथा साढ़े तीन हस्त जोड़ने पर मध्यम मान की ऊँचाई जानना। यह शाला की पीठ अथवा घर की भूमितल से पटिए के शीर्ष तक की गणना है। इन तीन प्रकार के उदय में प्रत्येक के तीन-तीन भेद करने पर ग्यारह (बारह) प्रकार की ऊँचाई होती है। चार हस्त के छियानवे अंगुल होते है। उसमें बीस अंगुल मिलाने पर एक सौ सोलह अंगुल होते हैं, इसे ज्येष्ठ-ज्येष्ठ ऊँचाई जानना। सोलह अंगुल मिलाने पर एक सौ बारह अंगुल का ज्येष्ठ-कनिष्ठ तथा अठारह अंगुल मिलाने पर एक सौ चौदह अंगुल का ज्येष्ठ-मध्यम ऊँचाई जानना।

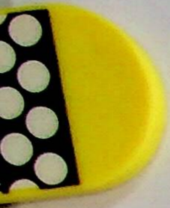
त्रिस्थाने युगपर्वतास्तिथियुता धिष्ण्यैकविंशान्विता
मध्योऽयं त्रिकरैस्तदंशसहितैः प्रोक्तः कनिष्ठस्त्रिधा।
वृक्षं दग्धविशुष्ककण्टकयुतं नीडैश्च बैल्वद्रुमं
क्षौरं मारुतपातितं च भवने चिञ्चां बिभीतं त्यजेत्।।१६।।

साढ़े तीन हस्त अर्थात चौरासी अंगुल में पन्द्रह अंगुल मिलाने पर निनन्यानवे अंगुल का मध्यम-कनिष्ठ, सत्ताईस अंगुल मिलाने पर एक सौ ग्यारह अंगुल का मध्यम-ज्येष्ठ, इक्कीस अंगुल मिलाने पर एक सौ पांच अंगुल का मध्यम-मध्यम ऊँचाई जानना।

तीन हस्त अर्थात बहत्तर अंगुल में पन्द्रह अंगुल मिलाने पर सितासी अंगुल का कनिष्ठ-कनिष्ठ, सत्ताईस अंगुल मिलाने पर निन्यानवे अंगुल का कनिष्ठ-ज्येष्ठ, इक्कीस अंगुल मिलाने पर तिरयानवे अंगुल का कनिष्ठ-मध्यम ऊँचाई जानना।

३.१.६ अशुभ वृक्ष

गृह निर्माण में जला हुआ, सूखा, कांटेयुक्त, जिस पर पक्षियों के घोंसलें हों, बिल्व वृक्ष, कटे-फटे वृक्ष, पवन से गिरा हुआ, इमली, बहेड़ा आदि प्रकार के वृक्ष की लकड़ी प्रयोग में नहीं लाना।



३.१.७ शुभवृक्ष

शाकः शालमधूकसर्जखदिरा रक्तासनाः शोभना

एकोऽसौ सरलोऽर्जुनस्य पनसः श्रीपर्णिनी शिंशिपाः।

हारिद्रस्त्वपि चन्दनः सुरतरु पद्माक्षकस्तिन्दुकी

नैतेऽन्येन युता भवन्ति फलदाः शाकादयः शोभनाः।।१७।।

साग (सागौन), शाल (साखू), महुआ, सर्ज, खेर (कत्था) (खादिड़) तथा बियो, इन वृक्षों की एक जाति की लकड़ी का गृह में प्रयोग श्रेष्ठ है। सरल (देवदारु), (चीड़), अर्जुन, सादड़, पनस (कटहल), श्रीपर्णिका (कायफल), शीशम, हल्दी, चन्दन, सुरतरु, पद्माक और तिन्दुक इन सुन्दर वृक्षों को छोड़कर अन्य वृक्षों की लकड़ी शुभ नहीं है। (ऐसे वृक्ष की लकड़ी का प्रयोग करना चाहिए।)

३.१.८ घर की ऊँचाई

गेहोदयं तु नवधा विभजेत् षडंशः

स्तम्भोऽर्धभागसमकमाभरणं शिरश्च।

कुम्भी ह्युदुम्बरसमैकविभागतुल्या

पट्टश्च तंत्रिकयुतः सममानएव (तं त्रिकयुतोंऽश समान एव)।।१८।।

घर की भूमि तल के पटिए से ऊँचाई तक के नौ भाग करना, उसमें छह भाग में स्तम्भ करना, आधे भाग में अलंकार (अलंकृत) करना, आधे भाग में शिर करना, एक भाग में कुम्भ शीर्ष के बराबर करना, शेष एक भाग में कनेरी तक पटिया करना।

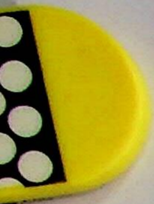
हर्म्यस्योदयकं विभज्य नवधा कुम्भी भवेद् ग्राव्यतः

पादोनं भरणं शिरश्च कथितं पादः सपादो भवेत्

स्तम्भः पञ्चपदोनभाग उदितः कोणाष्टवृत्तस्तथा।

भागार्द्धेन जयन्तिका निगदिता सा तत्र कास्योपरि।।१९।।

घर की ऊँचाई के नौ भाग करना। ग्रीवा से प्रारम्भ कर कुम्भी का निर्माण करना। अलंकार व शीर्ष, उससे एक चौथाई कम होता है। पद उसका सवा भाग होता है। स्तम्भ का माप पौने पांच भाग कहा है। यह अष्टकोणिय या गोलाकार होता है। जयन्तिका का मान आधा भाग कहा है। यह कास्य के ऊपर होती है।



३.१.९ शाला व अलिन्द

शार्दूलविक्रीडित

शालालिन्द उदाहृतो हि विबुधैर्बाणेषु युग्मांशकः
सप्तांशेषु गुणैश्च नन्दपदतो वेदांशतुल्यस्तथा।
कापाटं गृहदक्षिणे निगदितं वामे भवेदर्गला
सृष्ट्या निष्क्रमणं कृतं मुनिवरैर्द्वारेषु सर्वेषु यत्।।२०।।

गृह निर्माण के लिए जमीन के पांच भाग कर, तीन भाग में शाला और शेष दो भाग में अलिंद करना।

घर की जमीन के सात भाग करके उसमें से चार भाग शाला करना, शेष तीन भाग में अलिन्द करना।

घर की जमीन के नौ भाग कर, पांच भाग में शाला और शेष चार में अलिन्द करना।

घर में कपाट दाहिनी ओर करना तथा बाई ओर अर्गला रखना तथा घर के सभी द्वार सृष्टि मार्ग से निर्गम हेतु श्रेष्ठ हैं, ऐसा मुनियों ने कहा है।

शाला जिनांशैर्मनुरेव मध्ये त्रयो हयान्ते द्वयमस्य पार्श्वे।
द्वारोत्तमाङ्गे च समानकर्णाः शस्ता न शस्ता भवनाभिवक्त्राः।।२१।।

शाला के चौबीस भाग कर चौदह भाग मध्य में रखना। अश्वशाला के दोनों ओर तीन भाग छोड़ना तथा शेष दोनों ओर दो-दो भाग छोड़ना।

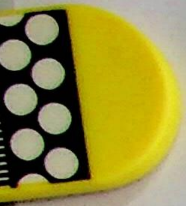
द्वार का उत्तमांग समान कर्ण वाला रखना। अश्वशाला का मुख भवन के समाने आए तो शुभ नहीं होती है।

३.१.१० दीपस्थान

उपजाति

दीपालयो दक्षिणदिग्विभागे सदा विधेयोऽर्गलया समानः।
वामे च मध्ये न शुभाय गेहे सुरालये वामदिशीष्टसिद्धये।।२२।।

दीया रखने के लिए स्थान (आला, आलिया) घर के दाहिनी ओर रखना। इन दीपालय की ऊंचाई व द्वार की अर्गला एक सूत्र में होना चाहिए।



दीप का स्थान, घर के बाएँ, मध्य व अन्य स्थान पर नहीं रखना चाहिए परन्तु देवमन्दिर में बाएँ ओर दीपालय हो तो सिद्धिदेने वाला होता है।

३.१.११ दरवाजा

शार्दूलविक्रीडित

द्वाराग्रे खटकीमुखं तदधो द्वाःषोडशांशाधिकं
सर्वं वा शुभमिच्छता स सततं कार्य(तु) पट्टादधः।
तन्नूनं न शुभं तुलातलगतं कुक्षौ तथा पृष्ठकम्
कोष्ठं पञ्चक एव नीतमहितं यन्मूलपूर्वोत्तरम्।।२३।।

घर के द्वार के आगे खटकी द्वार (छोटा दरवाजा, खिड़की) करने की यह विधि है कि द्वार की जितनी ऊँचाई हो उसमें सोलह अंश जोड़कर जितना आए, उतनी ऊँचाई वाला खटकी द्वार करना।

इससे अधिक छोटा, तुला के नीचे, कुक्षि भाग में नहीं होना चाहिए एवं इसका पृष्ठ भाग में खुलना शुभ नहीं होता है।

जो लकड़ी पञ्चक में लाई गई हो या जिसकी जड़ पूर्व या उत्तर में (न) हो उस लकड़ी का द्वार निर्माण में प्रयोग नहीं करना चाहिए।

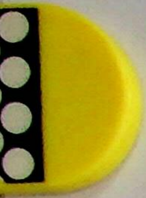
शालिनी

द्वारोर्ध्वे यद् द्वारमस्य प्रमाणं सङ्कीर्णं वा शोभनं नाधिकं तत्।
ह्रस्वद्वाराण्येव यानि पृथूनि तेषां शीर्षाण्येकसूत्राणि कुर्यात्।।२४।।

घर के ऊपर का द्वार, नीचे के द्वार के बराबर करना, नीचे के द्वार से संकीर्ण (छोटा) तो शुभ है, परन्तु नीचे के द्वार से ऊपर के द्वार की अधिक चौड़ाई व ऊँचाई, शुभ नहीं है।

नीचे के सभी द्वार का शीर्ष एक सूत्र में उसी प्रकार ऊपर के द्वार का शीर्ष भी एक ही सूत्र में रखना।

सर्वं द्वारं चीयमानं रुजायै यद्वा ह्रस्वं तत्करोत्यर्थनाशम्।
गेहाद्यं यत्पूर्ववास्तुस्वरूपं तेषां भङ्गान्नैव सौख्यं कदाचित्।।२५।।



सभी द्वार का प्रमाण मान से अधिक हो तो रोग उत्पन्न करता है। प्रमाण से कम प्रमाण का द्वार हो तो धन का नाश होता है।

इतना ही नहीं, पहले जो घर का वास्तुप्रमाण आदि हो, वह भंग (खण्डित) करने में आए तो घर के मालिक को किसी भी दिन सुख प्राप्त नहीं होता है।

द्वारव्यासरदांशतोऽधिकमिदं कार्यं गृहं दक्षिणे
तुल्यं हस्तिगृहं न च वाजिभवनं तेनाधिकं वामतः।
अष्टांशे च नवांशके च वितथे तोये जयेन्द्रे हितं
द्वारं सौम्यगृहक्षते च कुसुमे भल्लाटके शस्यते।।२६।।

मनुष्य के लिए घर की दीवार के बत्तीस भाग कर दाई ओर एक अंश, एक भाग अधिक कर (सत्रह भाग दाहिनी ओर रख, पन्द्रह भाग में) द्वार रखे। परन्तु हस्तिशाला हो तो दोनों ओर बराबर रख के द्वार रखें। अश्वशाला हो तो बाईं ओर एक भाग अधिक रखकर द्वार रखें।

शाला के आठ या नौ भाग कर दक्षिण दिशा में वितथ, पश्चिम में वरुण, पूर्व में जय व इन्द्र, उत्तर में सौम्य या कुबेर, दक्षिण में गृहक्षत, पश्चिम में पुष्पदन्त, उत्तर में भल्लाट देवता के भाग में द्वार रखना।

प्राग्द्वाराष्टकमध्यतोऽपि न शुभं सूर्येशपर्जन्यतो
याम्यायां च यमाग्निपौष्णमपरे शोषासुरं पापकम्।
सौम्यायामथ रोगनागगिरिजं त्याज्यं तथान्यच्छुभं
कैश्चिद् दा(वा)रुणसौम्यकं नहि हितं प्रोक्तं च वातायने।।२७।।

पूर्व दिशा के आठ भागों के सूर्य, ईश, पर्जन्य, दक्षिण में यम, अग्नि, पूषा, पश्चिम में शेष, असुर, पाप तथा उत्तर में रोग, नाग, शैल में द्वार न बनवाए। इन देवताओं के अलावा अन्य देवताओं के स्थान में द्वार रखना। कई आचार्य कहते हैं कि पश्चिम व उत्तर दिशा में जाली (वातायन) (नहीं) रखें। (कई आचार्य कहते हैं कि पश्चिम व उत्तर दिशा के द्वार शुभ नहीं हैं, अतः वहाँ वातायन रखें।)

३.१.१२ द्वारवेध

द्वारं विद्धमशोभनं च तरुणा कोणभ्रमस्तम्भकैः
कूपेनापि च मार्गदेवभवनैर्विद्धं तथा कीलकैः।

उच्छ्रायात्
प्राकारन्त

द्वार में वृक्ष
(यह शुभ नहीं है
द्वार और वेध के
हो तो भी दोष नह

दैर्घ्ये सार्द्ध
प्रोक्तं वाऽ
तद्वत् षोड
द्वारं मत्स्य

मत्स्य पुराण
के द्वार के ऊँचाई
सौ चालीस, एक स
एक सौ सोलह, एक
की ऊँचाई कही ग

स्वयमपि च
भयदमधिक
पुरुषयुवतिन
भयदमखिल

जो घर का द्व
एक चौड़ी तथा दूसर
स्त्री व पुरुष का नाश
करता है।

उच्छ्रायात् द्विगुणां विहाय पृथिवीं वेधो न भित्यन्तरे
प्राकारन्तरराजमार्गपरितो वेधो न कोणद्वये।।२८।।

द्वार में वृक्ष, कोण, भ्रम (नाली), स्तम्भ, कुआँ, मार्ग, मन्दिर, कील इनके वेध को त्याग दे। (यह शुभ नहीं है।) घर की ऊँचाई से दुगुनी जमीन छोड़कर, कोई वेध हो तो, दोष नहीं लगता। द्वार और वेध के बीच में दीवार हो तो, दोष नहीं लगता। वेध व द्वार के बीच प्राकार हो, राजमार्ग हो तो भी दोष नहीं लगता। द्वार व वेध के बीच दो कोण आते हो तो वेध का दोष नहीं लगता।

३.१.१३ द्वारमान

दैर्घ्ये सार्द्धशताङ्गुलं च दशभिर्हीनं चतुर्धावधिः
प्रोक्तं वाऽथ शतं त्वशीतिसहितं युक्तं नवत्या शतम्।
तद्वत् षोडशभिः शतं च नवभिर्युक्तं तथाशीतिकं
द्वारं मत्स्यमतानुसारि दशकं योग्यं विधेयं बुधैः।।२९।।

मत्स्य पुराण के अनुसार द्वार की ऊँचाई दस प्रकार की कही गई है। एक सौ पचास अंगुल के द्वार के ऊँचाई के दस-दस अंगुल कम करते हुए चार भेद कहे हैं। अर्थात एक सौ पचास, एक सौ चालीस, एक सौ तीस, एक सौ बीस, एक सौ दस अंगुल। एक सौ अस्सी अंगुल, एक सौ नब्बे, एक सौ सोलह, एक सौ नौ तथा अस्सी अंगुल द्वार की ऊँचाई रखना। इस प्रकार द्वार की दस प्रकार की ऊँचाई कही गई है।

३.१.१४ द्वारदोष

मालिनी

स्वयमपि च कपाटोद्घाटनं वा पिधानम्
भयदमधिकहीनं शाखयोर्वा विचालम्।
पुरुषयुवतिनाशः स्तम्भशाखाविहीनम्
भयदमखिलकाष्ठाग्रं यदाधः स्थितं स्यात्।।३०।।

जो घर का द्वार स्वयं खुल जाए अथवा बन्द हो जाए तो भय उत्पन्न करता है। द्वार की शाखा एक चौड़ी तथा दूसरी पतली हो तो भय उत्पन्न करती है। स्तम्भ व शाखा के बिना द्वार हो तो युवा स्त्री व पुरुष का नाश करता है। द्वार की लकड़ी का अग्र भाग यदि नीचे स्थित हो तो भय उत्पन्न करता है।

३.१.१५ गृहदोष

इन्द्रवज्रा

देवालयं वा भवनं मठश्च भानोः करैर्वायुभिरेव भिन्नम्।
तन्मूलभूमौ परिवर्जनीयं छाया गता यस्य गृहस्य कूपे।।३१।।

देवमन्दिर, घर, मठ में सूर्य की किरण तथा वायु का संचार न हो तथा जिस घर की छाया कुएँ में पड़ती हो तो ऐसे घर का त्याग कर देना चाहिए।

नैको लघुर्वामदिशो विभागे मध्ये द्विषट्दारु न वर्णगेहे।
स्तम्भासनं हीनमपि क्षयाय यदधिकं रोगकरं तदा स्यात्।।३२।।

घर के बाईं ओर अकेला अलिन्द हो तो शुभ नहीं होता है। घर अथवा शाला के मध्य दो षट्दारु शुभ नहीं है। स्तम्भ का आसन प्रमाण से कम हो तो क्षय (क्षय आय-धन हानि) हो, अधिक हो तो रोग करे।

३.१.१६ स्तम्भ

शार्दूलविक्रीडित

स्तम्भोऽष्टास्रसुवृत्तभद्रसहितो रूपेण चालङ्कृतो
युक्तः पल्लवकैस्तथाभरणकं स्यात् पल्लवेनावृतम्।
कुम्भी भद्रयुता कुमारसहितं शीर्षं तथा किन्नराः
पत्रं चेति गृहे न शोभनमिदं प्रासादके शस्यते।।३३।।

आठ कोण वाला, वृत्त अथवा गोल, भद्र सहित स्तम्भ, मूर्तियों से अलंकृत, पल्लव व भरण से युक्त तथा ऐसा स्तम्भ जिसके कुम्भ में भद्र हो, जिसके शीर्ष पर कुमार युक्त मूर्ति हो, जिसके शीर्ष में किन्नर हो, पत्रादि हो ऐसा स्तम्भ, घर के लिए शुभ नहीं, परन्तु प्रासाद के लिए शुभ है।।

उपजाति

स्तम्भो द्वयोर्मध्यगतो न शस्तः शुभङ्करौ पट्टयुगांशतो द्वौ।
गृहे प्रशस्ताश्चतुरस्रकास्ते स्तम्भा न कण्ठेन विना प्रशस्ताः।।३४।।

दो घरों के मध्य एक स्तम्भ शुभ नहीं है। एक-एक पट्टशाला के बीच चार पटिया और चार स्तम्भ अथवा दो पटिया व दो स्तम्भ शुभ है। चौकोर स्तम्भ घर के लिए शुभ हैं, चौकोर स्तम्भ बिना कुम्भ के शुभ नहीं है।

हानिस्तुला मध्यगता षणस्य स्तम्भेभदंतालयभित्तिमूषाः।
संलग्नचत्वार्यपि हानये स्युः स्तम्भासनं स्तम्भशिरश्च शीर्षम्।।३५।।

षण (खण्ड) के मध्य तुला (बीम), स्तम्भ, गजदन्त, भित्ति तथा मूषा हो तो गृहपति को हानि होती है। स्तम्भआसन, स्तम्भ का शिर तथा शीर्ष यदि एक साथ हो तो हानि होती है। अतः एक साथ न रखे।

३.१.१७ छाद्य

शार्दूलविक्रीडित

उच्छ्रायार्धविनिर्गतं शरयुगांशेनाधिकं शस्यते
छाद्यं पट्टसमानकं सुखकरं नाशाय निम्नोन्नतम्।
तत्काकस्य च पक्षवच्च कुमुदाभं सौर्पं कालापकम्
प्रालम्बं च करालकं हि बिबुधैः प्रोक्तं ततः षड्विधम्।।३६।।

घर की आच्छादन, घर की ऊँचाई का आधा, चौथा या पांचवें भाग के बराबर दीवार के बाहर निकला हो तो शुभ होता है। ऊँचा-नीचा आच्छादन नाशकारक होता है।

छाद्य छह प्रकार के कहे गए हैं। कोए के पंख के समान, कमल के समान, सूपड़े के समान, मोर पंख के समान, प्रालम्ब (सीधा-सपाट) एवं करालक (लकड़ी के पटियों से निर्मित) आच्छादन (छत) होती है।

३.१.१८ सीढ़ी

छाद्य (छत) छह प्रकार के कहे गए हैं।
कोए के पंख के समान
कमल के समान
सूपड़े के समान
मोर पंख के समान
प्रालम्ब (सीधा-सपाट)
करालक (लकड़ी के पटियों से निर्मित)

भूम्यारोहणमूर्द्धतस्तदुपरि प्राग्दक्षिणं शस्यते
द्वारं तूर्ध्वभवं च भूमिरपरा ह्स्वार्कभागैः क्रमात्।
प्रासादे च मठे नरेन्द्रभवने शैलः शुभो नो गृहे
तस्मिन् भित्तिषु बाह्यकासु शुभदः प्राग्भूमिकुम्भ्यां तथा।।

पहली मंजिल से दूसरी मंजिल पर जाने के लिए सीढियाँ पूर्व व दक्षिण में (दाईं ओर घूमने पर) श्रेष्ठ होती है।

सीढ़ी का द्वार ऊपरी मंजिल पर होना चाहिए। नीचे से ऊपर का द्वार बारह अंश छोटा रखना।

प्रासाद, मठ व राजमहल में पत्थर का प्रयोग शुभ है, परन्तु साधारण लोग के घर में शुभ नहीं है। घर में भी बाहर की दीवार, तल की भूमि (आधार) तथा कुम्भी में पत्थर का प्रयोग शुभ होता है।

पृष्ठेक्षणानन्तरमेव बाह्यात् गृहप्रवेशो न शुभङ्करोऽसौ।
गृहस्य पृष्ठे यदि राजमार्गस्तदादि भूमेर्गृहर्नहि पृष्ठमीक्षम्(क्ष्यम्)।।३८।।

घर में प्रवेश बाहर से पीछे के भाग को देखते हुए हो तो शुभ नहीं होता है, परन्तु पीछे राजमार्ग होने पर दोष नहीं लगता है।

३.१.१९ जीर्णोद्धार

शालिनी

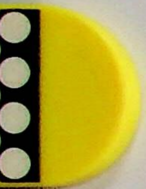
जीर्णं गेहं भित्तिभग्नं विशीर्णं तत्पातव्यं स्वर्णनागस्य दन्तैः।
गोश्रृङ्गैर्वा शिल्पिना निश्चयेन पूजां कृत्वा वास्तुदोषो न तस्य।।३९।।

जो घर जीर्ण हो गया हो या कोई दीवार गिर गई हो तो शिल्पी स्वर्ण का हाथी दांत या सुवर्ण का गाय का सींग से गिरवाना चाहिए या शिल्पी जैसा उचित समझे वैसा करें। गिरवाने से पहले वास्तुपूजन करें तो वास्तुदोष नहीं लगता है।

३.१.२० गृहवृद्धि

शार्दूलविक्रीडित

हर्म्यस्यापि समृद्धितो गृहपतिर्वृद्धिर्यदापीहते
सर्वाशासु विवर्द्धितं च फलदं दुष्टं तदैकत्र च।
प्राग्मित्रैरपि वैरमुत्तरदिशाभागे मनस्तापकृत्
पश्चादर्थविनाशः दक्षिणदिशि शत्रोर्भयं वर्धते।।४०।।



जो घर का मालिक समृद्धवान हो तथा स्वयं के घर की वृद्धि (बढ़ाना) की इच्छा रखता हो, वह घर के एक ओर की भूमि न लेकर, आस-पास के चारों ओर की भूमि लेकर वृद्धि करें। एक ही दिशा में वृद्धि करें तो दुष्ट फल होता है।

कदाचित कोई एक ही दिशा, पूर्व में वृद्धि करे तो मित्र से वैर, उत्तर में मन से ताप, पश्चिम में घर का नाश तथा केवल दक्षिण में अधिक हो तो शत्रुओं से भय उत्पन्न करती है।

३.१.२१ गृहविन्यास

घर में कमरों की स्थिति

वामाङ्गे धनवस्त्रदेवभवनं धातुः श्रियोर्वाजिनः (श्रियो वाजिनो)
नार्यास्त्वौधभोजनस्य भवनं स्याद् वाटिका वामतः।
वह्नेर्गोजलदन्तिशस्त्रसदनं स्त्रीणां तथा दक्षिणे
स्थानं माहिषमाजमौर्णिकमिदं याम्याग्निमध्ये शुभम्।।४१।।

बाई ओर (उत्तर की ओर) धन का, वस्त्र का, देव का, धातु का, लक्ष्मी का, घोड़े का, रानी का, औषधि का, बाग का, भोजन का स्थान रखना चाहिए। अग्नि का, गाय का, जल का, हाथी का, शस्त्र, स्त्रियों का स्थान दाहिनी ओर रखना।

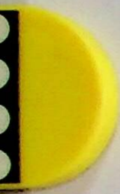
भैंसों का, बकरियों व भेड़ों का स्थान घर के दक्षिण व अग्निकोण के मध्य रखना।

सुग्रीवे वरुणेऽसुरे गणवरे स्याद् घोटकानां गृहं
द्वास्थे युद्धगृहं च नृत्यरमणं गन्धर्वदेवाश्रितम्।
राज्ञो मातृगृहं जयेन्द्रजयके (महेन्द्रजयके) रुद्रे महिष्याः गृहं
सत्ये धर्मगृहं रवौ व्ययगृहं प्रोक्तं जये श्रीगृहम्।।४२।।

सुग्रीव, वरुण, असुर, पुष्पदन्त के पद में अश्वशाला बनवाना। द्वार (नंदी, दौवारिक) में युद्ध गृह, गन्धर्व में नृत्यशाला, जय व इन्द्रजय में राजमाता का घर, रुद्र में पटरानी, सत्य में धर्मशाला, सूर्य में व्यय अथवा धन खर्च अथवा तिजोरी तथा जय के स्थान में लक्ष्मी की स्थापना करना।

शालिनी

ईशप्राच्योरन्तरे गर्दभानामुष्ट्राणां वा स्थानमेवात्र कार्यं
धान्यागारं स्यात्तथा प्राणकोणे भृशेऽप्येवं शम्भुकोणे शिवार्च्या।।४३।।



ईशान व पूर्व के मध्य गधे व ऊँट का स्थान, वायव्य कोण अथवा भृश में, धान्य का स्थान तथा ईशान कोण में महादेव की पूजा का स्थान रखना।

प्राक्पश्चिमे मारुतवह्निकोणे प्रोक्ता प्रवीणैरपि नृत्यशाला

वर्चोगृहं रात्रिचरस्य कोणे स्यात् पश्चिमे भोजनशालिका च।।४४।।

पूर्व, पश्चिम, वायव्य कोण में व अग्निकोण में नृत्यशाला रखना। ऐसा बुद्धिमान पुरुषों ने कहा है। नैर्ॠत्य कोण में शौचालय तथा पश्चिम में भोजनशाला रखना।

शार्दूलविक्रीडित

प्राक्शोभा नृपमन्दिरस्य पुरतः स्थानं तथा पुत्रकं

वामाङ्गे नृपतेस्तथाऽऽयुधधराः कृष्णतनुत्राणि च।

छत्रं चामरतापसाः स्वगुरवः ताम्बूलधृग्दक्षिणे

गेहाधीशयदृच्छया च शयनं सर्वासु भूमीषु च।।४५।।

राजमहल के पूर्व दिशा (सामने) शोभायमान मंडप करना। उसके आगे पुत्र, पौत्र आदि का महल करना। राजा के महल के बाईं ओर शस्त्रधारण करने वाले योद्धाओं तथा बख्तर का स्थान रखना।

राजमहल के दाहिनी ओर राजा का छत्र पकड़ने वाले, चामर डुलाने वालों का, गुरु और ताम्बूल बेचने वालों का स्थान करना गृहस्वामी के इच्छानुसार, सभी स्थान पर (कहीं भी) शयन का स्थान करना।

विवस्वदाख्ये शयनं (अध्ययनं) प्रशस्तं वादित्रगेहं सवितुर्विधेयम्।

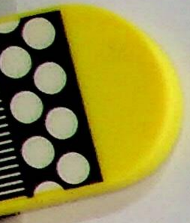
पूषाश्रितं भोजनमन्दिरञ्च महानसं वह्निदिशाविभागे।।४६।।

विवस्वान में शयन (अध्ययन) कक्ष, सविता में वादित्र शाला, पूषा में भोजनशाला तथा अग्निकोण में रसोई का स्थान रखना।

माहेन्द्राख्ये गोपुरं द्वित्रिभौमं भानोः संख्या तस्यविधेयम्।

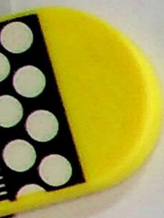
उक्तानुक्तं मन्दिरादौ निवेशे त्वष्ट्रा कार्यं चाज्ञया भूपतीनाम्।।४७।।

दो अथवा तीन मंजिल का गोपुर इन्द्र के स्थान में रखना तथा उन दरवाजों में सूर्य की गति की संख्या बांधना (घड़ी रखना)।



यह विधि जो कही है और नहीं कही है वह राजा की आज्ञा से गृह आदि विषय में शिल्पी करें।

घर में कमरों की स्थिति
उत्तर दिशा -बाई ओर (उत्तर की ओर) धन का, वस्त्र का, देव का, धातु का, लक्ष्मी का, घोड़े का, रानी का, औषधि का, बाग का, भोजन का स्थान दक्षिण दिशा -अग्नि का, गाय का, जल का, हाथी का, शस्त्र, स्त्रियों का स्थान घर के दक्षिण व अग्निकोण के मध्य -भैंसों का, बकरियों व भेड़ों का स्थान सुग्रीव, वरुण, असुर, पुष्पदन्त के पद में -अश्वशाला बनवाना। द्वार (नंदी, दौवारिक) में -युद्ध गृह गन्धर्व -नृत्यशाला, जय व इन्द्रजय- राजमाता का घर रुद्र - पटरानी सत्य - धर्मशाला सूर्य - व्यय अथवा धन खर्च अथवा तिजोरी जय -लक्ष्मी की स्थापना ईशान व पूर्व के मध्य- गधे व ऊँट का स्थान वायव्य कोण अथवा भृश में- धान्य का स्थान ईशान कोण -महादेव की पूजा का स्थान पूर्व, पश्चिम, वायव्य कोण में व अग्निकोण-नृत्यशाला नैर्ऋत्य कोण -शौचालय पश्चिम-भोजनशाला राजमहल के पूर्व दिशा (सामने)- शोभायमान मंडप पूर्व दिशा के आगे-पुत्र, पौत्र आदि का महल राजा के महल के बाईं ओर- शस्त्रधारण करने वाले योद्धाओं तथा बख्तर का स्थान राजमहल के दाहिनी ओर- राजा का छत्र पकड़ने वाले, चामर डुलाने वालों का स्थान, गुरु और ताम्बूल बेचने वालों का स्थान गृहस्वामी के इच्छानुसार,(कहीं भी)- शयन का स्थान विवस्वान - शयन (अध्ययन) कक्ष सविता - वादित्र शाला पूषा- भोजनशाला अग्निकोण - रसोई का स्थान



नृत्यशाला		
नृत्यशाला, भोजनशाला		नृत्यशाला
शौचालय		नृत्यशाला

पारधी		रंगरेज, कपड़ों का
कुआँ, तालाब, बाबड़ी, कुण्ड		ब्राह्मण
वैश्या	चमड़े का कार्य करने वाले, अन्त्यज, क्षत्रिय	अग्नि जीवी, सुनार, लोहार,

पटरानी
अश्वशाला
अश्वशाला
अश्वशाला
अश्वशाला
युद्धशाल
राजमाता,
लक्ष्मी
राजवल्लभ
४०/५
व्यय
धर्मशाला
अध्ययन
वादित्र
नृत्य
भोजन
रसोई

दिक्शालान्तं ह्येकशालादिगेहं ज्येष्ठा मध्या कन्यसा दक्षिणाङ्गात्।
शाला कार्या लोकगेहे युगान्तास्त्रिद्व्येकाः स्युः भूमयस्तेषु नूनम्।।४८।।

एक शाला से दस शालाओं तक घर बनाना, इन शालाओं के ज्येष्ठ, मध्यम और कनिष्ठ तीन प्रकार कहे हैं। जो सृष्टि मार्ग से करना। परन्तु साधारण लोगों के लिए एक शाला से लेकर चार शाला तक घर बनवाना। इन घरों के ऊपर तीन, दो, एक मंजिल तक घर बनवाना।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):- इस अध्याय में बताया गया है कि चक्रवर्ती राजा आदि की विभिन्न श्रेणियाँ होती हैं। यह श्रेणियाँ राजाओं की शक्ति आदि के आधार पर होती है। इस गणना में क्षेत्रफल, सेना, अश्व आदि वाहन, सैनिक आदि शामिल होते हैं। इसके आधार पर राजा की संज्ञा होती है। जैसा राजा हो वह उसका स्थान होता है या बनाया जाता है।

आज के समय में भी हम देखते हैं कि किसी महासभा आदि के समय राजा (प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति) के स्थान आदि का निर्धारण उनके शक्ति के आधार पर किया जाता है। यह नियम सभी स्थानों पर लागू होता है।

इसी प्रकार के नियमों का पालन गृह निर्माण में भी करना चाहिए। यह समाज में व्यवस्था बनाए रखने में सहायक होता है।

इस अध्याय में बताया गया है कि कमरे के अनुपात में दीवार की मोटाई (१/१६) रखना चाहिए। यह भारवाहक दीवार का मान होता है।

इसके पश्चात् बताया गया है कि द्वार की ऊँचाई, भवन की ऊँचाई के अनुपात में होती है। जितना विशाल व बड़ा भवन होता है, उसका द्वार उतना ही विशाल व भव्य होता है।

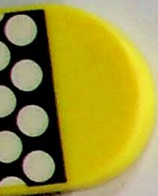
उसके पश्चात गृह की चौड़ाई के अनुपात में गृह की ऊँचाई होती है। इससे भवन में भव्यता आदि है। यही सिद्धान्त आगे बहुमंजिला भवन की ऊँचाई का निर्धारण करने में सहायक होता है। इस प्रकार से बने भवन स्ट्रक्चरल इंजीनियरींग की दृष्टि से स्थिर होते हैं।

उसे शुभाशुभ वृक्षों का वर्णन है। किन-किन वृक्षों का प्रयोग करना चाहिए तथा कौन से वृक्ष निषिद्ध हैं।

उसके पश्चात् बताया है कि गृह के ऊँचाई के विभिन्न भाग करके उचित अनुपात में पीठ, स्तम्भ तथा शिखर आदि के मान का निर्धारण करते हैं।

उसके पश्चात् तुला आदि के मान बताएँ हैं। ये मान आज की तुला या बीम के लिए प्रयुक्त होते हैं।

उसके पश्चात् गृह की चौड़ाई के अनुपात में शाला (कमरे) के मान के नियम बताए हैं। उसके पश्चात् अश्वशाला आदि के मान व स्थान बताए हैं। आज के समय में अश्व के स्थान पर जो वाहन प्रयोग में लाए जाते हैं, उनके स्थान का निर्धारण इसी के आधार पर किया जा सकता है।

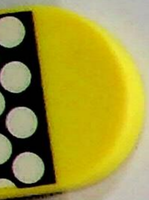


उसके पश्चात् द्वार के मान, स्थान तथा वेध का वर्णन किया गया है। द्वार वह स्थान है जहाँ से ऊर्जा, गृह में प्रवेश करती है, अतः द्वार की लकड़ी उचित है, वह शुभ स्थान पर हो तथा उसके सामने कोई अवरोध नहीं हो। यह सब आज भी पूर्ण-रूपेण प्रासंगिक है।

उसके पश्चात् गृह के दोष का वर्णन है, इन दोषों से मुक्त रहने पर गृहस्वामी व अन्यजन सुखी होते हैं। उसके पश्चात् गृहनियोजन, ऊर्जा के अनुकूल कक्षों का निर्धारण बताया गया है।

इस प्रकार से हमने देखा कि वास्तु शास्त्र के नियम ऊर्जा के अनुरुप निर्माण, स्ट्रक्चर के नियमों के अनुसार भारवाहक दीवार आदि के मान का निर्धारण आज भी प्रासंगिक हैं।

आधुनिक इंजीनियरींग से आगे जाकर द्वार के स्थान का निर्धारण करने के नियम बताए हैं।



३.२ एकशालद्विशालगृहलक्षणम्

३.२.१ एकशालभवन

उपजाति

अथैकशालं द्विगुणाब्धिशालं प्रस्तारतो लक्षणमेव तेषाम्।
यथोदितं वास्तुमते तथैव ब्रवीमि राज्ञामथ मानवानाम्।।१।।

अब एकशाला, दो शाला, तीन शाला और चार शाला के घर के लक्षण प्रस्तार के अनुसार बताते हैं। वास्तु शास्त्र के अनुसार जनसामान्य व राजा के घरों का वर्णन करता हूँ।

३.२.२ ध्रुव आदि एक शाला के सोलह प्रकार

शार्दूलविक्रीडित

चत्वारो गुरवस्तु पूर्वगुरुतोऽधो ह्रस्वतोऽन्यो समाः
भूयः पश्चिमपूरितं च गुरुभिर्यावल्लघुत्वं भवेत्
उद्दिष्टे द्विगुणोऽङ्ककैर्लघुभवैः संख्यैकमिश्रीकृते
नष्टे स्तो विषमे समे गुरुलघुरूपे तदर्द्धार्द्धतः।।२।।

चार गुरु (SSSS शाला) वाले, चार चिह्न से पहला रूप बनता है। पहला लघु (अलिन्द) उसके पश्चात् तीन गुरु से दूसरा रूप, पहले गुरु फिर लघु फिर दो गुरु से तीसरा रूप, शुरू में दो लघु बाद में दो गुरु से चौथा रूप, पहले गुरु फिर लघु फिर गुरु से पांचवां रूप, । लघु, गुरु, लघु, गुरु छठा रूप। गुरु दो लघु गुरु सातवां रूप। तीन लघु, गुरु आठवां रूप। तीन गुरु लघु नवां रूप।लघु, दो गुरु, लघु दसवां। गुरु, लघु, गुरु, लघु ग्यारहवाँ, दो लघु, गुरु, लघु बारहवां, दो गुरु दो लघु तेरहवां। लघु, गुरु, दो लघु चौदहवां, फिर गुरु तीन लघु पन्द्रहवां तथा चार लघु से सोलहवां रूप होता है।

उपजाति

स्थाने लघोः सद्ममुखादलिन्दं प्रदक्षिणं तत्क्रमतो विदध्यात्।
प्रस्तारतः षोडशकं गृहाणां प्रोक्तं तथाख्यां कथयामि तेषाम्।।३।।

घर का मुख अथवा मोबाल (अलिन्द) जिस दिशा में हो उसे पूर्व दिशा जानना। (राजाओं के घर के लिए नहीं परन्तु साधारण लोगों के लिए यह विधि है।) प्रस्तार में जिस दिशा में लघु आए, उसमें सृष्टि मार्ग से घर का अलिन्द अथवा प्रशाल आए, इस प्रकार से घर के सोलह रूप कहे हैं।

ध्रुवं च धान्यं जयनन्दसंज्ञे खराख्यकान्ते च मनोरमाख्यम्।
सुवक्त्रकं स्यात् किल दुर्मुखाख्यं क्रूरं विपक्षं धनदं क्षयं च।।४।।
आक्रन्दं वैपुलवैजये च फलानि नाम्ना सदृशानि तेषाम्।
धान्यादितोऽष्टौ विजयान्तकं हि त्वलिन्दयुग्मं मुखतो विदध्यात्।।५।।

ध्रुव, धान्य, जय, नन्द, खर, कान्त, मनोरम, सुवक्त्र, दुर्मुख, क्रूर, विपक्ष, धनद, क्षय, आक्रन्द, वैपुल तथा विजय ये सोलह प्रकार के घर है।

इन सोलह घरों का जो नाम है, वही उनका फल है। इन घरों में दूसरे धान्य से विजय घर तक एक-एक घर के अन्तर से (एक-एक को छोड़कर) आठ घरों में प्रत्येक के मुख में आगे एक-एक अलिन्द आए तो रम्यादि आठ घर होते हैं।

३.२.३ रम्य आदि आठ घर

शार्दूलविक्रीडित

रम्यं श्रीधरमौदिते च परतस्तद् वर्धमानं गृहं
करालं च सुनाभमेव तदनु ध्वांक्षं समृद्धं तथा।
सर्वाणि ध्रुववद् भवन्ति नियतं षड्दारुकैः सुन्दरम्
प्रोक्तं तद् वरदं च भद्रप्रमुदेऽथो वैमुख्याख्यं शिवम्।६।।

धान्य नाम के घर के मुख के आगे एक अलिन्द हो तो रम्य नाम का घर होता है। नन्द के आगे हो तो श्रीधर, कान्त के आगे हो तो मौदित, सुमुख के आगे हो तो वर्धमान, क्रूर के आगे हो तो कराल, धनद के आगे हो तो सुनाभ, आक्रन्द के आगे हो तो ध्वांक्ष तथा विजय नाम के घर के आगे अलिन्द हो तो समृद्ध नाम का घर होता है। इस विधि से रम्यादि आठ घर होते हैं।



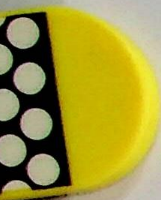
३.२.४ सुन्दर आदि सोलह घर

ध्रुव आदि घरों में षट्दारु लगाए तो वह सुन्दर आदि सोलह घर होते हैं। ध्रुव नाम के घर में एक षट्दारु (दो पटिए तथा चार खम्बे) हो तो सुन्दर नाम का घर होता है। धान्य में षट्दारु हो तो वरद, जय में हो तो भद्र, नन्द में हो तो प्रमुद, खर में हो तो विमुख, कान्त घर में एक षट्दारु हो तो शिव नाम का घर होता है।

तत्सर्वलाभं च विशालसंज्ञं तथा विलक्षं त्वशुभं ध्वजं च।
उद्योतसंज्ञं त्वथ भीषणं च सौम्याजिते स्तः कुलनन्दनं च।।५

मनोरम घर में एक षट्दारु हो तो सर्वलाभ नाम का घर होता है। सुवक्त्र में विशाल, दुर्मुख में विलक्ष, क्रूर में अशुभ, विपक्ष में ध्वज, धनद में उद्योत, क्षय में भीषण, आक्रन्द में सौम्य, विपुल में अजित तथा विजय नाम के घर में षट्दारु हो तो कुलनन्दन नाम का घर होता है।

सुन्दर आदि सोलह घर	
ध्रुव आदि घरों में षट्दारु लगाए तो वह सुन्दर आदि सोलह घर होते हैं।	
षटदारू लगाए तो	घर का नाम
ध्रुव	सुन्दर
धान्य	वरद
जय	भद्र
नन्द	प्रमुद
खर	विमुख
कान्त	शिव
मनोरम	सर्वलाभ
सुवक्त्र	विशाल
दुर्मुख	विलक्ष
क्रूर	अशुभ
विपक्ष	ध्वज
धनद	उद्योत
क्षय	भीषण
आक्रन्द	सौम्य
विपुल	अजित
विजय	कुलनन्दन



३.२.५ हंस आदि सोलह घर

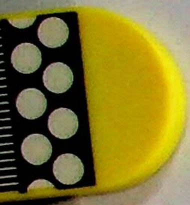
शार्दूलविक्रीडित

पूर्वालिन्दसमस्तकेषु युगलं पट्टश्च शालान्तरे
हंसं चैव सुलक्षणं च परतः सौम्यं हयं भावुकम्।
तस्मादुत्तमरौचिरे च सततं क्षेमं तथा क्षेपकं
चोद्वृत्तं वृषमुच्छ्रितं च व्ययमानन्दं सुनन्दं क्रमात्।।८

पहले ध्रुव आदि जो घर कहे है, उनमें जहाँ एक अलिन्द करने का कहा है, वहाँ दो अलिन्द और उन अलिन्दों की शाला में दो पटिए लगवाए तो ध्रुव आदि का रूप बदलकर हंस आदि सोलह घर होते हैं।

इनके नाम इस प्रकार हैं- हंस, सुलक्षण, सौम्य, हय, भावुक, उत्तम, रौचिर, सतत, क्षेम, क्षेपक, उद्वृत, वृष, उच्छ्रित, व्यय, आनन्द, सुनन्द।

ध्रुव नाम के घर में अलिन्द नहीं उनकी छत उनके मुख के आगे (द्वार के आगे) एक अलिन्द करे तो पटिया लगवाए हंस नाम का घर होता है। धान्य घर के मुख के आगे एक अलिन्द हो तो उसके आगे दूसरा अलिन्द कर पटिया लगाए तो सुलक्षण घर होता है। जय घर के दाहिनी ओर एक अलिन्द हो तो उसके आगे दूसरा अलिन्द कर पटिया लगवाए तो सौम्य नाम का घर होता है। नन्द घर के मुख के आगे तथा दाहिनी ओर एक-एक अलिन्द हो तो प्रत्येक के आगे एक-एक अलिन्द कर नन्द में पटिए लगवाए तो हय नाम का घर होता है। प्रत्येक घर के पीछे एक अलिन्द हो तो उसके आगे दूसरा अलिन्द कर घर में पटिए लगवाए तो भावुक नाम का घर होता है। इसी प्रकार कान्त में करने पर उत्तम, मनोरम में करने पर रौचिर (रुचिर), सुमुख में करने पर सतत, दुर्मुख में करने पर क्षेम, क्रूर में करने पर क्षेपक, विपक्ष से उद्वृत, धनद से वृष, क्षय से उच्छ्रित, आक्रन्द से व्यय, विपुल से आनन्द तथा विजय नाम के घर के चारों ओर अलिन्द के आगे एक-एक अलिन्द बनाकर विजय में पटिया लगवाए तो सुनन्द नाम का घर होता है।



हंस आदि सोलह घर	
ध्रुव नाम के घर में अलिन्द नहीं उनकी छत उनके मुख के आगे (द्वार के आगे) एक अलिन्द करे तो पटिया लगवाए हंस नाम का घर होता है।	
अलिन्द करें, पटिया लगवाए	नाम
ध्रुव	हंस
धान्ये	सुलक्षण
जय	सौम्य
नन्द	हय
प्रत्येक घर	भावुक
कान्त	उत्तम,
मनोरम	रौचिर (रुचिर),
सुमुख	सतत,
दुर्मुख	क्षेम,
क्रूर	क्षेपक,
विपक्ष	उद्धत,
धनद	वृष
, क्षय	उच्छ्रित,
आक्रन्द	व्यय,
विपुल	आनन्द
विजय	सुनन्द

३.२.६ अलंकृत आदि सोलह घर

उपजाति

मध्येऽपवर्गं ध्रुवकादिकानामलङ्कृताह्वं प्रथमं च तत्र।

ततोऽप्यलङ्कारमिति क्रमेण ख्यातं तदन्यद्रमणं च पूर्णम्।।९।।

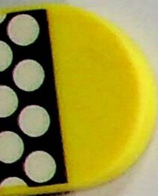
तत्रेश्वरं तदनु पुण्यमतः सुगर्भम्

प्रोक्तं गृहं कलशदुर्गतमेव रिक्तम्।

स्यादीप्सितं तदनु भद्रकवञ्चिते च

दीनं गृहं विभवकामदमेव संख्या।।१०।।

ध्रुव आदि घर में अपवर्क(र्ग) (छोटा कमरा, कोठरी) आए तो अलंकृत आदि सोलह घर होते हैं। ध्रुव नाम के घर में बाईं ओर अपवर्क(र्ग) आए तो अलंकृत, धान्य का अलंकार, जय का रमण, नन्द का पूर्ण हो जाता है। इसी प्रकार खर में बाईं ओर अपवर्क(र्ग) आए तो ईश्वर,



कान्त में पुण्य, मनोरम में सुगर्भ, सुमुख में कलश, दुर्मुख में दुर्गत, क्रूर में रिक्त, विपक्ष में ईप्सित, धनद में भद्रक, क्षय में वञ्चित, आक्रन्द में दीन, विपुल में विभय तथा विजय घर के बाईं ओर अपवर्क(र्ग) आए तो कामद नाम का घर होता है। ध्रुव आदि घरों में अपवर्क(र्ग) व षट्दारु लगाए तो प्रभव आदि सोलह घर होते हैं।

अलंकृत आदि सोलह घर	
ध्रुव आदि घर में अपवर्क(र्ग) (छोटा कमरा, कोठरी) आए तो अलंकृत आदि सोलह घर होते हैं।	
घर में अपवर्क आए तो	नाम
ध्रुव	अलंकृत
धान्य	अलंकार
जय	रमण
नन्द	पूर्ण
खर	ईश्वर
कान्त	पुण्य
मनोरम	सुगर्भ
सुमुख	कलश
दुर्मुख	दुर्गत
क्रूर	रिक्त
विपक्ष	ईप्सित
धनद	भद्रक
क्षय	वञ्चित
आक्रन्द	दीन
विपुल	विभय
विजय	कामद
ध्रुव	प्रभव

३.२.७ प्रभव आदि सोलह घर

उपजाति

षड्दारु सर्वेष्वपवर्गकेषु प्रभावसंज्ञं त्वथ भावितं च।
रुक्मं तथान्यं तिलकं च तद्वत् स्यात् क्रीडनं सौख्यमतो यशोदम्।।११।।

मालिनी

कुमुदमपि च कालं भासुरं भूषणञ्च



वसुधरमथ गेहं धान्यनाशं तदन्यत्।
कुपितमपि च वित्तं वृद्धिदं प्रोक्तमेतत्
तदनु कुलसमृद्धं षोडशं प्रोक्तमाद्यैः।।१२।।

ध्रुव नाम के घर के अपवर्क(र्ग) में षट्दारु हो तो प्रभव (प्रभाव), धान्य में हो तो भावित, जय में रुक्म, नन्द में हो तो तिलक, खर में हो तो क्रीडन, कान्त में हो तो सौख्य, मनोरम में हो तो यशोद, सुवक्त्र में हो तो कुमुद, दुर्मुख में हो तो काल, क्रूर में हो तो भासूर, विपक्ष में हो तो भूषण, धनद में हो तो वसुधर, क्षय में हो तो धान्यनाश, आक्रन्द में हो तो कुपित, वैपुल में वित्तवृद्धि तथा विजय के अपवर्क(र्ग) में षट्दारु हो तो कुलसमृद्ध नाम का घर होता है।

प्रभव आदि सोलह घर	
घर के अपवर्क(र्ग) में षट्दारु	नाम
ध्रुव	प्रभव (प्रभाव)
धान्य	भावित
जय	रुक्म
नन्द	तिलक
खर	क्रीडन
कान्त	सौख्य
मनोरम	यशोद
सुवक्त्र	कुमुद
दुर्मुख	काल
क्रूर	भासूर
विपक्ष	भूषण
धनद	वसुधर
क्षय	धान्यनाश
आक्रन्द	कुपित
वैपुल	वित्तवृद्धि
विजय	कुलसमृद्ध

३.२.८ चूड़ामणि आदि सोलह घर

सर्वे मुखालिन्दसमन्विताश्च दारुद्विषट्कं ह्यपवर्गमध्ये।
ततश्च चूडामणिकं प्रभद्रं क्षेमं तथा शेखरमुच्छ्रितञ्च।

विशालसंज्ञं त्वथ भूतिदं च हृष्टं विरोधं कथितं क्रमेण।
तत्कालपाशं हि निरामयं च सुशालरौद्रे मुनिसम्मतं च।।
मेघं गृहं चैव मनोरमं च सुभद्रसंज्ञं कथिता च संख्या।
इत्येकशालानि गृहाणि विद्यात्छतं च चत्वार्यधिकं ध्रुवादेः।।

अपवर्ग के साथ षट्दारु सहित जो प्रभाव आदि सोलह घर कहे हैं उन घरों के मुख के आगे एक-एक अलिन्द लगाए तो चूडामणि आदि घर होते हैं। इस विधि से प्रभव (प्रभाव) के आगे एक अलिन्द लगाए तो चूडामणि, भावित से प्रभद्र, रुक्म से क्षेम, तिलक से शेखर, क्रीडन के घर के मुख आगे एक अलिन्द बनवाए तो उच्छ्रित नाम का घर होता है।

सौम्य से विशाल, यशोद से भूतिद, कुमुद से हृष्ट, काल से विरोध, भासुर से कालपाश, भूषण से निरामय, वसुधर से सुशाल, धान्य से रौद्र, कुपित से मेघ, वित्तवृद्धि से मनोभव तथा कुलसमृद्ध घर के मुख के आगे एक अलिन्द हो तो सुभद्र नाम का घर होता है। इस प्रकार ध्रुव आदि घर लेकर एक शाला के एक सौ चार घर होते हैं।

चूड़ामणि आदि सोलह घर	
अपवर्ग के साथ षट्दारु सहित घर, मुख के आगे एक-एक अलिन्द	नाम
प्रभव (प्रभाव)	चूडामणि
भावित	प्रभद्र
रुक्म	क्षेम
तिलक	शेखर
क्रीडन	उच्छ्रित
सौम्य	विशाल
यशोद	भूतिद
कुमुद	हृष्ट
काल	विरोध
भासुर	कालपाश
भूषण	निरामय
वसुधर	सुशाल
धान्य	रौद्र
कुपित	मेघ
वित्तवृद्धि	मनोभव
कुलसमृद्ध	सुभद्र

आर्या

अपवर्गं यत्कथितं तद्वामे धीमता गृहे कार्यम्।

यत् षड्दारुकमुदितं ज्ञेया सा पादिका श्रेणी।।१६।।

जिनमें अपवर्ग करने को कहा है तो वह बुद्धिमान घर के बाईं ओर बनवाए। जिसमें षट्दारु करने को कहा है, वह पादों अर्थात् स्तम्भों की पंक्ति है, (पटियों की श्रेणी, पटियों की ओल अथवा पटियों की पंक्ति, इन्हें षट्दारु जानना।)

३.२.९ द्विशाल घर

उपजाति

अथ द्विशालालयलक्षणानि पदैस्त्रिभिः कोष्ठकरन्ध्रसंख्या।

तन्मध्यकोष्ठं परिहृत्यं युग्मं शालाश्चतस्त्रो हि भवन्ति दिक्षु।।१७।।

द्विशाला घर बनवाने के लिए भूमि के तीन-तीन भाग करके, नौ पद में बांट दें। बीच का पद छोड़कर दो-दो पद में दोशाला बनवाए। इस प्रकार से चार दिशाओं में चार प्रकार की शाला होती है।

वसन्ततिलका

याम्याग्निगा च करिणी धनदाभिवक्त्रा

पूर्वानना च महिषी पितृवारुणस्था।

गावी यमाभिवदनापि च रोगसौम्ये

छागी महेन्द्रशिवयोर्वरुणाभिवक्त्रा।।१८।।

दक्षिण व अग्नि कोण के पद में दोशाला हो तथा दोनों का मुख उत्तर दिशा में हो तो वह करिणि (हस्तिनी) शाला कहलाती है। नैर्ऋत्य व पश्चिम में शाला तथा पूर्व में मुख हो तो महिषी कहलाती है। वायु व उत्तर में शाला व दक्षिण में मुख हो तो गावी शाला कहलाती है।

द्विशाल घर		
दिशा	मुख	नाम
दक्षिण व अग्नि कोण में दोशाला	मुख उत्तर दिशा	करिणि (हस्तिनी) शाला
नैर्ऋत्य व पश्चिम में शाला	पूर्व में मुख	महिषी
वायु व उत्तर में शाला	दक्षिण में मुख	गावी शाला
पूर्व तथा ईशान में शाला	पश्चिम में मुख	छागी शाला



पूर्व तथा ईशान में शाला तथा पश्चिम में मुख हो तो छागी शाला कहलाती है।

शार्दूलविक्रीडित

हस्तिन्यो महिषी द्विशालभवनं सिद्धार्थकं तच्छुभं
गावी माहिषसंज्ञकं मृतिकरं तद्यामसूर्यं भवेत्।
दण्डं छागगवान्वितं धनहरं हस्तिन्यजाभ्यां तथा
काचं गोकरिणीयुतं नहि शुभं चुल्ली च पूर्वापरम्।।१९

करिणी व महिषी से निर्मित दो शाला घर हो तो वह घर सिद्धार्थ कहलाता है, नामानुसार इसका फल शुभ है। गावी व महिषी से निर्मित दो शाला घर हो तो वह घर यमसूर्य कहलाता है, यह मृत्युकारक होता है। छागी व गावी ये दो शालाएँ एक साथ हो तो वह घर दण्ड कहलाता है तथा धन का नाश करता है। हस्तिनी व छागी ये दो शालाएँ एक साथ हो तो वह घर काच कहलाता है उसका फल भी नाश है। करिणी व गावी ये दो शालाएँ एक साथ हो तो वह घर चुल्ली कहलाता है तथा यह घर शुभ नहीं है।

दो शालाओं से निर्मित घर एवं इनके परिणाम		
दो शालाएं	घर	परिणाम
करिणी व महिषी	सिद्धार्थ	फल शुभ
गावी व महिषी	यमसूर्य	मृत्युकारक
छागी व गावी	दण्ड	धन का नाश
हस्तिनी व छागी	काच	नाश
करिणी व गावी	चुल्ली	शुभ नहीं

इन्द्रवज्रा

नामान्यतः सन्ततः शान्तिदं च स्याद् वर्धमानं
त्वथ कुक्कुटाख्यम्(कुर्कुटाख्यम्)।
हस्त्यादितो नाम चतुष्टयं च हर्म्यं द्विशालं प्रथमं तथैव।।२०।।

दो हस्तिनी शाला से युक्त द्विशाल घर सन्तत कहलाता है। दो महिषी शाला हो तो शान्तिद कहलाता है। दो गावी शाला हो तो वर्धमान कहलाता है। दो छागी शाला हो तो कुक्कट (कुर्कुट) घर कहलाता है। इस प्रकार हस्तिनी आदि भवनों के नाम पहले कहे हैं।



यत्स्वस्तिकं तद्रसदारुमध्यऽलिन्दस्तथाग्रे कथितं द्विशालम्।
हंसाख्यकं स्यादथ वर्धमानं कीर्ते(कीर्ति)र्विनाशं भवनं चतुर्थम्।।

सन्तत आदि द्विशाल घर के आगे (मुख भाग में) अलिन्द हो तथा अलिन्द के मध्य में षट्दारु हो तो वह स्वस्तिक नाम का घर कहलाता है। शान्तिद में हो तो हंस, वर्धमान में हो तो वर्धमान, कुक्कुट में हो तो कीर्तिविनाश कहलाता है।

अलिन्दयुग्मं पुरतो विदध्यात् षड्दारुमध्येऽपि च शान्तसंज्ञम्
तस्माद् गृहे हर्षणवैपुले च तथा चतुर्थं कथितं करालम्।

सन्तत घर के आगे दो अलिन्द एवं घर तथा अलिन्द के मध्य षट्दारु हो तो शान्त नाम का घर कहलाता है। शान्तिद के घर के आगे दो अलिन्द व शाला के मध्य षट्दारु हो तो हर्षण, वर्धमान के घर के आगे दो अलिन्द व शाला के मध्य षट्दारु हो तो विपुल, कुक्कुट के घर के आगे दो अलिन्द व शाला के मध्य षट्दारु हो तो कराल नाम का घर कहलाता है।

इन्द्रवज्रा

तस्मिन् गृहे दक्षिणतो ह्यलिन्दे वित्तं च चित्तं धनकालदण्डे।
वामे पुनर्बन्धुदं पुत्रदं स्यात् सर्वं तु तस्मिन्नपि कालचक्रम्।।

सन्तत घर के दाहिनी ओर अलिन्द हो तो वह वित्त, शान्तिद में हो तो चित्त, वर्धमान में हो तो धन तथा कुक्कुट घर के दाहिनी ओर एक अलिन्द हो तो वह कालदण्ड कहलाता है।

सन्तत घर के बाईं ओर एक अलिन्द हो तो वह बन्धुद, शान्तिद के हो तो पुत्रद, वर्धमान में हो तो सर्वगृह तथा कुक्कुट में बाईं ओर अलिन्द हो तो कालचक्र नाम का घर कहलाता है।

उपजाति

लघुश्च पश्चात् पुरतोऽपि युग्मं स्याद् दक्षिणैको रसदारुमध्ये।
तत् त्रैपुरं सुन्दरमेव नीलं स्यात् कौटिलं चैव यथाक्रमेण।
प्रदक्षिणैकः पुरतोऽपि युग्मं षट्कं गृहान्तः किल शारदाख्यम्।
ततो द्वितीयं खलु शास्त्रदं स्याच्छीलं तथा कोटरमेव संख्या।।

सन्तत् आदि घरों के आगे दो अलिन्द, पीछे एक अलिन्द तथा दाहिनी ओर षट्दारु के साथ एक अलिन्द हो तो वह घर त्रैपुर कहलाता है। शान्तिद घर में हो तो सुन्दर, वर्धमान घर में हो तो नील, कर्कटा (कुक्कुट) में हो तो कौटिल नाम का घर कहलाता है।



सन्तत घर के दाहिनी, पीछे व बाईं ओर तीनों दिशाओं में एक-एक अलिन्द हो तथा मुख के आगे दो अलिन्द हो व षट्दारु हो तो वह शारद कहलाता है। शान्तिद के हो तो शास्त्रद, वर्धमान में हो तो शील, कुक्कुट (कर्कटा) में हो तो कोटर नाम का घर कहलाता है।

सौम्यं गृहं मण्डपसंयुतं चेत्तत्तुल्यरूपं विबुधैर्विधेयम्।
सुभद्रमस्मादपि वर्धमानं क्रूरं च सर्वेष्वशुभं चतुर्थम्।
मुखे त्रयं दक्षिणपश्चिमैकं षड्दारुकं श्रीधरनामधेयम्।
प्रोक्ते गृहे कामदपुष्टिदे च चतुर्थकं कीर्तिविनाशमेव।।

सन्तत घर में आगे मण्डप हो तो सौम्य, शान्तिद के आगे हो तो सुभद्र, वर्धमान में आगे हो तो वर्धमान तथा कुक्कुट के आगे मण्डप हो तो क्रूर नाम का घर कहलाता है। प्रत्येक द्विशाल घर में चौथा घर अशुभ है।

सन्तत आदि द्विशाल घर के आगे दो अलिन्द हो और उनके आगे मण्डप हो तथा घर के दाहिनी व पीछे एक-एक अलिन्द, बीच में षट्दारु हो तो वह श्रीधर, शान्तिद में हो तो कामद, वर्धमान में हो तो पुष्टिदा एवं कुक्कुट में हो तो वह कीर्तिविनाश कहलाता है।

वामे तथा दक्षिणपश्चिमैको युग्मं मुखे मण्डपमग्रतश्च।
श्रीभूषणं श्रीवसनं ततश्च श्रीशोभकीर्तिक्षयमेव तद्वत्।।२८।।

पूर्वोक्त चारों द्विशाल घर में बाईं, दाईं, पीछे एक-एक अलिन्द, घर के मुख में आगे दो अलिन्द और उनके आगे मण्डप में हो तो वह श्रीभूषण, श्रीवसन, श्रीशोभ एवं कीर्तिक्षय नाम का घर कहलाता है।

एकोऽपरे दक्षिणवामतश्च षणमध्यगं श्रीधरयुग्मपूर्वम्।
सर्वार्थदं स्यान्मुखतस्त्रयं च लक्ष्मीनिवासं कुपितं च नाम्ना।।

पूर्वोक्त द्विशाल घर के पीछे, दाएँ, बाएँ एक अलिन्द हो तथा घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हो बीच में षट्दारु हो तो श्रीधरयुग्म, सर्वार्थद, लक्ष्मीनिवास, कुपित नाम का घर कहलाता है।

उपजाति

युग्मं मुखे मण्डपमेव चाग्रे युग्मं तथा दक्षिणतोऽन्तभित्तिः।
पृष्ठैक उद्योतकबाहुतेजः सुतेज एवं कलहावहं स्यात्।।



पूर्वोक्त द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द हो तथा उनके आगे एक मण्डप हो, घर के दाहिनी ओर दो अलिन्द हो, अन्त में दीवार हो, पीछे भी एक अलिन्द हो तो उद्योतक, बाहुतेज, सुतेज एवं कलहावह कहलाता है।

उद्योतके पश्चिमभागतो द्वौ कुर्याद् विशालं च बहोर्निवासम्।
तत्सृष्टिदं कोपसमानमन्त्यमनुक्तषट्कं क्रमतो विधेयम्।।

उद्योत आदि चार घर के पीछे दो अलिन्द हो, पर षट्दारु न हो तो विशाल, बाहुतेज के पीछे दो अलिन्द हो पर षट्दारु न हो तो बहुनिवास, सुतेज के पीछे दो अलिन्द पर षट्दारु न हो सृष्टिद, इसी प्रकार कलहावह के पीछे दो अलिन्द पर षट्दारु न हो तो कोपसमान नाम का घर कहलाता है।

लघुत्रिकं पूर्वदिशाविभागे एको भवेद् दक्षिणवामपश्चात्
महान्तमेतन्महितं च दक्षं कुलक्षयं मण्डपसंयुतं स्यात्।।३२।।

पूर्वोक्त द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हो, उनके आगे एक मण्डप हो तथा दाईं, बाईं व पीछे एक-एक अलिन्द व मण्डप हो तो महान्त, महित, दक्ष तथा कुलक्षय कहलाता है।

भ्रमद्वयं दिक्त्रितये विभागे मुखे त्रिकं मण्डपमग्रतश्च।
प्रतापवर्द्धन्यमिदं च दिव्यं सुखाधिकं सौख्यहरं चतुर्थम्।।३३।।

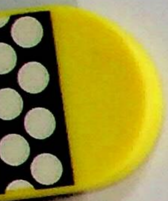
पूर्वोक्त द्विशाल घर का तीनों दिशाओं में दो-दो अलिन्द हो तथा घर के मुख के आगे तीन अलिन्द व उनके आगे एक मण्डप हो तो वह घर प्रतापवर्धन, दिव्य, सुखादि तथा सौख्यहर कहलाता है।

तस्यैव रूपं रसदारुयुग्मं पुनस्त्वलिन्दोऽजगतं ततश्च।
स्यात् सिंहनादं त्वथ हस्तियानं ज्ञेयं तथा कण्टकमेतदन्त्यम्।।३३।।

पूर्वोक्त घर के सामने दो षट्दारु हो पहले के समान अलिन्द व मंडप हो तो वह अजगत, सिंहनाद, हस्तियान, कण्टक नाम का घर कहलाता है।

उपेन्द्रवज्रा

शान्तादिगेहानि च षोडशैव द्विशालकानीह यथाक्रमेण।
नामानि चत्वार्यपि रूपमेकं हस्त्यादिभेदैः क्रमतो विधेयम्।



शान्तादि द्विशाल के सोलह घर के एक-एक रूप हैं पर हस्तिन्यादि शालाओं के भेद से एक-एक रूप के चार-चार नाम होते हैं। इस प्रकार चौंसठ नाम के घर होते हैं।

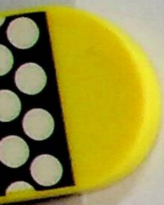
विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):- राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय ६ में विभिन्न प्रकार के एकशाला तथा सोलह प्रकार के द्विशाला वाले गृहों का वर्णन किया गया है। जब हम प्लाट या भूखण्ड की एक ही दिशा में कक्षों का निर्माण करते हैं तो वह गृह एक शाल गृह कहलाता है। जब निर्माण किन्हीं दो दिशाओं में करते हैं तो वह गृह द्विशाल गृह कहलाता है।

एक शाला गृह के मुख्य रूप से अलिन्द (बरामदा, ओटला आदि) के आधार पर सोलह भेद या प्रकार होते हैं। इनका जो नाम है, वही उसका गुण है। उदाहरण के लिए धांन्य नामक एकशाला गृह धान्य से परिपूर्ण रहता है। वास्तुशास्त्र के अनेक ग्रन्थों में शाल भवनों का वर्णन है, परन्तु जितना विस्तार व सरल रूप से राजवल्लभ में विषय को उद्‌घाटित किया है वह अन्यत्र दुर्लभ है।

इन्हीं एक शाला भवनों के षड्‌दारु (छह लकड़ी) आदि से विभिन्न भेद होते हैं। यहाँ तात्पर्य यह है कि आधुनिक अभियान्त्रिकी से बहुत आगे जाकर यह बताया है बरामदे का निर्धारण गृह के गुणों को प्रभावित करता है।

इन्हीं दो एकशाला वाले गृहों मिलने से दोशाला वाले गृह बनते हैं तथा इन्हीं के आधार पर दोशाला वाले गृहों के विभिन्न भेद होते हैं।

इस प्रकार से उचित प्रकार के अलिन्द का चयन कर उचित गृह का निर्माण किया जा सकता है।



३.३ दो शाला, तीन शाला व चार शाला वाले घर

३.३.१ दोशाला घर

उपजाति

द्विशालगेहानि च षोडशैव वास्तूदधेः सारतरं पुनश्च।
वक्ष्याम्यलिन्दः खणको लघुश्च द्वौ तिन्दुकाख्यौ कथितावलिन्दौ।।१।।

वास्तुरूपी समुद्र के सार रूपी सोलह द्विशाल घर कहे हैं। उनमें अलिन्द, षण और लघु कहते हैं। ये तीन नाम अलिन्द के हैं। दो अलिन्द हो तो वह तिन्दुक कहलाता है।

सूर्यं द्विशालं लघुरस्य वामे मुखे त्रिकं दक्षिणतस्तथैकम्।
वेदा मुखे वासवमेव गेहं वामेऽपसव्ये लघुरेक एव।।२।।

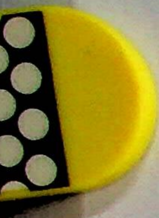
जिस द्विशाल घर के बाईं ओर एक लघु (अलिन्द), मुख के आगे तीन अलिन्द तथा दाईं ओर एक अलिन्द हो तो वह सूर्य नाम का घर कहलाता है। जिस द्विशाल घर के मुख के आगे चार अलिन्द हो, बाईं व दाईं ओर एक-एक अलिन्द हो तो वह वासव घर कहलाता है।

प्रासादसंज्ञं मुखतस्त्रयं च प्रदक्षिणं तिन्दुकवेष्टितं स्यात्।
अलिन्दयुक्तं विमलं द्विशालं तद् वीर्यवन्तं सह मण्डपेन।।३।।

जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द, दाएँ व बाएँ व पीछे एक-एक तिन्दुक (दो-दो अलिन्द) हो तो वह प्रासाद घर कहलाता है। प्रासाद के आगे एक अलिन्द हो तो विमल, विमल के आगे एक मण्डप हो तो वीर्यवन्त कहलाता है।

अथ द्विशालेषु समस्तकेषु मध्ये विद्ध्याद् रसदारु चैकम्।
तदा भवेद् भासुरमग्रयग्ममेको लघुर्दक्षिणदिग्विभागे।।४।।

जिस द्विशाल के मुख के आगे दो अलिन्द हो, दाईं ओर एक अलिन्द हो, मध्य में षट्दारु हो तो वह भासुर नाम का घर कहलाता है।



इन्द्रवज्रा

एको लघुर्दक्षिणपूर्वगः स्यात् तद् दुन्दुभाह्वं मुखमण्डपेन।
द्वौ पूर्वतो दक्षिणतस्तथैको युग्मं भवेत् मण्डपगं सुतेजः।।५।।

जिस द्विशाल घर के दाईं ओर एक अलिन्द से मुख के आगे एक अलिन्द की ओर जाता है, मुख के आगे एक मण्डप हो तो वह दुन्दुभ तथा जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द, दाईं ओर एक अलिन्द तथा दोनों ओर एक-एक मण्डप (? सामने दो मण्डप) हो तो वह सुतेज नाम का घर कहलाता है।।

उपजाति

मुखे गुणा दक्षिणतस्तथैको द्वौ मण्डपेऽस्मिन् हयजाभिधानम्।
महान्तगेहं मुखगे त्रिकेषु युग्मान्वितं मण्डपमेतदेव।।६।।

जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द के आगे दो (एक) मण्डप तथा घर में दाईं ओर एक अलिन्द व (मण्डप) हो तो हयज कहलाता है। जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द के आगे दो मण्डप हो तो वह महान्त कहलाता है।

मुखे तथा मण्डपके च युग्मं वामेऽपसव्ये युगलं लघोश्च।
लोकत्रयाडम्बरमस्य नाम षडक्षरं शम्भुगणेशयोश्च।।७।।

जिस द्विशाल घर के आगे दो अलिन्द के आगे दो मण्डप, घर के दाईं ओर व बाईं ओर दो अलिन्द हो तो वह छह अक्षरों के नाम वाला त्रैलोक्याडम्बर नाम का घर कहलाता है। यह महादेव व गणपति का घर है।।

युग्मं मुखे मण्डपगं द्वयं स्यात् तथा द्वयं दक्षिणवामतश्च।
एको हि पश्चात् वरदाभिधानं श्रीविश्वकर्मोक्तमतद् द्विशालम्।।८।।

जिस द्विशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द के आगे दो मण्डप, घर के दाईं व बाईं ओर दो-दो अलिन्द एवं पीछे एक अलिन्द हो वह वरद कहलाता है। ऐसा विश्वकर्मा ने कहा है।

मालीनसंज्ञं मुखगैश्चतुर्भिर्युग्मं भवेद् दक्षिणवामभागे।
युग्मं तथा पश्चिमदिग्विभागे तस्याग्रतो मण्डप एक एव।।९।।



जिस द्विशाल घर के मुख के आगे चार अलिन्द के आगे एक मण्डप तथा घर के दाएँ, बाएँ, पीछे दो-दो अलिन्द हो तो वह मालिन कहलाता है।

शार्दूलविक्रीडित

प्राग् रामा लघवो विलासभवने वामे लघुर्दक्षिणे
तच्चेन्मण्डपसंयुतं च कमलं स्याद् वृद्धिदं सौख्यदम्।
वेदाः सुन्दरके मुखे च सततं वामे खणो दक्षिणे
तस्याग्रे मुखमण्डपश्च फलदा एवं गृहाः षोडशः।।१०।।

जिस द्विशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हो, घर के दाएँ व बाएँ एक-एक अलिन्द हो तो विलास नाम का घर कहलाता है। विलास के आगे एक मण्डप हो तो कमल कहलाता है, जो वृद्धि व सुख देता है।

जिस द्विशाल घर के मुख के आगे चार अलिन्द के आगे एक मण्डप, दाएँ व बाएँ ओर एक-एक अलिन्द हो तो सुन्दर नाम का घर कहलाता है। इस प्रकार ये सोलह प्रकार के घर फलदाई कहें हैं।

सोलह प्रकार के द्विशाल घर -	
१	तिन्दुक
२	सूर्य
३	वासव घर
४	प्रासाद घर
५	वीर्यवन्त
६	भासुर घर
७	दुन्दुभ
८	सुतेज घर
९	हयज
१०	महान्त
११	त्रैलोक्याडम्बर
१२	वरद
१३	मालिन
१४	विलास
१५	कमल
१६	सुन्दर

३.३.२ तीन शाला वाले घर

उपजाति

अथ त्रिशालं त्रिदशं खणैकं स्यात् त्रैदशावाससुरूपसंज्ञम्।
तथा चतुर्थं कुमुदाभिधानं हस्त्यादिभेदैः क्रमतो विधेयम्।।११।।

जिस तीन शाल घर के आगे एक अलिन्द हो तो हस्तिनी शाला आदि के भेद से चार प्रकार के घर होते हैं। हस्तिनी शाला का मुख उत्तर के सामने हो तो त्रिदश, पूर्व में हो तो त्रिदशावास, दक्षिण में हो तो सुरूप, पश्चिम में हो तो कुमुद कहलाता है।

हस्तिनी के चार भेदः-

मुख दिशा	संज्ञा
उत्तर	त्रिदश
पूर्व	त्रिदशावास
दक्षिण	सुरुप
पश्चिम	कुमुद

छत्रं द्व्यलिन्दं च चथैव पुत्रं हरं च कामं त्वथ ह्रस्वभद्रम्।
षट्कं च मध्ये स्वधनं कुबेरं पक्षं तथा कामदमेतदेव।।१२।।

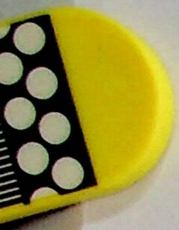
जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे दो अलिन्द हो और शाला का मुख उत्तर में हो तो छत्र, पूर्व में हो तो पुत्रहर, दक्षिण में हो तो काम तथा पश्चिम में हो तो ह्रस्वभद्र घर कहलाता है।

उन घर व अलिन्द के मध्य षटदारु हो और मुख उत्तर में हो तो स्वधन, पूर्व में हो तो कुबेर, दक्षिण में हो तो पक्ष, तथा पश्चिम कामद नाम का घर कहलाता है।

अलिन्दयुग्मं त्वथ भद्रयुक्तं मध्यैकपट्टं जलजाभिधानम्।
स्यान्मेघजं चैव गजं कृपं (तप) च षड्दारुमध्येष्वखिलेष्वथातः।।१३।।

जिस त्रिशाल घर के आगे दो अलिन्द हो उनके आगे एक भद्र हो तथा मध्य में षट्दारु एवं मुख उत्तर में हो तो जलज, पूर्व में हो तो मेघज, दक्षिण में हो तो गज तथा पश्चिम में मुख हो तो कृप (तप) नाम का घर कहलाता है। अब जितने त्रिशाल घर कहें हैं वे सब षटदारु युक्त जानें।

स्याद् वैजयं मण्डपह्रस्वभद्रं जयं निनादं त्वथ कीर्तिजं च।
भद्रो न ह्रस्वाधिकसाकलाह्वं निर्लोभकं वासदकौशले च।।१४।।



जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे एक हस्व (लघु) (अलिन्द) हो तो उसके आगे मण्डप के आगे भद्र तथा मुख उत्तर में हो तो विजय, पूर्व में हो तो जय, दक्षिण में हो तो निनाद, पश्चिम में हो तो कीर्तिज घर कहलाता है। ऊपर कहे प्रथम विजय घर में भद्र के स्थान पर अलिन्द हो और मुख उत्तर में हो तो समल, पूर्व हो तो निर्लोभ, दक्षिण में हो तो वासद तथा पश्चिम में हो तो कौशल नाम का घर कहलाता है।

इन्द्रवज्रा

त्र्येकं क्रमादीश्वरवारदाख्यं मीनं च कौशल्यमतः क्रमेण।
तद्वेद बुद्धिस्वजनं द्वितीयं स्यात् कोशदं नीलमिदं चतुर्थम्।।१५।।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हो तथा दाईं ओर एक अलिन्द एवं मुख उत्तर में हो तो ईश्वर, पूर्व में हो तो वरद्, दक्षिण में हो भीम तथा पश्चिम में हो तो कुशल नाम का घर कहलाता है।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द हो तथा बाईं ओर एक अलिन्द हो एवं घर का मुख उत्तर में हो तो बुद्धि, पूर्व में हो तो स्वजन, दक्षिण में हो तो कौशद, तथा पश्चिम में हो तो नील घर कहलाता है।

त्रिशाल घर
उत्तर के सामने हो तो त्रिदश
पूर्व में हो तो त्रिदशावास
दक्षिण में हो तो सुरूप
पश्चिम में हो तो कुमुद
शाला का मुख उत्तर में हो तो छत्र
पूर्व में हो तो पुत्रहर
दक्षिण में हो तो काम
पश्चिम में हो तो हस्वभद्र घर
उत्तर में हो तो स्वधन
पूर्व में हो तो कुबेर
दक्षिण में हो तो पक्ष
पश्चिम कामद घर
उत्तर में हो तो जलज
पूर्व में हो तो मेंघज
दक्षिण में हो तो गज
पश्चिम में मुख हो तो कृप (तप)





मालिनी

मुखगुणलघुवामे दक्षिणे चैक एव
वरदशरदमुक्तं दण्डकं काकपक्षम्।
इदमिह हि निनादं मण्डपेनाधिकं स्यात्
तदनु च गजनादं बाहुलं कीर्तिजाह्वम्।।१६।।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे तीन तथा दाएँ, बाएँ एक-एक अलिन्द हो, घर का मुख उत्तर में हो वरद, पूर्व में हो तो शरद, दक्षिण में हो तो दंडक एवं पश्चिम में हो तो काकपक्ष नाम का घर कहलाता है।

वरद घर के मुख के आगे एक मण्डप हो व मुख उत्तर दिशा में हो तो निनाद, पूर्व में हो तो गजनाद, दक्षिण में हो तो बाहुल तथा पश्चिम में हो तो कीर्तिज कहलाता है।

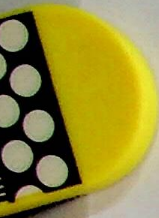
वंसन्ततिलका

सृष्ट्याब्धिरूपमुखमण्डपमेव सिंहं
ज्ञेये गृहे वृषगजे अपि कोशसंज्ञम्।
वामेऽधिकं च लघुना कथितं सुभद्रं
स्यान्मणिभद्रमपि रत्नजकाञ्चनाख्ये।।१७।।

घर के सामने प्रदक्षिण क्रम से (पूर्व, दक्षिण, पश्चिम व उत्तर) (? उत्तर या दक्षिण से प्रारंभ करें) दिशा में मण्डप हो तो त्रिशाल घर की संज्ञा क्रम से सिंह, वृष, गज, व कोश होती है। इन घरों में बाईं ओर एक-एक अलिन्द हो तो वह क्रम से सुभद्र, मणिभद्र, मणिरत्नज व काञ्चन कहलाता है।

मालिनी

युगमुखमपरैको भैरवं दक्षिणे च
भरतनरजमेतत् स्याच्चतुर्थं कुबरेम्।
पुनरपि लघुवामे हस्तियानं वियानं
हयजकृपजगेहं तच्चतुर्थं क्रमेण।।१८।।



जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे चार, दाएँ व पीछे एक-एक अलिन्द हो तो वह क्रमशः भैरव, भरत, नरज, कुबेर नाम का घर कहलाता है।

पूर्वोक्त त्रिशाल घर के बाएँ एक-एक अलिन्द हो तो क्रमशः हस्तियान, वियान, हयज, कृपज कहलाता है।

शार्दूलविक्रीडित

वर्णानां शुभदं च सागरगृहं पञ्चैव ह्रस्वामुखे
प्रोक्तं क्षीरदरत्नदाह्वयमिदं कोलाहलं चापरम्।।
षड्दारुद्वयभद्रसप्तलघवस्तिर्यग्युतं शालया

त्रिशाल घर
मुख उत्तर में विजय
पूर्व में जय
दक्षिण में निनाद
पश्चिम में कीर्तिज घर
उत्तर में समल
पूर्व में निर्लोभ
दक्षिण में वासद
पश्चिम में कौशल
मुख उत्तर में ईश्वर
पूर्व में वरद्
दक्षिण में भीम
पश्चिम में कुशल
मुख उत्तर में बुद्धि
पूर्व में स्वजन
दक्षिण में कौशद
पश्चिम में नील घर
उत्तर में वरद
पूर्व में शरद
दक्षिण में दंडक
पश्चिम में काकपक्ष
उत्तर में निनाद
पूर्व में गजनाद
दक्षिण में बाहुल
पश्चिम में कीर्तिज

गान्धर्वं क्षितिभूषणं च कथितं सर्वज्ञकं दर्प्यकम्।।१९।।

त्रिशाल के मुख के आगे पांच ह्रस्व तो क्रमशः सागर, क्षीरद, रत्नदायक, कोलाहल नाम का घर कहलाता है। ये चारों वर्ण के लिए सुखदाई है।

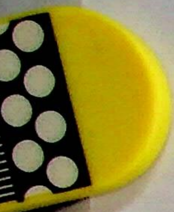
ऊपर कहे त्रिशाल घर के मध्य में दो षटदारु, मुख के आगे सात अलिन्द के आगे एक भद्र हो तो क्रमशः गन्धर्व, क्षितिभूषण, सर्वज्ञ तथा दर्प्यक नाम का घर कहलाता है।

धन्यं वृद्धिकरं त्रिशालमुदितं शालां विना गाविका
प्राक् शालारहितं शुभं निगदितं सुक्षेत्रमर्थप्रदम्।
चुल्ही(ल्ली)संज्ञमिदं करोति मरणं हीनं तथा याम्यया
पक्षघ्नं महिषीमृते च भवनं तत्पुत्रबन्धुक्षयम्।।२०।।

बिना गावि शाला वाला, त्रिशाल घर, उत्तर के मुख वाला घर धन्य कहलाता है। जो वृद्धिदायक है। पूर्व में शाला से रहित हो तो सुक्षेत्र कहलाता है। जो शुभ है तथा धन की प्राप्ति कराता है। बिना दक्षिण शाला का व दक्षिण मुख का त्रिशाल घर चुल्ही कहलाता है। जो गृहस्वामी की मृत्यु व हानि कराता है। महिषी शाला से हीन (या रहित) पश्चिम मुख वाला घर पक्षघ्न कहलाता है। पुत्र व भाई का नाश करता है।

त्रिशाल घर व उनके परिणाम	
त्रिशाल घर	परिणाम
उत्तर के मुख वाला घर धन्य	वृद्धिदायक
पूर्व में शाला से रहित सुक्षेत्र	धन की प्राप्ति
दक्षिण मुख का त्रिशाल घर चुल्ही	गृहस्वामी की मृत्यु व हानि
पश्चिम मुख वाला घर पक्षघ्न	पुत्र व भाई का नाश

त्रैशालानि च षोडश प्रथमतः सोमं च षड्दारुकं
तच्चैकेन पुरोऽपि शङ्करमिदं मध्ये क्रमात् विश्वतः।
रुद्रे द्वौ मुखतोऽपि दक्षिणलघुस्त्वेकाधिकं सागरं
चत्वारो नृपशोभिते च पुरतः प्राग्दक्षिणैको लघुः।।२१।।





पहले त्रिदशादि त्रिशाल एक अलिन्द वाले सोलह घर जो-जो कहे है, उन घरों में षटदारु हो तो सोम नाम का घर कहलाता है। उसके आगे एक अलिन्द जोड़ने पर वह शंकर घर कहलाता है। विश्व घर के मुख के आगे दो अलिन्द है। उसी प्रकार रुद्र घर के मुख के आगे दो अलिन्द हो, पर घर की दाईं ओर एक अलिन्द होता है। रुद्र घर के मुख के आगे एक अलिन्द बनाकर तीन अलिन्द करें तो रुद्र का नाम बदलकर सागर हो तथा पूर्व व दक्षिण में एक-एक अलिन्द हो तो वह नृपशोभित नाम का घर कहलाता है।

पञ्चाग्रे सकलं भ्रमश्च लघुना सर्वस्य तत् सौख्यदम्।
रागास्यं भ्रमसंयुतं च भवनं तत्सर्वशान्तं भवेत्।
प्राग्बाणं कुलनन्दनं क्रमतया त्वेकद्वयैकान्वितं
तस्मिन् दक्षिणसंयुते च लघुके कल्याणसंज्ञं तथा।।२२।।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे पांच अलिन्द हो तथा दाएँ, बाए व पीछे एक-एक अलिन्द हो तो सौख्यद कहलाता है। आगे छह अलिन्द तथा भद्र (भ्रम) से युक्त हो तो सर्वशान्त कहलाता है।

जिस घर के मुख के आगे पांच अलिन्द हों, दाएँ व बाएं एक-एक अलिन्द हो तो कुलनन्दन, दाएँ ओर एक और अलिन्द हो तो कल्याण कहलाता है।

सर्वाशासु लघुत्रयं शरमुखं तत्पादयुग्मं क्रमात्
तत् सौभाग्यविवर्धनं च भवनं राज्ञां सदा निर्मितम्।
आनन्दं मुखरागदक्षिणलघुर्वामे च पृष्ठे द्वयं
रागास्यं जनशोभनं गुणगणैकेनान्वितं सृष्टितः।।२३।।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे पांच, दाएँ, बाएँ व पीछे तीन-तीन अलिन्द हो तथा घर के मध्य दो षटदारु हो वह सौभाग्यविवर्धन घर कहलाता है। यह सौभाग्यवर्धन घर राजाओं का सदा बनवाना चाहिए।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे छह अलिन्द हो, दाईं, बाईं व पीछे दो-दो अलिन्द हो वह आनन्द कहलाता है।

जिस त्रिशाल घर के आगे छह अलिन्द हो, दाएँ व पीछे तीन-तीन तथा बाईं ओर एक अलिन्द हो वह घर का नाम जनशोभन है।



स्याद् गोवर्धनमग्रतो रसयुतं युग्माग्निनेत्रैः क्रमात्

सप्ताग्रे त्रिगुणत्रिकं च लघवो लोकत्रिके सुन्दरम्।

गेहं श्रीतिलकं च भद्रसहितं ह्रस्वेन हीनं मुखे

तद्युक्तं लघुना च भद्रसहितं विष्णुप्रियं भूपतेः।।२४।।

जिस घर के मुख के आगे छह अलिन्द हो, दाएँ ओर दो, पीछे तीन, बाईं ओर दो अलिन्द हो तो वह गोवर्धन कहलाता है।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे सात, दाईं, बाईं तथा पीछे तीन-तीन अलिन्द हो वह त्रैलोक्यसुन्दर कहलाता है।

त्रैलोक्यसुन्दर घर के आगे एक अलिन्द कम करके उसके स्थान पर एक भद्र बनवाए तो वह श्रीतिलक घर कहलाता है।

त्रैलोक्यसुन्दर घर के आगे एक भद्र हो तो वह विष्णुप्रिय नाम का घर कहलाता है। जो राजाओं को बनवाना चाहिए।

इन्द्रवज्रा

षड्दारुकं श्रीत्रिदशं त्रिशालं तच्छ्रीनिवासं मुखह्रस्वयुक्तम्

श्रीवत्सतः श्रीधरमेकवृद्ध्या श्रीभूषणं वेदमुखञ्च गेहम्।।२५।।

जिस त्रिशाल घर में षटदारु हो वह श्रीत्रिदश नाम का घर कहलाता है।

श्रीत्रिदश के मुख के आगे एक अलिन्द हो तो श्रीनिवास, दो अलिन्द हो तो श्रीवत्स, तीन हो तो श्रीधर तथा चार अलिन्द हो तो श्रीभूषण घर कहलाता है।

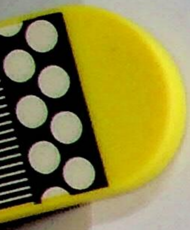
शार्दूलविक्रीडित

बाणैः श्रीजयमग्रतोऽपि ऋतुभिः श्रीतैलकं मन्दिरं

रागाग्रं रसदारुयुग्मसहितं तच्छ्रीविलासं भवेत्।

श्रीतेजोदयमग्रतश्च मुनिभिः षड्दारुयुग्मान्वितम्

सोमादित्रिदशादिभूपतिगृहाः पञ्चाधिकाः विंशतिः।।२६।।



ऊपर कहे षटदारु वाले त्रिशाल घर के मुख के आगे पांच अलिन्द हो तो श्रीजय तथा छह अलिन्द हो तो श्रीतैलक (श्रीतिलक) घर कहलाता है। श्रीतिलक घर में दो षटदारु हो तो श्रीविलास घर कहलाता है।

श्रीविलास घर के आगे छह के स्थान पर सात अलिन्द हो तो श्रीतेजोदय नाम का घर कहलाता है।

इस प्रकार सोम आदि सोलह तथा श्रीत्रिदशादि नौ घर मिलकर पच्चीस घर राजाओं के होते हैं।

३.३.३ चार शाला वाले घर

मालिनी

भवननवकमुक्तं तच्चतुश्शालमध्यान्
नयनलघुमुखं स्याद् दक्षिणैकेन चन्द्रम्
भवति सदनमध्ये सर्वतो दारुषट्कं
द्वितयमपि च तेषामन्तिमं युग्मयुक्तम्।।२७।।

ऊपर नौ त्रिशाल भवन कहे हैं। चतुःशाल का ध्यान करके, उनके मुख आगे दो तथा दाईं ओर एक अलिन्द हो तो चन्द्र नाम का घर होता है। जो चतुःशाल घर कहे है उन सब घरों में षटदारु होना चाहिए, उनमें दो षटदारु भी हो सकती है। (अन्तिम शाला दो अलिन्दों से युक्त होती है।) इन नौ घरों में केवल कामद घर में दो षटदारु होती है। बाकी आठ घरों में एक-एक षटदारु होती है।।

मलयमथ च गेहं वामहस्वाधिकं स्यात्
भवति च गुणहस्वं शोभनं पूर्वतोऽपि।
त्रिभिरपि सुकर्णं पृष्ठयाम्ये तथैक-
स्तदधिकमपि वामे वेश्म नागेन्द्रसंज्ञम्।।२८।।

ऊपर बताए चतुःशाल घर के बाईं ओर एक अलिन्द हो तो मलय नाम का घर कहलाता है। जिस चतुःशाल घर के मुख के आगे तीन अलिन्द तथा दोनों ओर अलिन्द न हो तो शोभन घर कहलाता है।



शोभन घर के दाएँ व पीछे एक-एक अलिन्द हो तो वह सुकर्ण तथा सुकर्ण के बाईं ओर एक अलिन्द हो तो वह नागेन्द्र नाम का घर कहलाता है।

वसन्ततिलका

चक्रं चतुष्टयमुखं सकलेषु शस्तं
याम्योत्तरे हि लघुनापि जयावहं स्यात्।
भद्रान्वितं च मकरध्वजमेव तस्मिन्
पृष्ठाग्रहंस्वमपि कामदमग्रभद्रम्।।२९।।

जिस चतुःशाल घर में चार मुख (द्वार) हो उस चक्र कहते हैं। जो सबके लिए श्रेष्ठ है।

चक्र घर के दाएँ व बाएँ एक-एक अलिन्द हो तो वह जयावह, जयावह घर के मुख के आगे एक भद्र हो तो वह मकरध्वज, मकरध्वज के पीछे एक अलिन्द हो तो वह कामद नाम का घर कहलाता है।

शुद्धादयो मुनिमतेऽष्टविधाश्च शाला-
स्तासां षडेव कथिता भवनप्रसङ्गे।
शालालिमध्यरचितोऽपि लघुः सुखाय
यद्वा तदग्ररचिता पृथगेव शाला।।३०।।

मुनि के मतानुसार शुद्ध आदि आठ शालाएँ है, उनमें घर के प्रसंग में छह शालाएँ कही है। उन शालाओं के मध्य में एक अलिन्द आए तो वह घर सुखकारी है अथवा अलिन्द के आगे अन्य शाला करे ऐसा कहा है। (यह विधि राजाओं के शालाओं के लिए हैं)।

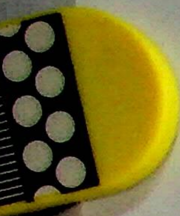
विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):- राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय ७ में द्विशाला के विभिन्न भेद तथा तीन व चार शाला वाले गृहों का वर्णन किया हैं। इसके आधार पर हम जानते हैं कि जब चतुश्शाल गृह बनाते हैं तो वह शुभ होता है। इसमें बीच में खुला स्थान या आँगन होता है तथा चारों दिशाओं में कक्ष होते हैं। इस प्रकार से गृह निर्मित करने पर सभी कमरों में खिड़की, रोशनदान आदि के द्वारा, हवा व रोशनी की पर्याप्त व्यवस्था रखी जा सकती है।

आज के समय में इस प्रकार निर्माण करने पर व्यक्ति सुखी, समृद्ध व स्वस्थ रह सकता है।



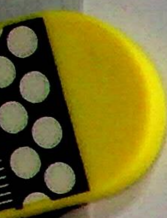
अध्याय-४

शयन, सिंहासन, छत्र आदि लक्षण



अध्याय-४

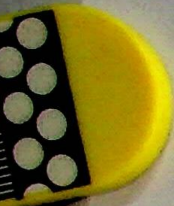
शयन, सिंहासन, छत्र आदि लक्षण





अध्याय-४

शयन, सिंहासन, छत्र आदि लक्षण



४.१ शयन सिंहासन छत्र गवाक्ष सभाष्टक वेदिका दीपस्तम्भप्रमाण लक्षणम्

४.१.१ शय्या

मालिनी

शयनमथ नृपाणामङ्गुलानां शतैकं

नवतिरपि सुतानां मन्त्रिणः षड् विहीनः।

बलपतिगुणहस्तं त्र्यङ्गुलोनं गुरोश्च

तदनु युगलहीनं ब्राह्मणादेः प्रशस्तम्।।१।।

राजा की शय्या एक सौ एक अंगुल, राजपुत्र की नब्बे अंगुल, मन्त्री की चौरासी अंगुल, सेनापति इक्यासी अंगुल की, राजगुरु की सेनापति से तीन अंगुल कम तथा ब्राह्मण आदि वर्ण के लिए शय्या क्रमशः दो-दो अंगुल कम होती है।

उपजाति

व्यासोऽर्धभागेन च दैर्घ्यतश्च कलांशमात्रोऽधिक एव शस्तः।

त्र्यंशेन पादेन समुच्छ्रयः स्याद् द्वित्र्यङ्गुलोनाधिकता च कार्या।।२।।

पलंग की लम्बाई का आधा भाग कर, पलंग की लम्बाई में सोलहवां अंश मिलाने पर जितना अंगुल आए वह पलंग की चौड़ाई होती है। पलंग की लम्बाई का एक तिहाई या एक चौथाई भाग कर, उसमें दो या तीन अंगुल जोड़कर जितना अंगुल आए, पलंग की ऊँचाई होती है।

४.१.२ लकड़ी व परिणाम

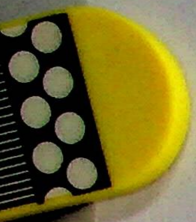
शार्दूलविक्रीडित

श्रीपर्णी धनदासनोऽपि गदहा वित्तप्रदा तिन्दुकी

वृद्धिः शिंशिपयाथ शाकशयने शर्माणि शालैः कृतैः।

आयुः पद्मतके च चन्दनमये शत्रुक्षयः स्यात् सुखं

श्रेष्ठं चैकमयं शिरीषजनितं पर्यङ्कयानासनम्।।३।।



श्रीपर्णी लकड़ी का पलंग हो तो धन की प्राप्ति, असन का हो तो रोग का नाश, तिन्दुकी का हो तो धन की प्राप्ति, शीशम का हो तो वृद्धि, साग का हो तो सुख, पद्मक का हो तो आयुष मिले, चन्दन का हो तो शत्रुओं का क्षय तथा शिरीष का पलंग हो तो सुख होता है। इस प्रकार ऊपर बताई गई लकड़ी की जाति का पलंग, गाड़ी, रथ, पालकी आदि बनवाना। एक वस्तु में एक ही प्रकार की लकड़ी लगवाए।

४.१.३ सिंहासन

लकड़ी व परिणाम	
श्रीपर्णी	धन की प्राप्ति
असन	रोग का नाश
तिन्दुकी	धन की प्राप्ति
शीशम	वृद्धि
साग	सुख
पद्मक	आयुष
चन्दन	शत्रुओं का क्षय
शिरीष	सुख

उपजाति

सिंहासनं चोत्तममङ्गुलानां षष्ट्याः दशोनं च परं तथैव।

दशांशवस्वंशमतो विहीनं व्यासे च दैर्घ्यार्द्धसमुच्छ्रयः स्यात्।।४।।

उत्तम सिंहासन साठ अंगुल का, मध्यम पचास अंगुल का, कनिष्ठ सिंहासन चालीस अंगुल का होता है। सिंहासन की चौड़ाई, लम्बाई से दसवां भाग अथवा आठवां कम रखें तथा ऊँचाई, लम्बाई की आधी रखें।

सिंहासन के मान	
उत्तम	सिंहासन साठ अंगुल का
मध्यम	पचास अंगुल का
कनिष्ठ	सिंहासन चालीस अंगुल
चौड़ाई	लम्बाई से दसवां भाग अथवा आठवां
कम	
ऊँचाई	लम्बाई की आधी



मालिनी

मुनिभिरथ शरैर्वा भद्रभागत्रयं स्याद्

उदय इह विभागैर्भाजितैः पीठमष्टौ।

कणमपि च शरांशं सप्तधा ग्रासपट्टी

शिवनवमुनिरत्नैर्दन्तिवाहौ नृवेद्यौ।।५।।

सिंहासन की चौड़ाई के सात या पांच भाग करके तीन भाग का भद्र करना। सिंहासन के उदय के छियासी भाग करें, आठ भाग की पीठ करें, पांच भाग के कणी, सात भाग की ग्रास पट्टी, ग्यारह भाग का गजधर, नौ भाग का अश्वधर, सात भाग का नरथर तथा चौदह भाग की वेदी करें।

सिंहासन के अन्य मान	
भद्र	तीन भाग
पीठ	आठ भाग
कणी	पांच भाग
ग्रास पट्टी	सात भाग
गजधर	ग्यारह भाग
अश्वधर	नौ भाग
नरथर	सात भाग
वेदी	चौदह भाग

शार्दूलविक्रीडित

छाद्यं स्याद् रसभागमेव तिथितो भागेन कक्षासनं

युक्तं स्तम्भयुगेन तोरणयुतं रत्नैः शुभै राजितम्।

कर्तव्यं नृपवल्लभं मतिमता ज्येष्ठं च सिंहासनं

ज्ञातव्यं च यशोऽभिवर्द्धनमिभैः सिंहैर्नृकक्षासनैः।।६।।

छह भाग का छाद्य करें, पन्द्रह भाग का कक्षासन करें। सिंहासन के चार स्तम्भ करें उसमें तोरण करें, ऊँचे प्रकार के रत्न जड़वाए। इसी प्रकार ज्येष्ठ मान से राजा का प्रिय सिंहासन, बुद्धिमान पुरुष करें। जिस सिंहासन में गजथर, सिंहथर, नरथर व कक्षासन हो ऐसा सिंहासन, कीर्ति की वृद्धि देता है।



उपजाति

नरास्तु वेदी पुनरेव छाद्यं सुखासनं तोरणसंयुतं स्यात्

पीठं च कुम्भं कलशं विटङ्कमुत्तङ्गसंज्ञं सह छाद्यकेन।।७।।

तीसरे प्रकार का सिंहासन में नरथर, वेदी, छाद्य, सुखासन और तोरण सहित करें।

चौथे प्रकार का सिंहासन इस प्रकार करें कि प्रथम कहे प्रमाण से पीठ के ऊपर कुम्भ का थर के ऊपर कलश का थर के ऊपर कपोताली तथा उसके ऊपर छाद्य हो तो यह सिंहासन उत्तंग नाम का कहलाता है।

पीठेभौ हरिवेदिके च सुयशः छाद्येन सिंहासनं

हस्तीमातृकवेदिकासनमतस्तद्दीपचित्रं भवेत्।

छत्रं ज्येष्ठमशीतिवेदसहितं द्वासप्ततिर्मध्यमं

षष्ट्या कन्यसमङ्गुलैर्नरपतेर्दैवं शतार्द्धं शुभम्।।८।।

पांचवे प्रकार के सिंहासन के पीठ, गजथर, सिंहथर, वेदिका और छाद्य होता है। इसका सुयश नाम है।

छठे प्रकार का सिंहासन गजथर, मातृकाथर, वेदिका, आसन, छाद्य हो तो दीपचित्र कहलाता है। सिंहासन के ऊपर राजा के सिर पर, छत्र करें।

ज्येष्ठ छत्र का मान चौरासी अंगुल, मध्यम का मान बहत्तर अंगुल तथा कनिष्ठ का मान साठ अंगुल, इस प्रकार ये तीन छत्र राजाओं के लिए होते हैं। देवताओं के लिए, पचास अंगुल का छत्र बनवाए।

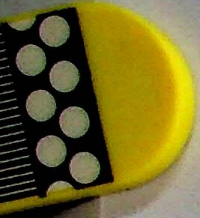
४.१.४ झरोखा

गवाक्ष

वातायनो लुम्बिकया विहीनो बुधैरुदीर्यस्त्रिपताक एव

द्विलुम्बिकश्चोभयसंज्ञकश्च यः स्वस्तिकोऽसौ युगलुम्बियुक्तः।।९।।

जिस गवाक्ष में लुम्बिका (मेहराब) न हो उसे त्रिपताक नाम, पंडितों ने कहा है। जिस गवाक्ष में दो लुम्बिका हो उसें उभय तथा चार लुम्बिका हो उसे स्वस्तिक कहतें हैं।



शार्दूलविक्रीडित

स्याद् बाणैः प्रियवक्त्र एव सुमुखः षड्भिः युतश्चेति चेत्

छाद्यैकेन युतः सुवक्त्र उदितो द्वाभ्यां प्रियङ्गो भवेत्।

एकेनोपरि पद्मनाभः उदितः तद्दीपचित्रो युगै-

वैचित्रः शरपङ्क्तिभिस्तु विविधाकारैर्युताः पञ्च च।।१०।।

पांच लुम्बिका हो वह प्रियवक्र, जिस गवाक्ष में छह लुम्बिका सुमुख कहलाता है।

जिस गवाक्ष का एक छाद्य हो वह सुवक्त्र, दो छाद्य हो तो प्रियंग, तीन छाद्य हो पद्मनाभ, चार हो तो दीपचित्र तथा पांच हो तो वैचित्र नाम होता है।

सिंहो दैर्घ्यविवर्द्धितो हि पृथुले हंसो गवाक्षो भवेत्

तुल्योऽसौ मतिदोऽपि भद्रसहितो ज्ञेयस्तु बुद्ध्यर्णवः।

द्वारेणैव युगास्त्रकेण गरुडः पक्षद्वये जालकम्

प्रोक्ताः पञ्चदशैव रूपमदलावेद्यादि कक्षासनैः।।११।

जिस गवाक्ष में लम्बाई अधिक हो तो सिंह, चौड़ाई अधिक हो तो हंस, लम्बाई चौड़ाई बराबर हो तो मतिद नाम होता है।

जो गवाक्ष भद्र सहित हो, उसे बुद्धयर्णव, जिसके चारों ओर द्वार हो वह गरुड़ कहलाता है। गरुड़ गवाक्ष के दो ओर द्वार हो उसे जालियाँ हो, इस प्रकार रुप, मदलों, वेदी और कक्षासन सहित पन्द्रह प्रकार के गवाक्ष कहे हैं।

४.१.५ सभा

उपजाति

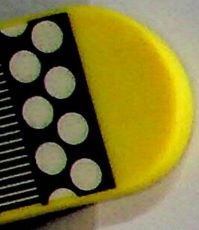
सभा च नन्दा परतोऽथ भद्रा जया च पूर्णा क्रमतोऽपि दिव्या

यक्षी च रत्नोद्भविकोत्पलाष्टौ बुधैर्विधेयाऽवनिपालगेहे।।१२।।

राजाओं की सभा आठ प्रकार की होती है। नन्दा, भद्रा, जया, पूर्णा, दिव्या, यक्षी, रत्नोद्भवा तथा आठवीं उत्पला, इनमें बुद्धिमान पुरुष राजाओं का घर बनवाए।

वसन्ततिलका

क्षेत्रं चतुष्टयपदैरपि षोडशांशं मध्ये तुरीयपदमेकपदो लघुश्च।



नन्देति भद्रसहिता च पदेन भद्रा तद्वेदतश्च जयदा लघुना च पूर्णा।।१३।।

सभा के लिए क्षेत्र को चार गुणित चार यानि सोलह पद में बांटे, उन पदों के मध्य के जो चार पद हैं, उनको एक पद कर सभा आगे एक अलिन्द हो तो नन्दा सभा, नन्दा के आगे एक भद्र हो तो भद्रा, चारों ओर भद्र हो तो जयदा, अलिन्द हो तो पूर्णा नाम होता है।

राजाओं की सभा आठ प्रकार की-	
क्रमाकं	सभा
१	नन्दा
२	भद्रा
३	जया
४	पूर्णा
५	दिव्या
६	यक्षी
७	रत्नोद्‌भवा
८	उत्पला

उपजाति

दिव्या सभा केवलनन्दभागा भद्रैश्चतुर्भिः सहिता च यक्षी

रत्नोद्‌भवा स्याद् युगतोऽपि तुल्यैस्तथोत्पलाख्या प्रतिभद्रतश्च।।१४।।

नौ भाग की सभा हो तो दिव्या, दिव्या के चारों ओर एक-एक भाग में भद्र हो तो यक्षी, दिव्या के चारों ओर तीन-तीन पद में भद्र हो तो रत्नोद्‌भवा, रत्नोद्‌भवा के प्रत्येक भद्र के आगे एक-एक भद्र हो तो वह उत्पला कहलाती है।

(दिव्या नौ कोष्ठ की, यक्षी चार भद्र युक्त, रत्नोद्‌भवा चार कोष्ठों की तथा उत्पला प्रतिभद्र से युक्त होती है।)

शार्दूलविक्रीडित

स्तम्भैस्तोरणराजितैश्च मदलानिर्यूहवैतानकै-

र्भूछाद्यैर्गजसिंहवाजिविविधैर्नृत्यान्वितैः शोभितम्।

रत्नस्फाटिकरङ्गभूमिनृपतेः क्रीडास्पदं मण्डपं



कुर्याद् दक्षिणभद्रके च रुचिरां तन्मध्यतो वेदिकाम्।।१५।।

सभागार स्तमभ, तोरण, मदला, निर्यूह एवं वितान से सुशोभित करना। छाद्य तल पर हाथी, शेर, घोड़े एवं अनेक प्रकार के नृत्य आदि का अंकन करना। राजा के क्रीड़ागार में, रंगभूमि रत्नों व स्फटिक मणियों से जटित होना चाहिए।

४.१.६ वेदिका

वेदी कोणचतुष्टयेन सकले पाणिग्रहे स्वस्तिका
कल्याणं रविकोणकैश्च नृपतेः सा भद्रिका सर्वदा।
कोणैः श्रीधरिका च विंशतिमितैस्तिस्रोऽमराणां गृहे
कर्णैरष्टभिरन्विता च शुभदा चंड्यर्चने (चन्द्रार्च्चने) पद्मिनी।।१६।।

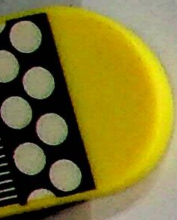
विवाह के काम में चार कोण वाली वेदी करना। इसका नाम स्वस्तिक है। राजा की सभा में बारह कोण की वेदी बनाए, उसका नाम भद्रिका है, जो कल्याण करती है।

बीस कोण की वेदी हो तो श्रीधरिका नाम है। स्वस्तिका, भद्रिका तथा श्रीधरिका यह तीन प्रकार की वेदी देवमन्दिर के लिए कही है, परन्तु चंडी (चन्द्रमा) की पूजा के लिए (तथा होम, यज्ञ आदि के लिए) आठ कोण की वेदी कही है। इसका नाम पद्मिनी है, जो शुभ फल देती है।

वेदी उसके उपयोग, फल तथा कोण

वेदी	कोण	उपयोग	फल
स्वस्तिक	चार कोण	विवाह	-
भद्रिका	बारह कोण	राजा की सभा में	कल्याण
श्रीधरिका	बीस कोण	देवमन्दिर	-
पद्मिनी	आठ कोण	चंडी की पूजा	शुभ फल

विप्रे सप्तकरा च भूपसदने षट् पञ्च वैश्ये तथा
कुर्याद् हस्त चतुष्टयं च वृषले त्रिद्व्येकतो हीनके।
तस्योर्ध्वे च नरेश्वरासनमतो माडं चतुस्तम्भकं
हेम्ना मौक्तिकपट्टकूलमणिभिः सौम्याननं राजते।।१७।।



ब्राह्मण के घर हो तो सात हाथ की, राजघर हो तो छह, वैश्य का हो तो पांच तथा शूद्र का घर हो तो चार, तीन, दो या एक हस्त की वेदी करें।

उस वेदी के ऊपर राजा के सिंहासन माड कहलाता है, चार स्तम्भ से युक्त होता है। सुवर्ण, मोती पटकूल तथा मणि से शोभायमान सौम्यानन (सौम्य मुख वाला, उत्तर की ओर मुख वाला) सिंहासन होता है।

वेदी के मान वर्णानुसार	
ब्राह्मण	सात हाथ
राजघर	छह
वैश्य	पांच
शूद्र	चार, तीन, दो या एक हस्त

४.१.७ दीपस्तम्भ

मन्दाक्रान्ता

दीपस्तम्भं त्रिकरमुदये षड्भिरूनं क्रमेण

हस्तान्तं तद्विहितमपि तैः पीठकुम्भान्वितं च।

दीपस्योर्ध्वे कनककलशं शोभितं कङ्कणाद्यैः

कुर्याद् धातोरथ तरुमृते नागवङ्गे विवर्ज्ये।।१८।।

दीपक रखने का स्तम्भ तीन हस्त ऊँचा करें, छह-छह अंगुल एक हस्त तक कम करने पर आठ प्रकार कहें है।

दीपस्तम्भ पीठ व कुम्भ से युक्त होता है।ऊपर के भाग को सुवर्ण का कलश, कांकड़ी आदि से शोभायमान करें।

दीप धातु, काष्ठ अथवा मिट्टी की बनवाए। परन्तु शीशा व कथिर (रांगा) इन दो धातु की न बनवाए।

विश्लेषण आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलनः- राजवल्लभ ग्रन्थ के इस अध्याय में पलंग, कुर्सी (सिंहासन) आदि उपकरण का विचार किया गया है। सर्वप्रथम शयन अर्थात् पलंग का विचार करते हैं। पलंग पर व्यक्ति के पद तथा उसके शरीर के अनुपात में बनाने पर व्यक्ति सुखपूर्वक शयन कर तरोताजा हो कार्य करने में सक्षम होता है। राजा आदि जैसा व्यक्ति है, उसके उपयोग के अनुसार उस व्यक्ति

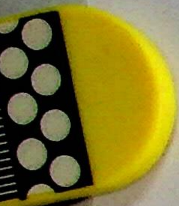


का पलंग उतना ही विशाल व भव्य बनाया जाता है। इसी प्रकार चौड़ाई के अनुपात में लम्बाई तथा पलंग की ऊँचाई का मान होता है। इसके पश्चात् प्राचीन ऋषि-मुनियों ने ध्यान-मनन-चिन्तन व अनुभव के आधार पर यह पता लगा लिया था कि किस प्रकार की लकड़ी में क्या गुण होते हैं, अतएव उन्होंने पलंग के लिए उचित प्रकार की लकड़ी का वर्णन किया है।

इसी प्रकार उन्होंने बैठने के लिए आसन, कुर्सी या सिंहासन का वर्णन किया है। किसी भी फेक्टरी, इन्डस्ट्री आदि का मालिक या कलेक्टर, कमिश्नर, मुख्य मन्त्री, प्रधानमन्त्री आदि का आसन या कुर्सी किस प्रकार की हो, इसका वर्णन किया है। उसे किस प्रकार अलंकृत करना चाहिए यह विस्तार से बताया है। इस प्रकार छत्र का भी वर्णन है। इसी अध्याय में आगे गवाक्ष या झरोखों का वर्णन है। उनका उचित प्रकार से अलंकरण करने पर वे भव्य दिखाई देते हैं।

इसी प्रकार राजमहल या विशाल भवन को सजाने के लिए किस प्रकार का अलंकरण करना चाहिए, इसके बारे में बताया है कि दीप-स्तम्भ, वेदिका, सभा आदि उचित मान व अनुपात में बनवाना चाहिए।

इन सबका उपयोग हम आज भी जैसा गृह (सामान्य या विशाल) बनवाना है तथा जिस व्यक्ति (पद अनुसार) का गृह बनवाना है, वैसा निर्माण हम कर सकते हैं।



४.२ राजगृहादिलक्षणम्

भुजङ्गप्रयात

गृहा वास्तुशास्त्रोदधौ राजयोग्या अनन्ता हि सन्त्यत्र तेभ्यः कियन्तः।
मयोक्ताश्च योग्या नृपाणां समृद्ध्यै सुशोभान्वितास्ते च कल्याणदाश्च।।१।।

वास्तुशास्त्र रूपी समुद्र में राजाओं के योग्य अनन्त प्रकार के घर हैं। उनमें कितने घर समृद्धि देते हैं, सुशोभित व कल्याणकारी घरों को यहाँ कहा है।

त्रिशालं गृहं दिक्त्रये ह्रस्वयुग्मं मुखे वीथिकाग्रे च षड्दारुमध्यम्।
गुणालिन्दचातुर्दिशं चैकवक्त्रं गवाक्षं च कोणे च भद्रे विधेयम्।।२।।

त्रिशाल घर के तीन दिशा में दो-दो अलिन्द हो तथा घर के मुख के आगे वीथि हो और मध्य में षटदारु हो, यह एक प्रकार का घर है।

त्रिशाल घर की चारों दिशाओं में तीन-तीन अलिन्द है तथा घर का एक मुख हो और घर के कोणों में गवाक्ष या भद्र हो तो दूसरे प्रकार का घर समझना।

मुखे भद्रकें श्रीधरं माडयुक्तं तथा मूषिका पञ्च सप्तेव भूम्यः।
विनाच्छादनं मण्डपं वेदवक्त्रै रिपुघ्नं गृहं राजवर्द्धन्यमेतत्।।३।।

जिस त्रिशाल घर के मुख के आगे माढ़ सहित भद्र हो तो वह श्रीधर कहलाता है। जो घर पांच या सात भूमि का हो तथा घर में जाली हो, मण्डप बगैर ढका हो इतनी ही नहीं वरन् घर के चार मुख हों तो वह राज्यर्वधन कहलाता है। यह घर शत्रुओं का नाश करता है।

शालिनी

मध्ये निम्नं प्राङ्गणाग्रं तथोच्चैः शश्वच्चैवं पुत्रनाशाय गेहम्।
स्तम्भश्रेणी मध्यमानेन कार्या न्यूनाधिक्ये नैव पूजा न च श्रीः।।४।।

जिस घर का मध्य भाग नीचा हो और आंगन ऊँचा हो वह घर निरन्तर पुत्र का नाश करता है। घर के स्तम्भ का ओल (श्रेणी) मध्यमान का करना। यदि मान कम या अधिक करें तो गृहस्वामी को संसार में मान्य (यश) व लक्ष्मी की प्राप्ति नहीं होती है।

हीनस्तम्भे शालयोर्बाह्यपादे नो वेधः स्यादन्यतो वेध एव।
भूमेर्ज्ञेयं रुद्रसंख्याप्रमाणं तुल्या नेष्टा वर्धमानाः शुभाः स्युः।।५।।



जिस द्विशाल घर में बाहर का स्तम्भ छोटा हो तो कोई वेध का दोष नहीं लगता है परन्तु शालाओं में स्तम्भ की एक पंक्ति में स्तम्भ का मान कम अथवा अधिक हो तो वेध का दोष होता है। घर में एक भूमि से ग्यारह भूमि तक करना, पर सम नहीं करना। विषम भूमि करना।

सार्द्धत्रयेण विभजेद् करतत्त्वसंख्यम्
मध्ये नवांशमुदितं च करार्द्धभित्तिः।
स्तम्भाश्च षोडश गृहेऽपि च भद्रकेषु
दन्तैर्मिताश्च सकलास्तु चतुर्मुखं स्यात्।।६।।

घर की भूमि में साढ़े तीन भाग करें उनमें तीन भाग में नौ पद करें, शेष आधे भाग में, दोनों ओर दो भित्ति (दीवार) करें। इस घर में निम्न प्रकार से सोलह स्तम्भ करें चार भित्तियाँ मिलकर बारह तथा मध्य के चार स्तम्भ होते हैं।

जिस घर में चार मुख हो, उसकी चारों दिशाओं में एक-एक भद्र आए, प्रत्येक में चार-चार स्तम्भ आए, इस प्रकार सोलह स्तम्भ मिलकर बत्तीस स्तम्भ होते हैं। यह घर प्रतापवर्धन कहलाता है।

उपजाति

भद्रेषु भूमिद्वयमूर्ध्वमाडं सार्द्धत्रिभौमं कथितं च गेहम्।
प्रतापवर्द्धन्यमिदं नृपाणां लक्ष्मीविलासं च वदामि तस्माद्।।७।।

जिस घर में भद्र में दो मंजिल हो और उन भूमि पर मण्डप हो तथा प्रत्येक भद्र में दस-दस स्तम्भ हो इस प्रकार चार भद्रों के मिलकर चालीस स्तम्भ हो तथा घर की भूमि के साढ़े तीन भाग कर पहले बताए अनुसार सोलह स्तम्भ करें तो वह घर लक्ष्मीविलास कहलाता है।

स्तम्भा दश दश भद्रं चैकं षोडशमध्ये तत्समरूपम्।
मदनशरावनिमाडसमेतं लक्ष्मीनर्म करोति च नित्यम्।।८।।

जिस घर के चारों भद्र में दस-दस स्तम्भ हों, उस घर की भूमि के मध्य में पांच भाग कर उस घर की भूमि के मध्य में पांच भाग करके उनमें से दो भागों की भूमि को मध्य में रखकर बाकी तीन भाग में डेढ़-डेढ़ भाग की भूमि चारों ओर रखें तथा घर के सोलह स्तम्भ आए, भद्रों के चालीस स्तम्भ मिलकर कुल छप्पन स्तम्भ होते हैं। इस घर का नाम लक्ष्मीनर्म तथा घर में लक्ष्मी की नित्य वृद्धि होती है।



शार्दूलविक्रीडित

भागाः पञ्चगुणाश्च पञ्चभवनं षट्त्रिंशता स्तम्भकैः
कुड्ये चार्द्धपदे च नन्दपदकैर्भद्रं चतुर्द्वारके।
भद्रे वै गुणभद्रकाणि सकलेऽष्टाशीतिकाः स्तम्भका
माडं भूत्रितये च सार्द्धशरभूः स्याच्छ्रीनिवासं गृहम्।।९।।

घर की भूमि पांच या तीन भाग करें, पांच भाग की भूमि छत्तीस स्तम्भ आए और आधे भाग की भूमि में भित्ति आए। चारों ओर चार द्वार हो, प्रत्येक द्वार में नौ पद का भद्र आए, प्रत्येक भद्र में तीन-तीन भूमिका आए, प्रत्येक भद्र में अठारह स्तम्भ आए, इस प्रकार मिलकर बहत्तर स्तम्भ भद्र के तथा मध्य की भूमि छत्तीस स्तम्भ मिलकर एक सौ आठ स्तम्भ होते हैं।

दूसरे प्रकार घर की भूमि के तीन भाग करें उसमें सोलह स्तम्भ आए तथा ऊपर बताए अनुसार चार भद्रों के बहत्तर स्तम्भ मिलकर अठासी स्तम्भ होते हैं। प्रत्येक भद्र में मण्डप आए, ये दोनों प्रकार का घर यानि तीन भाग की भूमि व साढ़े पांच की भूमि का घर श्रीनिवास कहलाता है।

मध्ये स्तम्भशतं च भागसमके भित्तिश्चतुर्द्वारकं
सप्तांशाद्विंशराश्च रामसहितं भद्रं चतुस्त्रिंशताः।
षट्त्रिंश(द्)द्विशती च ते तु सकलाः स्तम्भाः क्षितौ पूर्वतो
नाम्नैतत् कमलोद्भवं च कथितं भूसार्द्धं सप्तान्वितम्।।१०।।

घर की भूमि के सम भाग (आठ) करें उसमें से आधे भाग भित्ति तथा बचे हुए साढ़े सात भाग में एक सौ स्तम्भ का घर करें। घर में चार दरवाजे, द्वार में आगे भद्र तथा उन भद्र के पहले व दूसरे भाग में सात-सात चौकियों की पंक्तियाँ और इन भद्र के प्रति भद्र में पांच चौकियों की पंक्ति, प्रति भद्र के मुख के आगे के तीन चौकी, इस रीति से एक-एक भद्र बनाए। इस प्रकार मिलकर चौंतीस स्तम्भ आए तथा चारों भद्र के मिलकर एक सौ छत्तीस एवं घर के सौ स्तम्भ मिलकर दो सौ छत्तीस स्तम्भ आए हैं, वह कमलोद्भव कहलाता है।

हर्म्यस्योदयकं विभज्य नवधा कुम्भी भवेद् भागतः
पादोनं भरणं शिरश्च कथितं पट्टः सपादो भवेत्।



स्तम्भः पञ्चपदोन् भागः उदितः कोणाष्टवृत्तस्तथा
भागार्द्धेन जयन्तिका निगदिता सा तन्त्रकस्योपरि।।११।।

हवेली के (राजघर) उदय के नौ भाग कर एक भाग में कुम्भी, पौन भाग में भरण, पौन भाग में शरु (सिर), सवा भाग पटिया, सवा पांच भाग में स्तम्भ करें तथा स्तम्भ में अष्टकोण या गोल करें, स्तम्भ के ऊपर तन्त्रक तथा तन्त्रक के ऊपर आधे भाग में जयन्तिका रखना।

भुजङ्गप्रयात

गृहस्योदयं दिग्विभागैर्विभज्य विभागेन कक्षासनं वेदिका स्यात्।
त्रिभागेन तत्कण्ठतो निम्नमेवं गृहस्योदयार्द्धेन पीठं नृपाणाम्।।१२।।

घर के ऊँचाई के दस भाग करें, पांच भाग में पीठ बनवाए। एक भाग में कक्षासन, एक भाग में वेदिका तथा कण्ठ तीन भाग में निर्मित करें।

उपजाति

उत्तानपट्टो नृपमन्दिरेऽसौ हस्ते च हस्ते द्वियवोन्नतः स्यात्।
पाषाणतः सौख्यकरो नृपाणां धनक्षयं सोऽपि करोति गेहे।।१३।।

राजाओं के प्रासाद में पटियों के ऊपर छाद (छत) रखने की रीति यह है कि प्रत्येक हस्त पर दो यव की माप की दूरी रखें, जो पत्थर की छाद्य हो तो राजा को सुखकारी, साधारण लोगों के लिए धन का नाश करती है।

सुधेष्टके शर्करया वियुक्ते सशर्करैस्ते सुदृढा गेहभूः।
शस्ता न शस्तं भवनेषु चित्रं कपोतगृध्राः कपिकाकरौद्रम्।।१४।।

ईंट के काम में चूने में बालू नहीं मिलना चाहिए, परन्तु भूमि तक (चौक, गच्ची) के काम में चूने में बालू मिलाने से काम में मजबूती होती है।

घर में चित्र वगैरह करना हो तो कपोत, गिद्ध, बन्दर, काग आदि भय करने वाले चित्र न करें।

शार्दूलविक्रीडित

शुद्धोऽलिन्दं विशेषतश्च सकला भूम्यो वरण्ड्यान्विता-



श्छाद्येनाप्यथ मत्तवारणयुतं माडं तथार्द्धोदयम्।

मौडो भद्रचतुष्किकाभिरुदितो माडेन युक्तस्तथा

मल्लैस्तुल्यसंपादकैस्तु मुकुलो वा शीर्षकैः शेखरः।।१५।।

राजाओं के प्रासाद के छह भेद कहें हैं। प्रथम भेद का नाम शुद्ध है-जिस प्रासाद में अलिन्द हो तथा सब मंजिल पर वराण्या हो वह शुद्ध प्रासाद कहलाता है। जो प्रासाद छाद्य से युक्त मत्तवारण (गलियारा)हो। ऊँचाई, चौड़ाई के आधे के बराबर हो, छाद्य हो वह मांड प्रासाद होता है। प्रासाद के भद्रों की चौकियां, मांडे ढकी हो, मध्य की भूमि के व्यास के बराबर, उदय कर ऊपर श्रृंग करें। अथवा मध्य की भूमि के व्यास करें, सवा गुना ऊँचा श्रृंग करें परन्तु श्रृंग का रूप बिना खिले कली का हों, वह मांड प्रासाद कहलाता है। ऊपर बताए तीसरे भेद वाले प्रासाद के माथे (सिर) जो श्रृंग कहा है। उसे शेखर प्रासाद के ऊपर नहीं करना, पर उस श्रृंग के देवमन्दिर पर देवशिखर हो, शेखर कहलाता है।

उपजाति

राजालये छन्दचतुष्टयं स्यात् तथैव घण्टाकलशेन युक्तः।

तुङ्गारसंज्ञस्त्वथ सिंहकर्णः प्रासादके तेऽपि षडेव शस्ताः।।१६।।

राजाओं के प्रासाद के प्रथम श्लोक में चार प्रकार के छन्द भेद बताए है।छन्द भेद में घंटा, कलश, तुङ्गार व सिंह कर्ण होता है।

प्रासाद से लगे हुए भद्र के पास तवंगो (कोण) निकले हो तवंग है, उस तवंग पर घंटा व कलश हो वह तुंगार प्रासाद कहलाता है।

प्रासाद के भद्रों के कोने गोल करने की रीति यह है कि प्रासाद के जितने भद्र हो उतने भद्रों के सिर के कोण गोल करें तो उसका नाम सिंहकर्ण है।

इस प्रकार राजा के प्रासाद के छह भेद होते हैं।

४.२.१ छह प्रकार के घर

इन्द्रवज्रा

षड् जातिगेहं तृणपर्णपट्टैर्वंशैः कटैर्वाऽपि मृदा शिलाभिः।

छन्नप्रकारैः कथितं च षड्भिः लोकप्रसिद्धाऽपि परीक्षणीया।।१७।।



घर को ढांकने के लिए छह प्रकार की छाद्य होती है। उसी तरह छह प्रकार के घर होते है तृण, पर्ण, पटिया, बांस का खपेड़ा या टट्टा, मिट्टी तथा पत्थर। लोक प्रसिद्ध होने पर भी इनकी परीक्षा करना चाहिए।

छह प्रकार के घर
तृण
पर्ण
पटिया
बांस
खपेड़ा
टट्टा
मिट्टी
पत्थर

क्रीड़ा वाटिका

राजा के प्रासाद के दाएँ या बाईं ओर
क्रीड़ा वाटिका के तीन प्रकार है-
कनिष्ठ-एक सौ दण्ड
मध्यम- दो सौ दण्ड
ज्येष्ठ- तीन सौ दण्ड का बाग
इन बाग में मण्डप बनाए
मण्डप में जलयन्त्र या फव्वारे बनाए

४.२.२ क्रीड़ा वाटिका

शालिनी

वामे भागे दक्षिणे वा नृपाणां त्रेधा कार्या वाटिका क्रीडनार्थम्।

एकद्वित्रिदण्डसंख्याशतं स्यान्मध्ये धारामण्डपं तोययन्त्रैः।।१८।।

राजा के प्रासाद के दाएँ या बाईं ओर, क्रीड़ा के लिए बाग या वाटिका बनाए। ये तीन प्रकार है। एक सौ दण्ड का कनिष्ठ, दो सौ का मध्यम तथा तीन सौ दण्ड का बाग ज्येष्ठ कहा है। इन बाग में मण्डप तथा मण्डप में जलयन्त्र या फव्वारे बनाए।

४.२.३ जलयन्त्र

शार्दूलविक्रीडित

क्षेत्रं सप्तविभागभाजितमतो भद्रं च भागत्रयं

तन्मध्ये जलवापिका जिनपदैरेकांशतो वेदिका।

स्तम्भैर्द्वादशभिश्च मध्यरचितः कोणेषु कू(रू)पान्वितः

कर्तव्यो जलयन्त्र एष विधिवद् भोगाय पृथ्वीभुजाम्।।१९।।

जययन्त्र बनाने के क्षेत्र में सात गुणित सात यानि उनचास भाग विभाजित करें तथा इन भागों में चारों दिशाओं में तीन-तीन भाग (पंद) में भद्र करें, शेष में चौबीस (पच्चीस) पद की चारों ओर पानी भरने के लिए हौज बनाए। उनचास पदों के मध्य भाग में एक पद

में वेदिका या बैठने के लिए चबूतरा बनवाए। इस मध्य बिन्दु के आस-पास के आठ पद में बारह स्तम्भ बनाए। (कोण में कूप बनवाए)। फव्वारे के बाहर चार कोण के ऊपर पद में पुतली बनवाए। (उन पुतलियों में नृत्य करें, किसी के हाथ में मृदंग, पिचकारी वगैरह इस प्रकार शास्त्र बताए अनुसार राजा की क्रीड़ा के लिए जलयन्त्र या फव्वारा बनवाए।

जलयन्त्र
जलयन्त्र बनाने के क्षेत्र में (७ X७) यानि (५९) उनचास भाग विभाजित करें-
चारों दिशाओं में तीन-तीन भाग (पद) में भद्र करें।
चौबीस (पच्चीस) पद की चारों ओर पानी भरने के लिए हौज बनाए।
उनचास पदों के मध्य भाग में एक पद में वेदिका या चबूतरा बनवाए।
मध्य बिन्दु के आस-पास के आठ पद में बारह स्तम्भ बनाए।
फव्वारे के बाहर चार कोण के ऊपर पद में पुतली बनवाए।
पुतलियों में नृत्य करें, किसी के हाथ में मृदंग, पिचकारी,

४.२.४ वाटिका में वृक्ष

तस्यां चम्पककुन्दजातिसुमनो वल्ली च निर्वालिका
जाती हेमसमानकेतकिरपि श्वेता तथा पाटलाः।
नारिङ्गः करणो वसन्तलतिका चारक्तपुष्पादिकं
जम्बीरो बदरी च पूगमधुपा जम्बूश्च चूतद्रुमाः।।२०।।

ऊपर बताए प्रमाण में बाग करें। उस वृक्ष में चम्पा, मोगरा, वेलिया, निर्मालिका, जिसमें स्वर्ण जैसे पुष्प हो, जाई, केतकी, सफेद पांडल, नारंगी, लाल कनेर, बसन्त लतिका तथा जिनमें लाल पुष्प आए अन्य अनेक प्रकार के बेलियों, जमीर, वोट, सुपारी, महुआ, जाम्बू व आम रोपें।

मालूरः कदली च चन्दनवटा अश्वत्थपथ्याः शिवा
चिञ्चाशोककदम्बनिम्बतरवः खर्जूरिका दाडिमी।
कर्पूरागुरुकिंशुका हयरिपुः पुन्नागको निम्बुकी
प्रोक्ता नागलता च बीजनिभृता स्यात् तिन्दुकी लाङ्गली।।२१।।



मालूर, केला, चन्दन, वट, पीपल, हरडे, आंवला, आंबली, आसुपालव (अशोक), कदम्ब, नीम, पुनाग (जायफल), नीम्बू, अनेक प्रकार के वृक्ष, नागर बेल (नागलता), बीज का वृक्ष, तिन्दुकी, नालियरियो,

द्राक्षैला शतपत्रिका च बकुला धत्तूरकङ्कोलकौ
शालस्तालतमालकौ मुनिवरो मन्दारपारिद्रुमौ।
अन्ये भोग्यविचित्रखाद्यसुफलास्ते रोपणीया बुधैः यः
प्राप्नोति च भूतले शुभतरून् तच्चम्पकान् वापयेत्।।२२।।

द्राक्ष (अंगूर), इलायची, वोरशली, धतूरा, कपूरकाचली, सादड़, तार, तमाल, इंगोरी, मन्दार, परिजातक तथा अन्य प्रकार के श्रेष्ठ और अनेक जातियों के पुष्प उत्पन्न हो, ऐसे वृक्ष बुद्धिमान पुरुष बाग मे रोपें। इसके बाद भी जगह बचें तो चम्पा के घने वृक्ष रोपें।

४.२.५ आस्थान मण्डप

आस्थानं प्रतिसेचनाय च घटीयन्त्रः सुसारो भवेत्
दोला स्त्रीजनखेलनाय रुचिरे वर्षावसन्तोत्सवे।
बालाप्रौढवधूसुमध्यवनितागानैर्मनोहारिभि-
ग्रीष्मे शारदके सुशीतलजले क्रीडा शुभे मण्डपे।।२३।।

इन बागों में वृक्षों को पानी देने के लिए मजबूत (खेर जाति के) वृक्ष की लकड़ी की घटियन्त्र (अरट) करें तथा वर्षा और वसन्त ऋतु में बाला, मध्या, प्रौढ़ा स्त्रियों के मनोहर गायन के लिए झूला (झूलने के लिए) बाग में डाले। ग्रीष्म और शरद ऋतु में ठण्डे जल में क्रीड़ा के लिए श्रेष्ठ मण्डप की हौज में पानी भर कर रखें।

४.२.६ अश्वशाला

उपजाति

तुरङ्गमाणां गृहवामभागे शाला चतुष्षष्टिकरा विधेया।
शतार्द्धतो माध्यमिका च दैर्घ्ये कनीयसी तैर्दशभिर्विहीना।।२४।।

घोड़ों की शाला घर की बाईं ओर चौसठ हस्त की ज्येष्ठ, पचास की मध्यमा तथा चालीस हस्त की कनिष्ठ अश्वशाला जानना।।

व्यासे च ज्येष्ठा तिथिहस्तमाना त्रयोदशैकादशकौ क्रमेण।

तद् बाह्यभित्तिश्च करप्रमाणा पञ्चार्द्धपञ्चाब्धिकरोदया स्यात्।।२५।।

ज्येष्ठ शाला का व्यास पन्द्रह हस्त, मध्यम का तेरह तथा कनिष्ठ को ग्यारह हस्त रखना। ऐसी जो अश्वशाला हो उनकी दीवार एक हस्त चौड़ी रखना तथा उनकी ऊँचाई साढ़े पांच, पांच, चार हस्त की उत्तम, मध्यम व कनिष्ठ की रखना।

घोड़ों की शाला का मान				
		व्यास	चौड़ाई	ऊँचाई
ज्येष्ठ	चौसठ हस्त	पचास	एक हस्त	साढ़े पांच
मध्यमा	पचास	तेरह	एक हस्त	पांच
कनिष्ठ	चालीस हस्त	ग्यारह	एक हस्त	चार हस्त

शार्दूलविक्रीडित

तेजोहानिमपि हया विदधते पूर्वापरास्या नृणां

ते याम्योत्तरतो मुखा हि सततं कीर्तियशो धान्यकम्।

कर्तव्यं हिषणं प्रतीह कलशस्थानं द्विहस्तोदयं

तस्यास्तोरणमुच्छ्रितं च मुनिभिर्हस्तैः सुशोभान्वितम्।।२६।।

घोड़ों का मुख पूर्व व पश्चिम दिशा के सामने बांधने में आगे तो घोड़े के मस्तिष्क के तेज की हानि होती है। उत्तर व दक्षिण दिशा में आए तो स्वामी की कीर्ति, यश व धान्य की वृद्धि होती है। घोड़े के मुख के आगे खाने की घास रखने के लिए षण करना, ऊपर कलश रखना, षण का उदय दो हस्त का, सात हस्त ऊँचाई का शोभा युक्त तोरण करना।

षष्ट्या साधु हयोऽङ्गुलैर्निगदितो वेदाङ्गुलेनाधिकः

श्रीवत्सस्त्वहिलाव एव च मनोहारी द्विसप्ताङ्गुलः।

रागाद्र्यङ्गुलकैस्तु वाजिविजयोऽशीत्या तथा भैरवः

शान्ताख्यस्तु युगाष्टमात्रमुदये मानं हरेः सप्तधा।।२७।।



जो घोड़ा साठ अंगुल ऊँचा हो वह साधु, चौसठ अंगुल का श्रीवत्स, अड़सठ का अहिलान, बहत्तर का मनोहारी, छिहत्तर का विजय, अस्सी का भैरव, चौरासी अंगुल का शान्त, इस प्रकार घोड़े की ऊँचाई के सात प्रकार कहे गए हैं।

४.२.७ सिंहद्वार

शालिनी

सिंहद्वारं पूर्वमानेन कार्यं त्रिद्व्येका वा मालिका स्तम्भशीर्षैः।

स्यातां मध्ये तोडकौ रक्षणार्थं तुल्यौ भागेनाधिकौ वाऽपि सार्द्धौ।।२८।।

राजाओं के प्रासाद के लिए पहले छह भेद कहे हैं। उन प्रासाद के आगे पहले बताई गई विधि के अनुसार पहले सिंहद्वार करना, सिंहद्वार के द्वार की शाखा के स्तम्भ के शीर्ष पर तीन या दो या एक मालिका (मदल) बनवाना और इन मालिकाओं (मदलों) की रक्षा के लिए, उनके नीचे तोड़काओं (अर्गलाकाष्ठ) को बनवाना। इन तोड़काओं को (लम्बाई व चौड़ाई) बराबर, सवा या डेढ़ गुणा करना।

४.२.८ गजशाला

शार्दूलविक्रीडित

भागे दक्षिणवामके च करिणां शाला हरेर्द्वारतः

कर्तव्या सुदृढोन्नता च कलशैर्घण्टादिभिर्भूषिताः।

सङ्कीर्णो रसतो नगैर्निगदितो मन्दो मृगश्चाष्टतः

सर्वेषूत्तभद्रजातिरुदितो नन्दैः करैरुच्छ्रितः।।२९।।

सिंहद्वार के दाईं ओर मजबूत हस्तिशाला व बाईं ओर अश्वशाला बनवाना, उनके ऊपर कलश या घन्टा आदि लगवाना। जो हाथी छह हस्त ऊँचा हो तो संकीर्ण, सात हो तो मन्द, आठ हो तो मृग और नौ हस्त ऊँचा हो तो भद्र जाति हाथी कहलाता है, जो सबसे उत्तम है।

उपजाति

४.२.९ गृहमान

अष्टोत्तरं हस्तशतं पृथुत्वे भूभृद्गृहं चोत्तममेव तत् स्यात्।

अष्टाभिरष्टाभिरतो विहीनं पञ्चैव भागाधिकतोऽपि दैर्घ्यं।।३०।।

राजा का घर एक सौ आठ हस्त चौड़ा हो तो उत्तम तथा आठ-आठ हस्त घटाते हुए कनिष्ठ घर होता है। चौड़ाई लम्बाई से सवा गुनी रखना। चौड़ाई एक सौ आठ हस्त लम्बाई एक सौ पैंतीस हस्त हो तो पहला, दूसरे में चौड़ाई एक सौ हस्त तथा लम्बाई एक सौ पच्चीस हस्त। तीसरे में चौड़ाई बानवे हस्त लम्बाई एक सौ पन्द्रह हस्त तथा चौथे में चौड़ाई चौरासी हस्त तथा लम्बाई एक सौ पांच हस्त एवं पांचवें प्रकार के घर की चौड़ाई छिहत्तर हस्त व लम्बाई पिचानवे हस्त होती है।

राजा का घर का मान			
	घर	चौड़ाई	लम्बाई
उत्तम	पहला	एक सौ आठ हस्त	एक सौ पैंतीस हस्त
मध्यम	दूसरा	एक सौ हस्त	एक सौ पच्चीस हस्त
कनिष्ठ	तीसरा	बानवे हस्त	एक सौ पन्द्रह हस्त
	चौथा	चौरासी हस्त	एक सौ पांच हस्त
	पाँचवा	छिहत्तर हस्त	पिचानवे हस्त

अशीतितो रागकरैश्च हीनाः पञ्चालया भूपसुतप्रियाणाम्।
त्रिभागदैर्घ्येऽधिकता विधेया गृहाः क्रमेण यथोदिताश्च।।३१।।

राजकुमार, राजा की पटरानी का घर अस्सी हस्त की चौड़ाई वाला उत्तम प्रकार का होता है। उससे कनिष्ठ छह-छह हस्त के होते हैं। लम्बाई चौड़ाई से एक तिहाई भाग अधिक होती है।

राजकुमार एवं राजा की पटरानी का घर		
घर	चौड़ाई	लम्बाई
पहला	अस्सी	एक सौ साढ़े छह हस्त चारअंगुल
दूसरा	चहत्तर	साढ़े इन्ठानवे हस्त चार अंगुल
तीसरा	अड़सठ	साढ़े नब्बे हस्त चार अंगुल
चौथा	बासठ	साढ़े बयासी हस्त चार अंगुल
पांचवा	छप्पन	साढ़े चहत्तर हस्त चार अंगुल

पहला घर अस्सी हस्त चौड़ा तथा एक सौ साढ़े छह हस्त चार अंगुल लम्बा, दूसरा चहत्तर हस्त चौड़ा व साढ़े इन्ठानवे हस्त चार अंगुल लम्बा, तीसरा अड़सठ हस्त चौड़ा तथा साढ़े नब्बे हस्त चार अंगुल लम्बा, चौथा बासठ हस्त चौड़ा तथा साढ़े बयासी हस्त चार अंगुल लम्बा एवं पांचवा प्रकार का गृह छप्पन हस्त चौड़ा तथा साढ़े चहत्तर हस्त चार अंगुल लम्बा होता है।

प्रोक्तं चतुषष्टिकरं पृथुत्वे क्रमेण षड्भिश्च करैर्विहीनम्।
षड्भागतो दैर्घ्यमुतोऽधिकं स्याद् बलाधिपस्यैव तु पञ्चवृद्ध्या।।३२।।

सेनापति का घर पहला चौसठ हस्त चौड़ा तथा लम्बाई चौड़ाई से छटा भाग अधिक होती है। अर्थात साढ़े चहोत्तर हस्त चार अंगुल, दूसरा चौड़ाई अठावन हस्त लम्बाई साढ़े सड़सठ हस्त चार अंगुल, तीसरा बावन हस्त चौड़ा तथा साढ़े साठ हस्त चार अंगुल लम्बा, चौथा छियालीस हस्त चौड़ा तथा साढ़े तिरपन हस्त चार अंगुल लम्बा तथा पांचवे प्रकार का घर चालीस हस्त चौड़ा व साढ़े छियालीस हस्त चार अंगुल लम्बा होता है।

सेनापति का घर		
घर क्रमांक	**चौड़ाई**	**लंबाई**
पहला	चौसठ हस्त	साढ़े चहोत्तर हस्त चार अंगुल
दूसरा	अठावन हस्त	साढ़े सड़सठ हस्त चार अंगुल
तीसरा	बावन हस्त	साढ़े साठ हस्त चार अंगुल
चौथा	छियालीस हस्त	साढ़े तिरपन हस्त चार अंगुल
पांचवे	चालीस हस्त	साढ़े छियालीस हस्त चार अंगुल

शालिनी

षष्ट्या हस्तैर्मन्त्रिगेहं पृथुत्वे हीनं हीनं पञ्चकं वेदवेदैः।
कुर्याद्धस्तैरष्टमांशोऽधिकोऽसौ व्यासादग्रे वर्द्धितो दैर्घ्य एव।।३३।।

मन्त्री या प्रधानमन्त्री का घर पांच प्रकार का चार-चार हस्त कम करते हुए होता है तथा लम्बाई चौड़ाई से आठवां भाग अधिक होती है।

पहला घर साठ हस्त चौड़ा तथा साढ़े सड़सठ हस्त लम्बा, दूसरा घर छप्पन हस्त चौड़ा तथा तिरसठ हस्त लम्बा, तीसरा बावन हस्त चौड़ा तथा साढ़े अठावन हस्त लम्बा, चौथा अड़तालीस हस्त चौड़ा तथा चौपन हस्त लम्बा तथा पांचवे प्रकार का घर चवालीस हस्त चौड़ा तथा साढ़े उनचास हस्त लम्बा कहा है।

मन्त्री या प्रधानमन्त्री का घर		
घर क्रमांक	चौड़ाई	लंबाई
पहला घर	साठ हस्त	साढ़े सड़सठ हस्त
दूसरा घर	छंप्पन हस्त	तिरसठ हस्त
तीसराघर	बावन हस्त	साढ़े अठावन हस्त
चौथा घर	अड़तालीस हस्त	चौपन हस्त लम्बा
पांचवे घर	चवालीस हस्त	साढ़े उनचास हस्त

शार्दूलविक्रीडित

सामन्तादिकभूपतेश्च भवनं वेदाब्धिहस्तैः समं

हस्तैर्वेदविहीनकैः क्रमतया भागाधिकं दैर्घ्यतः।

दैवज्ञं च सभासदश्च गुरुतः पौरोधसं भैषजं

विंशत्यष्टकरं द्विहस्तरहितं दैर्घ्यं द्विधा तद् भवेत्।।३४।।

सामन्त आदि राजाओं का घर चालीस हस्त विस्तार का कहा है, शेष चार भवन चार चार हस्त कम होते हैं। लम्बाई, चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक होती है।

दैवज्ञ या ज्योतिषी, सभासद, न्यायाधीश, राजगुरु, पुरोहित, वैद्य अठाईस हस्त की चौड़ाई वाला घर बनवाए। शेष घर दो-दो हस्त कम होते हैं।लम्बाई चौड़ाई से दो गुना होती है।

वेश्याकञ्चुकिशिल्पिनामपि गृहे वेदाधिका विंशति-

मीनं हस्तचतुष्टयैर्विरचितो(तं) दैर्घ्यं द्विधा व्यासतः।

हर्म्यं द्यूतकरान्ति(न्त) रवितो हस्तैः समं विस्तरे

हीनं त्वर्द्धकरेण पञ्चकमिदं तुर्यांशदैर्घ्याधिकम्।।३५।।

वैश्या, कंचुकी, शिल्पी का घर चौबीस हस्त चौड़ाई वाला, शेष चार-चार हस्त कम करते हुए बनाए। लम्बाई, चौड़ाई से दो गुना होती है। दूतों के घर बारह हस्त से प्रारंभ होते हैं, शेष आधा-आधा हस्त कम होते हैं। लम्बाई चौड़ाई से सवा गुनी होती है।

उपजाति

द्वात्रिंशता मानमिदं द्विजादेर्हीनं चतुर्भिः क्रमतो विधेयम्।
दिगष्टरागब्धिविभागतश्च क्रमेण तद्वर्णचतुष्टयेऽपि।।३६।।

ब्राह्मण का घर बत्तीस हस्त चौड़ा होता है, शेष वर्ण के घर चार-चार हस्त कम होते हैं। ब्राह्मण के घर की लम्बाई चौड़ाई की दशांश अधिक होती है। क्षत्रिय के घर की लम्बाई चौड़ाई से अष्टमांश अधिक, वैश्य की षष्ठांश अधिक तथा शूद्र के घर की लम्बाई चौड़ाई से चतुर्थांश अधिक होती है।

इन्द्रवज्रा

कर्णाधिकं विस्तरतोऽधिकं वा शीघ्रं विनाशं समुपैति गेहम्।
द्वारं नतं मूर्ध्नि यदाग्रजं चेत्तत् सन्ततेर्हानिकरं प्रदिष्टम्।।३७।।

जिस घर का कर्ण या चौड़ाई प्रमाण से अधिक हो, शीघ्र नाश को प्राप्त होता है। जिस घर के द्वार का शीर्ष भाग झुका हो या आगे निकला हो तो पुत्र का नाश होता है।

व्यासे सप्ततिहस्तवियुक्ते शालामानमिदं मनुभक्ते।
पञ्चत्रिंशत् पुनरपि तस्मिन् मानमुशन्ति लघोरितिवृद्धाः।।३८।।

घर की चौड़ाई में सत्तर जोड़कर चौदह का भाग दें, जो अंक आए उतने हस्त की शाला बनाए। घर की चौड़ाई में सत्तर जोड़कर पैंतीस का भाग देने से जो अंक आए वह अलिन्द का मान जानें।

शालिनी

एकद्वारं प्राङ्मुखं शोभनं स्याच्चातुर्वक्त्रं धातृभूतेशजैने।
युग्मं प्राच्यां पश्चिमेऽथ त्रिकेषु मूलद्वारं दक्षिणे वर्जनीयम्।।३९।।

जिस घर में एक द्वार करना हो तो पूर्व दिशा में करें। ब्राह्मण, महादेव, जैन के प्रासाद में चारों दिशाओं में चार द्वार करें। घर में दो द्वार करना हो तो पूर्व में व पश्चिम दिशा में करें। तीन द्वार करना हो तो घर का मूल द्वार दक्षिण दिशा में नहीं करना।।

विश्लेषण (आधनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):-

राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय क्रमांक ९- राजगृहादि लक्षण में सबसे पहले शुभ गृहों का वर्णन किया है, उन्हें बनाने कि विधि बताई गई है कि किस प्रकार पूरे गृह की लम्बाई व चौड़ाई को विभाजित करना चाहिए तथा किस प्रकार उचित अनुपात में दीवार का मान व स्तम्भ की संख्या रखना चाहिए। उसके पश्चात् ऊँचाई को विभिन्न भागों में विभाजित (सामान्य रूप से ९ भागों में विभाजित किया जाता है) निश्चित अनुपात में कुम्भी, भरण, सिर, पटिया, स्तम्भ बनवाना चाहिए। आज के समय में हम इसकी तुलना अधिष्ठान (पीठ), स्तम्भ, बीम व छत से कर सकते हैं, ये निश्चित अनुपात में होने पर शुभ गुण विकसित होते हैं।

प्राचीन समय में पूरा भवन एक निश्चित अनुपात में बनाया जाता था। जैसे मानव शरीर एक निश्चित अनुपात में होता है। मानव शरीर के लिए माप की इकाई अंगुल बताई गई है। मुख १२ अंगुल, कण्ठ ४ अंगुल इसी प्रकार पूरे शरीर के अवयव होते हैं। इसी प्रकार भवन भी एक अनुपात में बनाया जाता है। आज जब हमें किसी पुराने भवन का जीर्णोद्धार करना हो तब पुरातत्ववेत्ता इसी अनुपात के आधार पर भवन का जीर्णोद्धार करते हैं।

आज भी हम अनुपात का प्रयोग कर भवन को स्थिर, लम्बे समय तक बने रहने वाला बना सकते हैं।

उसके पश्चात् श्लोक १३ में बताया है कि राजा के भवन में पत्थर का प्रयोग कर सकते हैं, परन्तु सामान्य व्यक्ति के गृह में पत्थर का प्रयोग करने से धन का नाश होता है। आज भी सामान्य व्यक्ति जैसे उसकी आर्थिक स्थिति हो, उसके अनुसार उसके गृह का निर्माण करना चाहिए, अधिक विशाल व भव्य गृह का निर्माण करने पर धन का नाश होता है तथा सरकारी विभाग आदि से भी परेशानी होने की आशंका बनी रहती है।

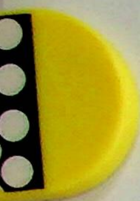
उसके पश्चात् निर्माण की विधि तथा आन्तरिक सज्जा का वर्णन है यह बताया है कि हिंसक पशु, पक्षी आदि के चित्र गृहों में नहीं लगाना चाहिए, इससे गृहस्थ की वृत्ति भी हिंसक होने की आशंका रहती है।

उसके पश्चात छत बनाने की विधि का वर्णन है। उसके पश्चात् जलाशय उद्यान बनाने की विधि बताई है। हम आज बगीचे, उद्यान आदि का निर्माण इन सिद्धान्तों को ध्यान में रखकर सकते हैं। इस प्रकार से बने उद्यान में जाने से मन प्रसन्न होता है। आज के समय में जो फार्म हाऊस, वॉटर पार्क आदि को जो निर्माण होता है, उसमें इसका बड़ा महत्वपूर्ण उपयोग किया जा सकता है। इस अध्याय में उद्यान में लगाए जाने वाले वृक्ष, फव्वारे, जलयन्त्र, कूप आदि का वर्णन विस्तार से किया है।

उसके पश्चात् अश्वशाला व गजशाला का वर्णन है, जिसका उपयोग समृद्ध व्यक्ति अपने गेरेज या वाहन रखने के स्थान की संरचना करने में ले सकता है।

उसके पश्चात् राजा के अतिरिक्त अन्य लोगों के गृहों के मान का वर्णन है, यह हमारी सामाजिक व्यवस्था का प्रतीक है, जिसे आज के समय में भी पूरा किया जा सकता है।





अध्याय-५

गणित क्षेत्रादि, मुहूर्त लक्षण



अध्याय-५

गणित क्षेत्रादि, मुहूर्त लक्षण



५.१ गणितक्षेत्राद्भुतलक्षणम्

५.१.१ मान

शालिनी

छाया चाणूरेणुकेशाग्रलिक्षायूकाः प्रोक्ताः स्याद् यवस्त्वङ्गुलं हि।
छायादिभ्योऽष्टघ्नमानस्य वृद्धिः प्रोक्तो हस्तो जैनसंख्याङ्गुलैश्च।।१।।

छायादि के क्रम से आठ-आठ का गुणा करने से जो माप होती है अब उसकी रीति कहते हैं -छाया को आठ से गुणा करने पर एक अणु होता है। आठ अणु का एक रेणु, आठ रेणु का एक केशाग्र, आठ केशाग्र का एक लिक्षा, आठ लिक्षा का एक यूका, आठ यूका का एक यव, आठ यव का एक अंगुल तथा चौबीस अंगुलों का एक हस्त होता है।

इकाई	इकाई
आठ छाया	एक अणु
आठ अणु	एक रेणु
आठ रेणु	एक केशाग्र
आठ केशाग्र	एक लिक्षा
आठ लिक्षा	एक यूका
आठ यूका	एक यव
आठ यव	एक अंगुल
चौबीस अंगुलों	एक हस्त

५.१.२ खातादि घनफल

इन्द्रवज्रा

व्यासेन दैर्घ्ये गुणिते यदैक्यं तत्कोणक्षेत्रस्य फलं प्रदिष्टम्।
पिण्डे तदैक्यं पुनरेव ताड्यं खातस्य भित्तेश्चयनादिसिद्धिः।।२।।



भूमि की लम्बाई व चौड़ाई के गुणन फल को भूमि का क्षेत्रफल जानना। क्षेत्रफल को गहराई या ऊँचाई के साथ गुणा करने पर जो गुणनफल आए उसे घन फल जानना। इससे खुदाई व दीवार की जुड़ाई के लिए सिद्धि होती है यानि ईंट की ऊँचाई, चौड़ाई, लम्बाई की गणना से ईंटों की संख्या मालूम होती है।

उपजाति

करे करघ्ने च करप्रमाणं कराङ्गुलेनाङ्गुलमेव संख्या।

स्यादङ्गुलैरङ्गुलताडितैश्च लब्धं फलं जैनविभाजिते तत्।।३।।

(भूमि की चौड़ाई को लम्बाई के साथ) (दोनों मान) हस्त में गुणा करने हस्तात्मक, हस्त तथा अंगुल में माप लेकर गुणा करने पर हस्तांतंगुलात्मक, अंगुल में लेकर गुणा करने पर अंगुलात्मक एवं अंगुलात्मक को चौबीस से भाग देने पर अंगुलहस्तात्मक क्षेत्रफल कहलाता है।

मन्दाक्रान्ता

वृत्तव्यासत्रिगुणपरिधिः व्यासषड्भागयुक्तो

विस्तारार्द्धं परिधिदलमन्योऽन्यनिघ्ने यदैक्यम्।।

पिण्डेनैवं पुनरपि ततस्ताडयेत् खातसिद्ध्यै

चित्यादेर्वा स्फुटफलमिति क्षेत्रवृत्तस्वरूपम्।।४।।

वृत्त के व्यास को तीन से गुणा करके व्यास के छठे भाग जोड़कर जो अंक आता है, उसे वृत्त की परिधि होती है।

(d*3)+(d/6)=circumference

d(3+1/6)=2r (19/6)=2(3.16667)r

व्यास के आधे में, परिधि के आधे का गुणा करने पर, वृत्त का क्षेत्रफल जानना।

(d/2)*2(3.1667)r/2=Area

2r/2*2(3.1667)r=2(3.167)r2

पिण्ड खात की ऊँचाई से गुणा करने पर, जो अंक आए, उसे खात का क्षेत्रफल (घनफल) जाने।

इसी प्रकार चित्ति का भी फल जाने। यह वृत्त क्षेत्र का स्वरूप फलादि साधन हुआ।



वसन्ततिलका

वृत्तस्य यः परिधिरब्धिविभागकघ्नो
व्यासस्य चैक्यफलमुक्तमिदं हि तज्ज्ञैः।
दैर्घ्ये पृथुत्वगुणिते च यदैक्यमस्मात्
पञ्चाङ्गुलान्यपहरेत् करतः फलं स्यात्।।५।।

वृत्त की परिधि को व्यास के चतुर्थ भाग से गुणा करने पर क्षेत्रफल प्राप्त होता है।

दूसरी विधि वृत्त की लम्बाई को, चौड़ाई से गुणा कर (अर्थात व्यास का वर्ग कर) जितना हस्त हो, प्रत्येक हस्त के पीछे पांच अंगुल लेकर घटा देना तो उसे हस्तात्मक क्षेत्रफल जाने।

५.१.३ गोल घनफल

उपजाति

घनीकृतं व्यासदलं निजैकविंशांशयुग्गोलफलं घनं स्यात्।
व्यासस्य सप्तांशयुतः सुवृत्ते व्यासः त्रिनिघ्नः परिवेषकोऽवयम्।।६।।

व्यास के घनफल का आधा करना, उसमें उसी का एक विशांश (१।२१) जोड़ देना तो क्षेत्रफल (घनफल) होता है तथा त्रिगुणित व्यास में व्यास का सप्तमांश जोड़ देने से परिधि होती है।

$6r+2r/7=r(6+2/7)=r(44/7)=6.2857r$

वृत्तक्षेत्रे परिधिगुणितव्यासपादः फलं तत्
क्षुण्णं वेदेरुपरि परितः कन्दुकस्यैव जालम्।
गोलस्यैवं तदपि च फलं पृष्ठजं व्यासनिघ्नं
षड्भिर्भक्तं भवति नियतं गोलगर्भे घनाख्यम्।।७।।

वृत्त की परिधि को व्यास कर, चार से भाग देने पर वृत्त का क्षेत्रफल होता है।

उसे चार के गुणा करने पर अर्थात् व्यास और परिधि के घात तुल्य गोल का पृष्ठफल होता है और उस पृष्ठफल को व्यास से गुणाकर छह का भाग देने से गोल का घनफल होता है।



५.१.४ चापक्षेत्रफल

उपजाति

जीवाशरैक्यस्य दलं शरेण हत्वास्य वर्गं दशभिर्विगुण्यम्।
अङ्कैर्विभक्ते सति लब्धमूलं प्रजायते चापफलं स्फुटं तत्।।८।।

शर (उत्क्रमज्या) और जीवा को जोड़कर उसका आधा करना, उसके शर से गुणा देना, उसका वर्ग करना, दस से गुणा देना और नौ का भाग देना, लब्ध का मूल लेना तो चाप (धनुष) का क्षेत्रफल होता है।

मूलावशेषं हि तदेक्ययुक्तं जिनाहतं संयुतमङ्गुलैश्च।
द्वाभ्यां युतेन द्विगुणेन मूलेनाप्तं स्फुटं तत्फलमुक्तमाद्यैः।।९।।

धनुष के क्षेत्रफल निकालने में मूल के शेष अंक में एक जोड़कर चौबीस से गुणा कर, पांच जोड़कर, दो से गुणाकर दो जोड़कर उसका स्पष्ट परिणाम प्राप्त होता है।

५.१.५ अष्टकोणक्षेत्रफल

इन्द्रवज्रा

अष्टास्त्रकस्य पृथुलेन दैर्घ्यं गुण्यं हि तद् रागविभागहीनम्।
षड्भागकस्याष्टयुगांशभागं कुर्याद् विहीनं पुनरेव शेषात्।।१०।।

अष्टकोण- दैर्घ्य को दैर्घ्य से गुणा करें यानि व्यास का वर्ग करें, उसमें से उसी वर्ग का षष्टांश घटा दे, फिर उस षष्ठांश का अड़तालीसवां भाग भी कम करें तो अष्टकोण का क्षेत्रफल जाने।

यत्षोडशास्त्रं रसभागहीनं तद्वर्गमूलस्य षडंशकस्य।
शक्रांशहीनं कथितं पुनश्चेच्छेषं बुधैर्वास्तुमतानुसारि।।११।।

षोडशास्त्र- व्यास का जो षष्ठांश हो तो उसको व्यास में ऊन करना (कम करना), फिर उस षष्ठांश का वर्गमूल जोड़ना, प्राप्त संख्या में उसका चतुर्दशांश उसमें जो घटा देना तो षोडशास्त्र का क्षेत्रफल होता है।

शालिनी

सर्वं मानं ज्ञायतेऽभ्यासयोगाद् हीनाधिक्यं स्थानयोगं गतोऽपि।

अन्यक्षेत्रे वैषमं वा समं वा ज्ञेयं लोकाल्लक्षतः सूत्रधारैः।।१२।।

गणित में अभ्यास होने से सब मान निकलता है, स्थान के न्यूनाधिक के कारण जो न्यूनाधिक हो अथवा विषम या सम जैसा क्षेत्र बनाना हो सूत्रधार लोकप्रथानुसार उसको व्यवहार करें।

५.१.६ षट्कोण निर्माण

शार्दूलविक्रीडित

यद् वृत्तं परिलेखकेन लिखितं षण्मत्स्यपातास्ततः

षट्कोणं रसबाहुकं तदुदितं बाहुर्भजेत् सप्तभिः।

सप्तास्रे रसभागबाहुरुदितः सप्तास्रतोऽष्टास्रकं

तद्वन्नन्ददशादिबाहुबहुशो ज्ञेयाः स्वबुद्ध्याखिलाः।।१३।।

जो वृत्त परिलेख (परकाल) से लिखा जाए, उसमें उसी व्यासार्ध से वृत्त करके छह विभाग करना तो षटकोण बनता है। इसके एक विभाग में सात-सात विभाग परकाल से करके छह-छह विभाग पर रेखा करने से सप्तभुज बनता है। इस प्रकार और भी जानना।

५.१.७ पंचकोण निर्माण

षड्बाहोर्वा बाहुरस्येषुभागे युक्ते बाहुः पञ्चकोणस्य सः स्यात्।

यावान् बाहुस्तेन मानेन गुण्यो बाह्वोर्योगं तस्य मूलं विकर्णम्।।१४।।

पंचभुज निर्माण प्रकार- षड्भुज के प्रत्येक विभाग में पांच पांच विभाग करने से छह-छह विभाग पर रेखा करने से पंचभुज बनता है। जितनी भुजाएँ हो, उसी की संख्या से गुणा देने से भुज का वर्ग होता है। वही उसका मूल विकर्ण है।

उपजाति

दैर्घ्यात् पृथुत्वं जिनभागहीनं तिथिप्रमाणाः कथिता भुजाश्च।

पञ्चास्रमेतत् परिलेखनीयं पुष्पेषु केष्वेव हि तस्य रूपम्।।१५।।



पंचभुज विषये- लम्बाई का चौबीसवां हिस्सा कम करके चौड़ाई जानना इसका पंचदशांश एक भुजा का प्रमाण पंचशास्त्र में जानना। इस प्रकार का पंचभुज किसी किसी फलों में रहता है।

आयामतो विस्तरमष्टमांशं हीनं प्रकुर्याद् रथकार सुज्ञः।
दैर्घ्यार्द्धदैर्घ्येण समास्तदस्रा यन्त्रादिषट्कोणकमेतदुक्तम्।।१६।।

षट्कोण लम्बाई का अष्टमांश कम चौड़ाई कल्पना करना, इसके बाद दैर्घ्य (लम्बाई) के आधे पर गई हुई दैर्घ्य के बराबर रेखा करना तो यन्त्र बनाने के लिए षट्कोण होता है।

अष्टास्त्रं यं तं पृथुत्वेन दैर्घ्यं तुल्यं कार्यं कर्णवैकर्णहीनम्।
चातुष्कोणं हस्तमेयं यदा स्यात् बाहुस्तस्मिन्नङ्गुलैर्दिक्प्रमाणैः।।१७।।

अष्टकोण में कर्ण तथा वैकर्ण से रहित लम्बाई व चौड़ाई को समान रखना चाहिए। चतुष्कोण क्षेत्र में यदि भुजा का मान हस्त प्रमाण से हो तो उसे दस-दस अंगुल मान से निकालना चाहिए।

षष्ठो विभागेऽपि च दैर्घ्यकस्य तस्यैव षड्भागयुतो विधेयः।
बाहुप्रमाणं कथितं कलास्त्रे क्षेत्रे तथान्यानि विचार्य कुर्यात्।।१८।।

दैर्घ्य का जो षष्ठांश हो, उसमें उसी का षष्ठांश जोड़कर षोडशांश का भुज होता है और इसे अतिरिक्त क्षेत्रों में अपने विचार में भुज बनाना।

वसन्ततिलका

श्येनः कपोतबकपेचकभासगृध्रा-
श्चिल्लः श्रृगालमृगशूकरसिंहकीशाः।
इत्यादयो धनहरा भवने प्रविष्टा
गेहं यदा कटकायति कम्पते वा।।१९।।

श्येन (बाज), कपोत (कबूतर), वक (बगुला), पेचक (उल्लू) मास, चील्ह, श्रृगाल, मृगा, शूकर सिंह , बन्दर आदि घर में बनवाए (घर में प्रवेश करें) तो धननाशक होते हैं। तथा घर में यदि कटकटा शब्द हो अथवा कम्प हो तो धननाश होता है।

प्राकारदेवभवने नृपमन्दिरे च

चैत्यध्वजादिषु यदाद्भुतमेव दृष्टम्।

इत्यादिकं सुदृढमेव पतत्यकस्मात्

तद् भूपतेर्भयकरं गृहिणां ग्रहोत्थम्।।२०।।

प्राकार, देवगृह, राजगृह, चैत्य, ध्वजा इत्यादि इनमें यदि विकार दिख पड़े तो राजा को भय होता है अथवा ये सब दृढ हो फिर भी अकस्मात गिर पड़े तो भी राजा को अथवा गृहपति को भय होता है।

स्थानेषु पूर्वविहितेष्वपि तोरणे च

द्वारे गृहे यदि भवेन्मधुवामलूरौ।

स्थूणा कपाटदृढकाष्ठभङ्ग्ग एव

भूमेर्विदार इति मृत्युकरं वदन्ति।।२१।।

पूर्वोक्त स्थान में तथा तोरण पर, द्वार पर मधु (मधुमख्खी का छत्ता) लगे अथवा मलूर (दीमक की बाँबी) हो तथा स्थूणा (थूनी) (चौकठ) एवं कपाट की मजूबत लकड़ी भी टूट जाती है तथा दृढ दीवाल इत्यादि गिर जाए वा जमीन फट जाए तो गृहपति की मृत्यु होती है।

- बाज, कबूतर, वक, बगुला, उल्लू, मास, चील्ह, श्रृगाल, मृगा, शूकर सिंह , बन्दर आदि घर में प्रवेश करें तो -धननाशक
- घर में यदि कटकटा शब्द हो अथवा कम्प हो तो -धननाश
- प्राकार, देवगृह, राजगृह, चैत्य, ध्वजा इत्यादि इनमें यदि विकार दिख पड़े तो -राजा को भय
- प्राकार, देवगृह, राजगृह, चैत्य, ध्वजा इत्यादि अकस्मात गिर पड़े तो भी राजा को अथवा गृहपति को भय
- पूर्वोक्त स्थान में तथा तोरण पर, द्वार पर मधु (मधुमख्खी का छत्ता) लगे अथवा मलूर (दीमक की बाँबी) हो तथा स्थूणा (थूनी) (चौकठ), एवं कपाट की मजूबत लकड़ी भी टूट जाती हैं तथा दृढ दीवाल इत्यादि गिर जाए वा जमीन फट जाए तो- गृहपति की मृत्यु
- गृह के द्वार पर सर्प प्रवेश करें तो- गृहिणी का मरण
- द्वार पर दुर्गा पक्षी नीड (घोंसला) बनाए या उल्लू बोले तो- विनाश
- घर में तैल, घी, भात, चर्बी की वर्षा हो तो- रोग
- रक्त की वर्षा हो तो -गृहस्वामी को दुख
- अकस्मात गीत या बाजे का शब्द हो तो भी -कल्याण नहीं

उपजाति

द्वारे गृहस्यापि विशेद् भुजङ्गस्तदा विनाशं कुरुते गृहिण्याः।
तत्रैव दुर्गा प्रकरोति नीडं रटत्युलूकोऽपि विनाशहेतुः।।२२।।

गृह के द्वार पर सर्प प्रवेश करें तो गृहिणी का मरण होता है अथवा द्वार पर दुर्गा पक्षी नीड (घोंसला) बनाए या उल्लू बोले तो विनाश होता है।

वसन्ततिलका

रोगाय तैलघृतभक्तवसादिधारा
दुःखं भवेद् गृहपेतर्यदि रक्तधारा।
वादित्रगीतनिनदो भवनेष्वकस्मात्
सञ्जायते यदि तदा कथयत्यसौख्यम्।।२३।।

घर में तैल, घी, भात, चर्बी की वर्षा हो तो रोग होता है। रक्त की वर्षा हो तो गृहस्वामी को दुख होता है। अकस्मात गीत या बाजे का शब्द हो तो भी कल्याण नहीं होता है।

गेहेऽद्भुतं यदि तदा भवनं विहाय
कुर्याद् बलिं च विधिवद् हवनं सुरार्चाम्।
दानं द्विजाय यतिदुर्बलदुःखितेभ्यो
दद्यात् ततोऽपि निवसेद् भवने सुखार्थी।।२४।।

घर में यदि उत्पात दिख पड़े तो घर को छोड़ कर, अन्यत्र रहे और घर में विधि पूर्वक बलि, हवन, देवपूजन करें। ब्राह्मण, यति, दुर्बल और दुःखी को दान देने से तब सुख की इच्छा से उस घर में निवास करें।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):-

राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय १० में ज्यामिति का वर्णन है। इसमें सबसे पहले माप की इकाई का वर्णन है। सबसे सूक्ष्म इकाई परमाणु बताई गई है। ज्यामिति के माध्यम से वर्ग, आयत, अष्टकोण, पंचकोण, सोलह कोण आदि का वर्णन है। यह ग्रन्थ प्राचीन ज्यामिति के सिद्धान्तों पर आधारित है। इससे यह सिद्ध होता है उस समय भी भारत में गणित का ज्ञान समृद्ध था। इन सिद्धान्तों का उपयोग आज भी निर्माण के क्षेत्र में किया जाता है।

उसके पश्चात् राजमहल में निर्माण सम्बन्ध दोष तथा उनके दुष्परिणाम का वर्णन किया है। भवन का कोई भी महत्वपूर्ण भाग जब टूट, फट, झुक जाता है या उसमें कोई दोष उत्पन्न हो जाता है तो गृहस्वामी के लिए अशुभ होता है, ऐसे दोष का तुरन्त ही परिहार करना चाहिए।



५.२ दिनशुद्धिगृहनिवेशगृहप्रवेशविवाहमुहूर्तलक्षणम्

५.२.१ तिथि

उपजाति

नन्दातिथि षट् प्रतिपञ्च रुद्रा द्विर्द्वादशी सप्तमिका च भद्रा।
जया तृतीयाष्टमिका च विश्वा रिक्ता चतुर्थी नवमी च भूता।।१।।

छठ, प्रथमा, ग्यारह तिथिओं को नन्दा। दूज, बारस, सप्तमी को भद्रा। तीज़, अष्ठमी व तेरस को जया तथा चतुर्थी, नवमी व चौदस को रिक्ता तिथि जानना।

नन्दा	भद्रा	जया	रिक्ता	पूर्णा
१	२	३	४	५
६	७	८	९	१०
११	१२	१३	१४	१५

शालिनी

पूर्णा प्रोक्ता पञ्चदिक्पौर्णमासी नन्दा शुक्रे राजपुत्रे च भद्रा।
पृथ्वीपुत्रे सिद्धिदा वैजया स्यान्मन्दे रिक्ता देवपूज्ये च पूर्णा।।२।।

पंचमी, दशमी व पूर्णिमा को पूर्णा तिथि जानना। शुक्रवार और नन्दा, बुधवार व भद्रा, मंगलवार व जया, शनिवार व रिक्ता तथा गुरुवार व पूर्णा तिथि को सिद्धियोग (सिद्धि देने वाली) जानना।

सिद्धियोग-

र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
		ज	भ.	पू.	नन्दा	रि.



एकादशी जीवदिने च षष्ठी भौमे त्रयोदश्यपि शुक्रवारे।
सूर्ये नवैकाष्टमिकाश्च सिद्धाश्चन्द्रे द्वितीया दशमीनवम्यौ।।३।।

ग्यारस को गुरुवार, छठ को मंगलवार, तेरस को शुक्रवार, नवमी, पड़वा व अष्टमी को रविवार, दूज, दशमी, नवमी को सोमवार हो तो सिद्धियोग (सिद्धि देने वाली) जानना।

सिद्धियोग-

र.	सो.	मं.	बु.	गु.	शु.	श.
१,८,९	२,९,१०	६	-	११	१३	-

५.२.२ वार व नक्षत्र

उपजाति

रवौ शुभान्यश्विनिकं च मूलं पुष्योऽपि हस्तोत्तरकत्रयं च।
दुष्टा मघा द्वादशिका च याम्या मैत्रद्वयं सप्तमिका विशाखा।।४।।

रविवार को अश्विनी, मूल, पुष्य, हस्त और उत्तरा फाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तरा भाद्रपद नक्षत्र हो तो शुभ है तथा रविवार को मघा, भरणी, अनुराधा, ज्येष्ठा व विशाखा शुभ नहीं तथा रविवार को बारस, सप्तमी भी शुभ नहीं है।

शुभानि चन्द्रे श्रवणानुराधे पुष्यो मृगो रोहिणिका तथैव।
न शोभनैवकादशिकाभिजिच्चाषाढाद्वयं चित्रविशाखिके च।।५।।

सोमवार को श्रवण, अनुराधा, पुष्य, मृग व रोहिणी नक्षत्र शुभ है तथा एकादशी तिथि तथा अभिजित, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, चित्रा व विशाखा नक्षत्र अशुभ है।

भौमे शुभं वह्निभमश्विनी चाश्लेषा च मूलोत्तरभद्र एव।
नेष्टा दशम्युत्तरषाढभं च तथा त्रयं वासव तस्य रौद्रम्।।६।।

मंगलवार को कृतिका, अश्विनी, अश्लेषा, मूल व उत्तराभाद्रपद शुभ है तथा दशमी तिथि व उत्तराषाढ़ा, धनिष्ठा, शतभिषा, पूर्वाभाद्रपद व आर्द्रा नक्षत्र अशुभ है।

बुधैः(धे) शुभौ पुष्यकरौ मृगश्च ब्राह्म्याग्निभं सिद्धिकरं च मैत्रम्।
वर्ज्या धनिष्ठा प्रतिपन्नवम्यौ याम्याश्विनी रेवतिका तथैव।।७।।



बुधवार को पुष्य, हस्त, मृगशीर्ष, रोहिणी, कृतिका व अनुराधा नक्षत्र शुभ है तथा प्रतिपदा व नवमी तिथि तथा धनिष्ठा, भरणी, अश्विनी व रेवती नक्षत्र अशुभ हैं।

जीवेऽश्विनी सिद्धिकरानुराधा पुनर्वसु रेवतिका च पुष्यः।

न शोभनं वारुणमष्टमी च बाह्म्या त्रयं चोत्तरफाग्निधिष्ण्यम्।।८।।

गुरुवार को अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, रेवती व पुष्य नक्षत्र शुभ हैं तथा अष्टमी तिथि व शतभिषा, रोहिणी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, उत्तराफाल्गुनी व कृतिका नक्षत्र अशुभ है।

इन्द्रवज्रा

शुक्रे शुभं पौष्णयुगं च पूफा श्रुत्युत्तराषाढभमैत्रभं च।

वर्ज्या भृगौ सप्तमिका च पुष्यो श्लेषा मघा रोहिणिका च ज्येष्ठा।।९।।

शुक्रवार को रेवती, अश्विनी, पूर्वाफाल्गुनी, श्रवण, उत्तराषाढ़ा, अनुराधा नक्षत्र शुभ हैं तथा सप्तमी तिथि तथा पुष्य, आश्लेषा, मघा, रोहिणी, ज्येष्ठा नक्षत्र अशुभ हैं।

उपजाति

शनौ शुभा रोहिणिका श्रुतिश्च स्वास्तिस्तथा वारुणभं च शस्तम्।

न शोभनं चोत्तरफात्रयं चाषाढद्वयं रेवतिका च षष्ठी।।१०।।

शनिवार को रोहिणी, श्रवण, स्वाती व शतभिषा नक्षत्र शुभ हैं तथा उत्तराफाल्गुनी, हस्त, चित्रा, स्वाती, पूर्वाषाढ़ा, उत्तराषाढ़ा, रेवती व छठ तिथि अशुभ है।

शार्दूलविक्रीडित

सूर्ये रूपरसद्विका शशिदिनेऽष्टौ पञ्च चैकस्तथा

चत्वारो मुनयोऽष्ट भूमितनये षट् त्र्यष्ट चन्द्रात्मजे।

जीवे युग्मशराः स्वरा भृगुसुते रामैवेदाष्टमी

मन्देऽष्टौ गुणपञ्चसप्तदिवसेऽष्टांशा शुभा वासरे।।११।।

रविवार को पंचमी(प्रथमा), छठ और दूज शुभ, सोमवार को अष्टमी, पंचमीं, प्रतिपदा, मंगलवार को चौथ, सप्तमी, अष्टमी, बुधवार को छठ, तीज, अष्टमी, गुरुवार को दूज, पंचमी, सप्तमी, शुक्रवार को चौथ, छठ, पड़वा तथा अष्टमी एवं शनिवार को अष्टमी, तीज, सप्तमी व पंचमी तिथि हो तो शुभ होता है।

उपजाति

कृष्णे निशायां दशमे तृतीये भद्रा दिने सप्तचतुर्दशे तु।
शुक्ले रजन्यां युगरुद्रसंख्ये दिनेऽष्टमीपूर्णिमयोश्च वर्ज्या।।१२।।

कृष्ण पक्ष की रात्री में दशमी एवं तृतीया तथा दिन में सप्तमी एवं चतुर्दशी वर्जनीय (त्यागने योग अशुभ) तिथि हैं। शुक्ल पक्ष की रात्रि में चतुर्थी एवं एकादशी तथा दिन में अष्टमी एवं पूर्णिमा त्यागने योग्य होती है।

५.२.३ ग्रह

शार्दूलविक्रीडित

सूर्ये कार्मुकमीनगे सुरगुरौ सिंहे विधौ दुर्बले
गण्डान्तव्यतिपातवैधृतदिने दग्धे तिथौ भेऽथवा।
शुक्रेऽस्ते हि गुरौ च पातसमये विष्ट्यां च मासाधिके
चन्द्रे पापविलोकिते च सहिते कार्यं न किञ्चच्छुभम्।।१३।।

धनु व मीन राशि का सूर्य, सिंह का गुरु, चन्द्रमा दुर्बल, गंडान्त योग, व्यतिपात, वैधृत योग, दग्धा तिथि, दग्ध नक्षत्र, शुक्र अस्त, गुरु अस्त, पातयोग, विष्टि, अधिक मास, चन्द्रमा पर पापग्रह की दृष्टि हो तो ऐसे समय शुभ काम का त्याग करना चाहिए।

आदौ भूमिपरीक्षणं शुभदिने पश्चाच्च वास्त्वार्च्चनम्
भूमेः शोधनकं ततोऽपि विधिवत् पाषाणतोयान्तकम्।
पश्चाद् वेश्मसुरालयादिरचना पादस्य संस्थापनं
कार्यं लग्नशशाङ्कशाकुनबलैः श्रेष्ठे दिने श्रीमता।।१४।।

शुभ दिन में पहले भूमि का परीक्षण करें, फिर वास्तुदेव का पूजन, फिर विधि पृथ्वी में पत्थर या पानी आए वहाँ तक शोधन करें, पश्चात् बुद्धिमान मनुष्य घर या देवमन्दिर के लिए लग्न, चन्द्रमा, शकुन बल हो ऐसे श्रेष्ठ दिन हो उस समय घर एवं देवालय आदि की रचना के लिए, पाया (स्तम्भ) की स्थापना (शिलान्यास) करें।

५.२.४ नक्षत्र वार आदि

वास्तोः कर्मणि धिष्ण्यवारतिथयोऽश्विन्युत्तरा रेवती
हस्तादित्रयमैत्रतोयवसुभे पुष्यो मृगो रोहिणी।

निन्द्यौ भूसुतभास्करौ च शुभदा पूर्णा च नन्दा तिथि-
र्नेष्टा वैधृतिशूलगण्डपरिघा व्याघातवज्रावपि।।१५।।

वास्तु के काम में नक्षत्र, वार व तिथि निम्न विधि से लें। अश्विनी, तीनों उत्तरा (उत्तराभाद्रपद, उत्तराषाढ़ा व उत्तराफाल्गुनी) व हस्त (हस्त, चित्रा, स्वाती), अनुराधा, पूर्वाषाढा, धनिष्ठा, पुष्य, मृगशीर्ष, रोहिणी ये नक्षत्र लेना। परन्तु मंगलवार व रविवार को नहीं लेना। पूर्णा व नन्दा ये तिथियाँ शुभ है, पर वैधृत, शूल, गंड, परिघ, व्याघात व वज्र योग शुभ नहीं हैं।

विष्कुम्भव्यतिपातकौ च न शुभौ योगाः परे शोभनाः
शस्तं नागबवाह्वतैतिलगरं युग्मां तिथिं वर्जयेत्।
मौहूर्तं त्वथ विश्वमष्टनवमं पञ्चत्रिरागाद्रिकं
श्रेष्ठं च द्वितयं तुला वृषघटौ युग्मं धनुः कन्यके।।१६।।

विष्कुम्भ व व्यतिपात तथा पिछले श्लोक में बतलाए गए योग को छोड़कर, शेष सभी योग शुभ हैं। नाग, बव, तैतिल व गर ये चार करण शुभ हैं। युग्म तिथि (जहाँ दो तिथि एक साथ हो) को त्याग दे। (दूसरा अर्थ यह है कि सम तिथि २, ४, ६, ८ आदि का त्याग करें)। दिन में दो घड़ियों का मुहूर्त में तेरस, अष्टमी, नवमी, पंचमी, तीज, छठ, सप्तमी व दूज शुभ है। उनमें तुला, वृष, कुम्भ, मिथुन, धनु तथा कन्या लग्न शुभ है।

५.२.५ लग्न आदि

द्व्यङ्गे वा स्थिरभे च सौम्यसहिते लग्ने शुभैर्वीक्षिते
सौम्यैः वीर्यसमन्वितैश्च दशमे निर्माणमाहुर्बुधाः।
तैर्वा धीनवकेन्द्रगैस्तु फलदं पापैस्त्रिषष्ठायगैः
क्रूरो ह्यष्टमसंस्थितोऽपि मरणं कर्तुर्विधत्तेतराम्।।१७।।

द्विस्वभाव, स्थिर लग्न, इन लग्न में सौम्य ग्रह या उनकी दृष्टि, दसवें स्थान में सौम्य ग्रह बलवान हो तो ऐसे समय गृहारंभ करें अथवा पांचवे, नवें व केन्द्र में शुभ ग्रह बलवान हो तो शुभ फल देते हैं अतः ऐसे समय गृहारंभ करें। तीसरे, छठे, ग्यारहवें स्थान पर पापग्रह भी शुभ फल देते हैं परन्तु घर के प्रारंभ में क्रूरग्रह आठवें स्थान में हो तो स्वामी की मृत्यु होती है।



जीवः सौख्यमपाकरोति भृगुजो धान्यं स्त्रियं चन्द्रमाः
सूर्यो वेश्मपतिं चतुष्टयमिदं नीचास्तगं दुर्बलम्।
जीवे लग्नमुपागते शशिसुते यामित्रगेऽर्के रिपौ
शुक्रेऽब्धौ सहजे शनौ च शरदां गेहं शतं तिष्ठति।।१८।।

गृहारंभ करते समय यदि चौथे घर का स्वामी बृहस्पति बलवान हो तो सुख देता है। चौथे घर का स्वामी शुक्र बलवान हो तो धान्य की वृद्धि, चौथे घर का स्वामी चन्द्रमा बलवान हो तो स्त्री की प्राप्ति, चौथे घर का स्वामी सूर्य बलवान हो तो सुख आदि चार को देता है (यहाँ चार पुरुषार्थ अर्थ भी लिया जा सकता है)। परन्तु ये चारों ग्रह नीच स्थान में या अस्त हो तो निर्बल जानना। बृहस्पति लग्न में, बुध सातवें में, सूर्य छठे में, शुक्र चौथे में, शनि तीसरे भाव में हो तो गृह एक सौ वर्ष तक टिकता है।

मालिनी

भृगुसुत इह लग्ने ह्यायगेऽर्के च खे ज्ञे
गृहमपि शतमब्दान् स्थायि केन्द्रे सुरेज्ये।
द्विगुणमपि च शुक्रे मूर्तिगे विक्रमेऽर्के
सुरगुरुसुतसंस्थे भूमिपुत्रे च षष्ठे।।१९।।

लग्न में शुक्र, ग्यारहवें में सूर्य, दशम में बुध, केन्द्र में बृहस्पति हो तो घर एक सौ वर्ष तक टिकता है। लग्न में शुक्र, तीसरे में सूर्य, पांच में गुरु तथा छठे में मंगल हो तो घर दो सौ वर्ष तक टिकता है।

उपजाति

प्रारम्भकाले यदि मन्दभौमौ लाभाश्रितौ देवगुरुश्चतुर्थः।
चन्द्रोऽम्बरे चेच्छरदामशीतिः स्थितिर्निरुक्ता भवनस्थसद्भिः।।२०।।

गृहारंभ के समय शनि व मंगल ग्यारहवें भाव में, गुरु चौथे में तथा चन्द्रमा दसवें स्थान में हो तो घर अस्सी वर्ष तक रहता है।

शार्दूलविक्रीडित

लग्ने कर्कटमाश्रिते हिमकरे देवार्चिते केन्द्रगे
लक्ष्मीवद् भवनं खगैश्च सुहृदः स्वांशोच्चसंस्थैस्तथा।
नीचांशैरपि निर्धनं हि खचरो ह्येकः परांशस्थितो

यामित्रे दशमेऽब्दमध्यत इदं गेहं परैर्नीयते।।२१।।

कर्क लग्न में चन्द्रमा हो, केन्द्र में गुरु, मित्र के स्थान में ग्रह हो ऐसे समय गृहारंभ हो तो वह लक्ष्मीवान होता है। परन्तु नीच अंश का ग्रह हो तो ऐसे समय प्रारंभ करने पर निर्धन रहे। एक भी ग्रह शत्रु के घर में सातवें या दसवें स्थान (अंश) (सातवें या दशवें में शत्रु के अंश) में हो तो ऐसे समय गृह आरंभ करने पर वह घर शत्रु के आधीन हो जाता है।

उपजाति

भृगुर्विलग्ने यदि मीनसंस्थः कर्के गुरुः सूर्यगृहं गतश्च।

शनिस्तथैकादशगस्तुलायां गेहं चिरं श्रीसहितं तदा स्यात्।।२२।।

मीन लग्न में शुक्र हो घर लक्ष्मी सहित कई दिनों तक रहता है। बृहस्पति कर्क राशि का चौथे घर में हो ऐसे समय प्रारंभ करने पर शनि तुला में ग्यारहवें स्थान में हो तब प्रारंभ करने पर घर लक्ष्मी सहित चिर काल तक रहता है।

वसन्ततिलका

सौरादिकं त्रितयमस्य शिरः प्रयुक्तम्

भानां ततो द्वितयमग्रपदे च दक्षे।

कुक्षौ चतुष्कमपि दक्षिणगे प्रशस्तं

पृष्ठत्रयं त्रितयमप्यथ पुच्छभागे।।२३।।

पाश्चात्यपादयुगले द्वितयं द्वयं स्या-

च्चत्वारि भानि च ततः खलु वामकुक्षौ।

द्वे चाग्रवामचरणे द्वितयं च वक्त्रे

त्वेवं वदन्ति मुनयः खलु वत्सचक्रम्।।२४।।

शिरोभाग में सूर्य से तीन नक्षत्र हो, आगे के दाहिने पैर में दो नक्षत्र हो, दाहिनी कुक्षि में चार नक्षत्र हों, पीठ में तीन नक्षत्र हों, पूँछ में तीन नक्षत्र हों, पीछे के दोनों पैरों में दो-दो नक्षत्र हों, बाईं कुक्षि में चार-चार नक्षत्र हों, आगे के बाएँ पैर में दो तथा मुख में दो नक्षत्र हों तो इस मुनिजन वत्स चक्र कहते हैं।

शीर्षस्थिते सुखनिवृत्तिरथाग्रपादे

शून्यं च दक्षिणककुक्षिगते धनं स्यात्।

पृष्ठे शुभं भयकरं खलु पुच्छगे भे

पाश्चात्यपादयुगले विविधा गुणाः स्युः।।२५।।

दुःखं भयं स्यात् किल वामकुक्षौ भयं विनाशश्च मुखेऽग्रपादे।

विद्वद्भिरेवं खलु वास्तुखाते वत्सस्य चक्रेण निरीक्षणीयम्।।२६।।

सिर पर स्थित नक्षत्र में गृहारंभ करें तो सुख की निवृत्ति होती है। दाहिनी अग्र पाद में शून्य, दक्षिण कोख में धन, पीठ में शुभ, पूँछ में भयानक, पीछे के दोनों पैर में विविध गुण, बाई कुक्षि में दुख एवं भय, मुख में भय, अग्र पाद में विनाश होता है। अतः विद्वान व्यक्ति को खात के समय वत्स चक्र के द्वारा निरीक्षण करना चाहिए।

उपजाति

सौम्यायने शुद्धदिने प्रवेशं देवं गणेशं विधिवत्प्रपूज्य

ज्येष्ठे च मासे यदि मार्गपौषे पुनः प्रकुर्वीत्(र्यात्) श्रवणे च सिद्धिम्।

उत्तरायण में शुभ दिन में श्रीगणेश की विधिवद् पूजा करके गृहप्रवेश करना चाहिए। ज्येष्ठ, मार्गशीर्ष, पौष में गृहप्रवेश करना भी पड़े तो श्रवण में पुनः वास्तुपूजन करना चाहिए।

गृहप्रवेशो मृगमैत्रपुष्ये चित्राधनिष्ठोत्तरवारुणर्क्षे।

स्वात्यश्विनीपूषभरोहिणीषु शुभोऽथ रिक्ता रविभूमिजे न।।२८।।

मृगशीर्ष, अनुराधा, पुष्य, चित्रा, धनिष्ठा, तीनों उत्तरा, शतभिषा, स्वाती, अश्विनी, रेवती व रोहिणी इन नक्षत्रों में गृह-प्रवेश शुभ है। परन्तु रिक्ता तिथि, रविवार व मंगलवार इन दिनों में गृह-प्रवेश शुभ नहीं है।

मालिनी

अजवृषमृगकन्याः कर्कमीनौ तुलार्का-
द्विहितमिह समुच्चं सप्तमं नीचमस्मात्
कृ(क्रि)यमृगघटकर्काद्या नवांशा ह्यजादे-
श्चरलवमपि लग्नं वर्जनीयं प्रवेशे।।२९।।

मेष में सूर्य, वृष में चन्द्र, मकर में मंगल, कन्या में बुध, कर्क में गुरु, मीन में शुक्र व तुला में शनि उच्च का होता है।

तुला में सूर्य, वृश्चिक में चन्द्र, कर्क में मंगल, मीन में बुध, मकर में गुरु, कन्या में शुक्र तथा मेष में शनि नीच का होता है।

मेष, सिंह, धनु लग्न इन तीन का नवमांश मेषादि से गिनना। वृष, कन्या व मकर का नवमांश मकरादि से गिनना। मिथुन, तुला व कुम्भ इन तीन का नवमांश तुलादि से गिनना। कर्क, वृश्चिक व मीन इन तीन का नवमांश कर्क आदि से गिनना।)

इस रीति से बताए अनुसार लग्नों के नवमांश से चर नवमांश और चर लग्न इन दोनों को गृह-प्रवेश में त्याग करें।

मूर्तौ तथैवोपचये स्वराशिर्लग्नं यदा स्याच्छुभकृत्प्रवेशः।
द्विवेदपञ्चास्तनवाष्टमांशे राशिः स्वलग्नं च विनाशहेतुः।।३०।।

गृहस्वामी की राशि या लग्न से तीसरी, छठवीं, दसवीं या ग्यारहवीं राशि लग्न में हो तो उस समय गृहप्रवेश सुखकारी जाने। परन्तु दूसरी, चौथी, सातवीं, पांचवी, आठवीं, नवी तथा बारहवीं राशि लग्न में हो तो गृहस्वामी का नाश होता है।

त्रिकोणकेन्द्रेषु शुभाय सौम्याः केन्द्राष्टमान्त्येन विनैव पापाः।
भवन्ति शस्तास्त्रिषडायगाश्च चन्द्रेऽनुकूले स्थिरभे प्रवेशः।।३१।।

त्रिकोण व केन्द्र में सौम्य ग्रह शुभ फल देते हैं। केन्द्र, आठवें, बारहवें, कें अन्यत्र पाप ग्रह हो तो शुभ फल देते हैं। तीसरे, छठे, ग्यारहवें में पाप ग्रह हो तो वे भी शुभ फल देते हैं। चन्द्रमा अनुकूल हो और नक्षत्र स्थिर हो ऐसे समय में गृह-प्रवेश करना चाहिए।

गृहप्रवेशं गमनं न कुर्यात् शुक्रे बुधे दक्षिणसम्मुखेऽस्ते।
नवोढकन्यैकपुरे भयादौ न दोषदौ सम्मुखदक्षिणौ तौ।।३२।।

शुक्र व बुध दक्षिण या सामने हो तो गृह-प्रवेश या गमन नहीं करना चाहिए। ऐसे समय नवविवाहिता यदि दूसरे शहर या गांव में ससुराल हो तो, नहीं बुलाना चाहिए, परन्तु एक ही शहर या पुर में हो तो दोष नहीं लगता, परन्तु भय के समय भी यह दोष नहीं लगता।

शार्दूलविक्रीडित

पूज्योऽसौ कुलदेवता गणपतिः क्षेत्राधिनाथस्तथा

वास्तुर्दिक्पतयः प्रवेशसमये प्रारम्भणे धीमता।
आचार्यं द्विजशिल्पिनश्च विधिवत् सन्तोषयेच्छिल्पिनं
वस्त्रालङ्करणैर्गृहं प्रविशतः सौख्यं भवेत् सर्वदा।।३३।।

गृह-प्रवेश के समय बुद्धिमान मनुष्य कुलदेवता, गणपति, क्षेत्राधिपति, वास्तुदेवता, दिग्पाल इन देवताओं को पूजे। आचार्य, ब्राह्मण व शिल्पी को विधि अनुसार सन्तुष्ट करें। सुन्दर वस्त्र, अलंकार से सुसज्जित होकर गृहप्रवेश करें तो सदा सुख होता है।

तन्वङ्ग्याः करपीडने मृगमघामूलं तथैवोत्तरा।
हस्तस्वात्यनुराधिकाश्च सुखदाः पौष्णं तथा रोहिणी।
यस्याश्चारुमुखं नितम्बजघने स्थूले कुचौ श्रीफलै-
स्तुल्यौ क्षामकटिर्विशालनयने ताम्रोधरः सत्कचाः।।३४।।

कन्या के (शादी के लिए) लग्न विषय में मृगशीर्ष, मघा, मूल, तीनों उत्तरा, हस्त, स्वाती, अनुराधा, रेवती व रोहिणी यह नक्षत्र सुखकारी है। परन्तु किस स्त्री के साथ लग्न करना यह कहा है। जिसका मुख सुन्दर हो, नितम्ब व जघन स्थूल हों, जिसके स्तन श्रीफल जैसे हो, कमर पतली हो, नेत्र विशाल हों, होंठ लाल हों तथा केश सुन्दर हों ऐसी स्त्री के साथ लग्न करना।

शुक्रेज्येऽस्तगते मुकुन्दशयने सूर्ये धनुर्मीनगे
भद्रायां यममृत्युवेधसहितं गोधूलिकं वर्जयेत्।
युक्तं पञ्च विंशोपकैर्विधुबलं शस्तं विवाहस्य भे
दोषाणां शमनं विलोक्य मुनिना संन्ध्यागमे निर्मितम्।।३५।।

शुक्र, बृहस्पति अस्त हों, विष्णु शयन करते हों, सूर्य धनु या मीन में हो, भद्रा हो, यमघंट हो, मृत्युयोग हो, वेध हो, इनमें से कोई भी कारण हो उस समय गोधूलि लग्न न करें, परन्तु पांच विशवा की लग्न हो, चन्द्रमा का बल हो और विवाह का नक्षत्र हो उस दिन ऊपर बताए दोष के अलावा दूसरे दोषों की शान्ति कर गोधूलि लग्न करें, ऐसा मुनियों ने कहा है।

गोधूलेऽष्टमषष्ठमूर्तिषु विधुं लग्नेऽष्टमेऽस्ते कुजं
चान्यत् क्रान्तिसमानमेव कुलिकं मृत्योर्भयाद् वर्जयेत्।
एन्द्रार्द्धे प्रथमे ध्रुवस्य तुपरे क्रान्त्योस्तु साम्यं भवेत्

भानोर्बिम्बसमन्वितं सुखकरं मन्दोऽथ जीवे तथा।।३६।।

गोधूलि लग्न में आठवां, छठा व लग्न में चन्द्रमा न हो, लग्न आठवें में (व अस्त) मंगल न हो, क्रान्ति साम्य न हो, कुलिक योग न हो, ऐसे समय गोधूली लग्न करें। ऊपर बताए समय में लग्न करें तो मृत्यु का भय होता है। इन्द्र योग का पहला भाग, ध्रुव योग का उत्तरार्द्ध और गोधुली लग्न में सूर्य के अस्त होते समय, पश्चिम में सूर्य का बिम्ब दिखता हो, ऐसे समय शनिवार व गुरुवार के दिन गोधूली लग्न करना।

मासे जन्मतिथौ तथैव जनिभे ज्येष्ठे न ज्येष्ठोत्सवः
षण्मासान्न विवाहमुण्डनविधिर्भ्रात्रोः सहोदर्ययोः।
षष्ठे वा तृतये तथैव नवमे लग्नान्न कार्ये दिने
वेदीवर्णपवारकादिसकलं पाणिग्रहात्पूर्वतः।।३७।।

जन्म के मास, तिथि व नक्षत्र में लग्न न करें। पहले पुत्र का लग्न (विवाह) ज्येष्ठ मास में न करें। सगे भाई का विवाह छह मास में न करें। छह मास दूसरा मुण्डन न करें। विवाह के दिवस से छह दिन, तीसरे, नौ दिन शुभ कार्य न करें। विवाह से पहले वेदी, वर्ण आदि का विचार करें।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):- अपने यहाँ शास्त्र में एक परम्परा है कि किसी भी महत्वपूर्ण कार्य को शुभ मुहूर्त में आरम्भ करना चाहिए। शुभ मुहूर्त में कार्य का आरम्भ करने से प्रकृति का सहयोग प्राप्त होता है। मुहूर्त का निर्धारण राशि, ग्रह, नक्षत्र, वार, योग, करण आदि के आधार पर किया जाता है। राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय ११ ज्योतिष संबंधी शुभ मुहूर्त का विचार किया है। इसके अतिरिक्त यह भी कहा है कि बड़े पुत्र का विवाह ज्येष्ठ मास में नहीं करना चाहिए। ज्येष्ठ मास में बहुत अधिक गर्मी होती है जो कि बड़े या विशाल शुभ कार्य के अनुकूल नहीं है। यह प्रकार के प्रथम विवाह में बहुत व्यक्ति एकत्रित होते हैं, प्रकृति बहुत गर्म होने के कारण बीमार आदि होने की आशंका अधिक रहती है।

इसी प्रकार सगे भाई का विवाह छह मास में नहीं करना चाहिए। इससे आर्थिक बोझ बढ़ने की आशंका रहती है। इस प्रकार से शुभाशुभ का विचार कर कार्य करना चाहिए।

अध्याय-६

ज्योतिष लक्षण

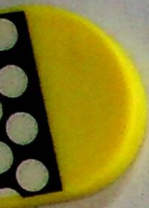
अध्याय-६

ज्योतिष लक्षण

अध्याय-६

ज्योतिष लक्षण





६.१ गोचरदिनरात्रिस्वरोदयचक्रमातृकाशकुनलक्षण

शार्दूलविक्रीडित

प्राक्पक्षे धवले शशिर्यदि शुभः पुंसां स पक्षः शुभः
कृष्णे चेदशुभस्तदा शुभकरो व्यत्यासतो निष्फलः।
तारावीर्यवशाच्छशी विधुबलादिष्टो रवेः सङ्क्रमः
शस्ता भानुबलाद् भवन्ति खचरा दुष्टाः स्थिता गोचरे।।१।।

शुक्ल पक्ष के प्रथम दिन पुरुष का चन्द्रमा शुभ हो तो वह पूरा पक्ष शुभ जानना। कृष्ण पक्ष के पहले दिन पुरुष का चन्द्रमा निर्बल हो परन्तु तारा बल भी शुभ हो तो कृष्ण पक्ष के पुरुष को शुभकारी होता है, इसके विपरीत हो तो निष्फल जानना। ताराबल से चन्द्रमा बली होता है। जिस दिन सूर्य संकान्ति हो उस दिन चन्द्रमा बलवान हो तो शुभ है। मंगल आदि दुष्ट ग्रह जिस दिन राशि बदले उस दिन सूर्य बलवान हो तो शुभ है।

६.१.१ ग्रहगोचर

उपजाति

सर्वे ग्रहा लाभगताः शुभा स्युस्त्रिषड्दशार्कस्तु तथैव राहुः।
शनिस्त्रिषष्ठः शुभकृन्महीजः क्रूरा ग्रहा गोचरगाः स्वराशेः।।२।।

सभी ग्रह ग्यारहवें भाव (स्थान) में शुभ होते हैं। तीसरे, छठे तथा दसवें भाव में सूर्य शुभ होता है। तीसरे, छठे व दसवें भाव में राहु शुभ होता है। तीसरे व छठे स्थान में शनि शुभ होता है। तीसरे व छठे स्थान में मंगल शुभ जाने। ग्रहों की स्वराशि में, गोचर में, शुभ फल प्रदान करते हैं।

शार्दूलविक्रीडित

चन्द्रः षट् त्रिदशाद्यसप्तमशुभः शुक्लेऽङ्कपञ्चाम्बिगो
ज्ञो युग्मेऽन्त्यविवर्जिते सुरगुरुर्धर्मास्तधी युग्मतः।
शुक्रोऽस्तारिविवर्जितोऽथ सकले चन्द्रः सदालोक्यते
होरा सार्द्धघटीद्वयं निजदिनात् षष्ठी भवेत् सर्वदा।।३।।



छठे, तीसरे, दसवें, पहले व सातवें स्थान में चन्द्रमा शुभ है। शुक्लपक्ष में नवां, दूसरा, पांचवां चन्द्रमा शुभ है। बारहवां स्थान छोड़कर सम राशि का बुध सभी स्थान पर शुभ है। गुरु नवें, सातवें, पांचवें व दूसरे स्थान का शुभ है। सातवें व छठे स्थान को छोड़कर शुक्र शुभ है। परन्तु सभी कार्यों में चन्द्रमा अवश्य देखें। होरा डेढ़ (ढाई) घड़ी की जानना एवं अपने दिन से छठे ग्रह की होती है।

सभी ग्रह एवं जिस (स्थान) में शुभ होते हैं।	
ग्रह	**शुभ स्थान**
सूर्य	तीसरे, छठे तथा दसवें भाव, स्वराशि में, गोचर, ग्यारहवें भाव
राहु	तीसरे, छठे व दसवें भाव, स्वराशि में, गोचर, ग्यारहवें भाव
शनि	तीसरे व छठे स्थान, स्वराशि में, गोचर, ग्यारहवें भाव
मंगल	तीसरे व छठे स्थान, स्वराशि में, गोचर, ग्यारहवें भाव
चन्द्रमा	छठे, तीसरे, दसवें, पहले व सातवें स्थान, शुक्लपक्ष में नवां, दूसरा, पांचवा
बुध	बारहवां स्थान छोड़कर सम राशि का बुध सभी स्थान पर शुभ है।
गुरु	नवें, सातवें, पांचवे व दूसरे स्थान का शुभ है।
शुक्र	सातवें व छठे स्थान को छोड़कर शुभ हैं।

६.१.२ दिनरात्रिमान

उपजाति

षड्विंशतिर्द्वादशभिः पलैश्च दिनप्रमाणं मकरेऽह्नि पूर्वे।

त्रिंशत्तुलामेषदिने तु स्द्यो मृगे दिनं कर्कटरात्रिमानम्।।४।।

मकर संक्रान्ति के पहले दिन छब्बीस घड़ी व बारह पल तक दिन का मान जानना। तुला व मेष संक्रान्ति के पहले दिन तीस घड़ी का दिन का मान जानना। मकर संक्रान्ति के जो दिन का मान है वह कर्क संक्रान्ति की रात्रि का मान जानना।

वसन्ततिलका

पञ्चायुक्तपलमेव मृगे च युग्मे मेषे झषे त्वनुदिनं त्रिपलं च सार्द्धम्।

अष्टाक्षरेण रहितं त्रिपलं घटार्द्धो वृद्धिक्षयौ मकरकर्कटतोयनादेः।।५।।

मकर व मिथुन इन दो संक्रान्तियों में प्रतिदिन पचास अंश सहित एक पल दिन की वृद्धि होती है। मेष व मीन इन दो संक्रान्तियों में प्रतिदिन साढ़े तीन पल दिन की वृद्धि होती है।

कुम्भ व वृष इन दो संक्रान्तियों में प्रतिदिन अष्टमांश हीन तीन पल अर्थात (दो पल बावन अंश) दिन की वृद्धि होती है।

इस प्रकार मकर संक्रान्ति से दिन की वृद्धि तथा कर्क संक्रान्ति से दिन की हानि होती है।

सिंहालिराश्योर्मृगकुम्भवत्स्यात् कन्यातुलायां झषमेषतुल्याः।
कोदण्डकर्के मृगयुग्मभानात् तावत्पलैर्हानिरथोपदिष्टा।।६।।

मकर तथा कुम्भ संक्रान्ति में दिन की जितनी वृद्धि होती है, उतना ही सिंह व वृश्चिम में संक्रान्ति में क्षय होता है। मीन व मेष संक्रान्ति में दिन की जितनी वृद्धि होती है, उतना ही कन्या व तुला में क्षय होता है। मकर व मिथुन संक्रान्ति में जितने दिन की वृद्धि होती है, उतना ही दिन का क्षय धनु व कर्क संक्रान्ति में होता है।

शार्दूलविक्रीडित

मेषादिस्त्रिकरेन्दुखेन्दुनयनं रामाब्धिपञ्चर्तवः
पञ्चाब्धिक्रमतोऽङ्गुलैश्च समता मध्याह्नकी स्यात् प्रभा।
छाया सप्तमितस्य सप्तसहिता शङ्कोश्च मध्योदिता-
स्तैस्तत् सप्तगुणं भजेद् दिनदलं याताः स्थिता नाडिकाः।।७।।

दिन का प्रमाण देखने के लिए समतल भूमि पर सात अंगुल के शंकु की स्थापना करें। मेष राशि में सूर्य में रहने पर सप्ताङ्गुल शङ्कु की छाया दोपहर में तीन अंगुल कम, वृष में दो अङ्गुल , मिथुन में एक अंगुल, कर्क में शून्य अंगुल, सिंह में एक अंगुल, कन्या में दो अंगुल, तुला में तीन अंगुल, वृश्चिक में चार अंगुल, धनु में पांच अंगुल, मकर में छह अंगुल, कुम्भ में पांच अंगुल, मीन में चार अंगुल कम होती है। सात अंगुल की शंकु की छाया को नाप कर उसे सात से जोड़ना चाहिए। प्राप्त संख्या में मध्यांह्न के मान घटा देना चाहिए। इस संख्या से (को) सात से गुणा किये दिन के अर्धभाग में भाग देना चाहिए। इससे दिन के पूर्वार्ध एवं परार्ध के बीते हुए एवं शेष घटी का ज्ञान होता है।

६.१.३ स्वर

भानोर्दक्षिणा नाडिका शशिवहा वामा सुषुम्ना तयोः
प्राक्कृष्णे रविरिन्दुरेव धवले पक्षे त्र्यहं च त्र्यहम्।



शान्ते कर्मणि चन्द्रमा दिनपतिः प्रोक्तो भये भोजने
पूर्णाङ्गे यदि पृच्छकस्तदखिलं कार्यं व्रजेत् सिद्धये।।८।।

नाक की दाहिनी नाड़ी (श्वास) चले तो सूर्य, बाईं चले तो चन्द्र तथा दोनों चले तो सुषुम्ना नाड़ी समझना।

कृष्ण पक्ष में सूर्योदय के समय पहले सूर्य नाड़ी का उदय होता है शुक्ल पक्ष में सूर्योदय में पहले चन्द्र नाड़ी का उदय होता है। शुक्ल पक्ष में लगातार तीन दिन तक सूर्योदय के समय चन्द्र नाड़ी चले, तीन दिन बाद सूर्योदय के समय सूर्य नाड़ी चलती है, इस प्रकार तीन-तीन दिन के क्रम से नाड़ी चलती है।

कृष्ण पक्ष में पहले तीन दिन सूर्य नाड़ी तथा उसके बाद तीन दिन तक चन्द्र नाड़ी चलती है, पूरे पक्ष में यही क्रम चलता है। शान्त कर्म में चन्द्र नाड़ी, भोजन व भय के सूर्य नाड़ी शुभ है। स्वरोदय के जानकार के अनुसार जो नाड़ी चलती है, उस ओर बैठकर कोई प्रश्न करें तो कार्य की सिद्धि होती है।

भानुश्चन्द्रसमोदये दिनकरे चन्द्रस्तदोद्वेगता
दूतः सम्मुख ऊर्ध्वगो हिमकरे पृष्ठे ह्यधो भानुगः।
सूर्ये चेद् विषमः समश्च हिमगौ वर्णस्तदा सिद्धये
मध्ये भूरध आप ऊर्ध्वमनलस्तिर्यङ्मरुद् दुष्टदः।।९।।

चन्द्र की नाड़ी के उदय के समय, सूर्य की नाड़ी का उदय हो और सूर्य की नाड़ी के समय, चन्द्र की नाड़ी का उदय हो तो उद्वेग होता है। प्रश्न पूछने आने वाला स्वरोदय के जानकार के सामने आकर या ऊँचे स्थान पर रहकर पूछे उस समय चन्द्र नाड़ी चलती हो तो कार्य की सिद्धि होती है।

यदि पीछे या नीचे जगह रहकर पूछे और सूर्य नाड़ी चलती रहे तो भी कार्य की सिद्धि जानें। जिस समय सूर्य नाड़ी चलती हो और प्रश्न का अक्षर विषम हो, चन्द्र नाड़ी चलती हो और अक्षर सम हो तो भी कार्य की सिद्धि जानना।

यदि स्वर का वायु मध्यम हो तो पृथ्वी तत्व, निम्न हो तो जल तत्व, उच्च हो तो अग्नि तत्व तथा यदि तिरछा हो तो वायु तत्व होता है। वायु तत्व कार्य सिद्धि में बाधक होता है।

उपजाति

नभो वहत् सङ्क्रमणेऽतिदुष्टः शून्ये कृते मृत्युमुपैति शत्रुः।
श्वासः प्रवेशे सकलार्थसिद्धिर्वहत्युदग्रे जलभूमितत्त्वे।।१०।।

जिस समय दो नाड़ियों का संक्रमण हो उस समय आकाश तत्व प्रमुख होता है। यह कार्यसिद्धि के लिए दोषपूर्ण है।

शून्य काल में प्रश्न करने से शत्रु की मृत्यु होती है।

जिस समय कोई प्रश्न पूछे उस समय यदि पूरक (श्वास का प्रवेश) हो तो सब कार्य की सिद्धि जाने और उस समय जल तत्व के बाद पृथ्वी तत्व में वायु चलती हो तो कार्य की सिद्धि जानें।

ऊर्ध्वाधो रेखा रससंख्या भिन्ना एकादशभिस्तिर्यक्।
अकछडधभवा नन्दा भौमेऽर्के रेवत्या मुनयः।।११।।

स्वरोदय का शकुन देखने के लिए यन्त्र बनाए। छह खड़ी व ग्यारह आड़ी रेखाए खींचकर क्रम से अक्षर भरे। पहले कोष्ठ (खाने में) अंगुल फिर उसके नीचे क्रमानुसार कहलाता है। अ, क, छ, ड, ध, भ तथा सातवें में व लिखें। अगले खानों में क्रमानुसार नन्दा तिथि, फिर मंगल व रविवार तथा उसके बाद में खाने में रेवती आदि सात नक्षत्र लिखे।

इखजठनमशा भद्रास्तिथयश्चन्द्रो ज्ञो च पुनर्वसुः पञ्च।
उगझतपचषा जया गुरुश्च उत्तरफा पञ्चकं क्रमेण।।१२।।

दूसरे खाने की दूसरी पंक्ति में इ, ख, ज, ढ (ठ), न, म फिर श क्रमानुसार लिखे। आठवें में भद्रा तिथि, नवें में सोम व बुधवार तथा दसवें खाने में पुनर्वसु आदि पांच नक्षत्र लिखें।

तीसरी पंक्ति के पहले खाने में पहले उ, ग, झ, त, प, य तथा सातवें ष क्रमानुसार लिए। आठवें में जया तिथि, नवें में गुरुवार तथा दसवें में उत्तराफाल्गुनी आदि पांच नक्षत्र लिखें।



एघटथफरसा रिक्ता शुक्रस्त्वनुराधापञ्चकमृक्षं तु।

उ(ओ)चठदबलरा पूर्णा मन्दः श्रुतिपञ्चकं लिखेत् स्वरचक्रम्।।१३।।

चौथी पंक्ति के पहले खाने में ए, घ, ट, थ, फ, र तथा सातवें में स क्रमानुसार लिखे। आठवें में तीन रिक्ता तिथि, नवें में शुक्रवार तथा दसवें में अनुराधा आदि पांच नक्षत्र लिखें।

पांचवी पंक्ति में उ (ओ) च, ठ, द, ब, ल तथा सातवें में ह क्रमानुसार लिखे। आठवें में पूर्णातिथि, नवें में शनिवार व दसवें में श्रवण आदि पांच नक्षत्र लिखे।

उपजाति

अकारपङ्क्त्या वृषमेषराशी लिखेत् षडंशान् मिथुनस्य पूर्वान्।

त्र्यंशस्तदग्रे मिथुनस्य कर्कः सिंहस्तदग्रे हि तुला च कन्याः।।१४।।

अ स्वर की पंक्ति के आखिरी खाने में जहाँ नक्षत्र लिखे हैं, उनके साथ मेष, वृष राशि व मिथुन राशि के पहले छह अंश रखें। इ स्वर की दूसरी पंक्ति के आखिरी खाने में मिथुन के आखरी तीन अंशों के साथ, कर्क व सिंह राशि रखें।

उ स्वर की तीसरी पंक्ति के आखिरी खाने में कन्या व तुला राशि के साथ वृश्चिक राशि के पहले तीन अंश रखें।

अंशास्तृतीयेऽपि च वृश्चिकाद्यास्तदन्तचापे मकराद्यषट्कम्।

तुर्ये तथा पञ्चमके मृगस्य त्र्यंशा विलेख्या अपि कुम्भमीनौ।।१५।।

ए स्वर की चौथी पंक्ति में वृश्चिक राशि के आखरी छह अंश के साथ धनु व मकर राशि के छह अंश रखना।

उ (ओ) स्वर की पांचवी पंक्ति में मकर के आखिरी तीन अंश के साथ कुम्भ व मीन राशि रखना।'

प्रसिद्धनामादिमवर्णमात्रा या मात्रिकासौ गमने च युद्धे।

तिथौ च वर्णः स्वर एव चिन्त्यः सर्वत्र कार्ये स्वरराज एषः।।१६।।



प्रसिद्ध एवं जो नाम मिला हो उस नाम के शुरु का अक्षर मात्रा कहलाता है। यह मात्रिका गमन और युद्ध के समय अक्षर और स्वर का विचार जरुर करें, कारण यह है कि सब काम में स्वर ही प्रधान होता है।

इन्द्रवज्रा

बालः कुमारस्तरुणोऽथ वृद्धो मृत्युः स्वरः पञ्चमगः स्ववर्णात्।

तिर्यक् क्रमेणापि विचिन्तनीयः सर्वत्र सङ्ग्रामविधौ विशेषात्।।१७।।

प्रथम स्वर अ बाल स्वर है, इ कुमार, उ तरुण, ए वृद्ध एवं पांच उ मृत्यु है। इनका सब कार्यो में विशेषकर संग्राम में विचार करें।

बालो नराणां कुरुतेऽल्पलाभमर्द्धं कुमारस्तरुणः समग्रम्।

हानिं तु वृद्धो मरणं मृतिश्च युद्धोद्यमे बालमृती न शस्तौ।।१८।।

बाल स्वर हो तो थोड़ा लाभ, कुमार स्वर हो तो आधा लाभ, तरुण स्वर हो तो पूर्ण लाभ, वृद्ध स्वर हो तो हानि और मृत्यु स्वर हो तो मरण करता है। अतः युद्ध के प्रसंग में बाल व मृत्यु स्वर शुभ नहीं है।

उपजाति

नन्दापञ्चस्वपि बालकाद्याः स्वरास्तथा मानवशाद् भवन्ति।

दिवानिशो रुद्रमिताश्च चिन्त्याः पृच्छाविवाहादिषु जन्मकाले।।१९।।

नन्दा आदि पांच तिथियों में बाल आदि पांच स्वर अनुक्रम से जाने। जो दिन या रात्रि में ग्यारह खाने में रहता है। उन्हे विवाहादि या जन्मकाल के प्रश्न करते समय विचार करें।

६.१.४ कोटचक्र

उपजाति

प्राकारचक्रं तु भणाम्यथातो यत्र स्थितो वैरिषु दुर्जयोऽरिः।

ईशानभागे पुरभं विलेख्यं कोणे प्रवेशं दिशि निर्गमं च।।२०।।

प्राकार चक्र में रहने वाले राजा के सामने आये शत्रु के जीतने के लिए विधि यह है कि नगर का जो नक्षत्र हो उस नक्षत्र को किले के ईशान कोण में किले के शीर्ष पर लिखे,



बाद का नक्षत्र अन्दर के भाग में लिखे। उसके बाद का नक्षत्र पूर्व दिशा में अन्दर के भाग पर, अगला नक्षत्र उसके बाहर तथा उससे अगला नक्षत्र किले के बाहर लिखे। बाद के दो नक्षत्र अग्निकोण में किले के बाहरी भाग, अगला प्रवेश तथा बाद का नक्षत्र अन्दर की ओर लिखे, इसी प्रकार अगला नक्षत्र दक्षिण में अन्दर की ओर, बाद का उससे बाहर तथा अगला नक्षत्र किले के बाहर लिखे। अगले दो नक्षत्र नैर्ऋत्य कोण में किले के बाहर लिखे, अगला शीर्ष तथा बाद का अन्दर लिखे। इस अनुक्रम से पश्चिम दिशा में अन्दर , प्रवेश , किले के बाहर भाग में नक्षत्र लिखे। अनुक्रम से दो नक्षत्र वायव्य कोण में बाहर एक उससे अन्दर तथा अगला नक्षत्र अन्दर लिखे। अनुक्रम से उत्तर दिशा में पहले भीतर फिर प्रवेश, फिर बाहर की ओर नक्षत्र लिखे दो नक्षत्र ईशान कोण में बाहर की ओर लिखें।

इन्द्रवज्रा

बाह्ये लिखेद् द्वादशभानि कोटे ह्यष्टौ तथा मध्यगतानि चाष्टौ।

मध्ये शुभा जीवभृगुज्ञसौम्याः क्रूरास्तु बाह्ये गढरक्षणाय।।२१।।

किले के बाहरी भाग में बारह नक्षत्र तथा मथाले कोण (मध्य) व अन्दर की ओर आठ-आठ नक्षत्र लिखे। इनमें जो नक्षत्र पर, जो ग्रह चलता हो उसे उस स्थान पर रखे। किले के मध्य भाग में बृहस्पति, शुक्र, बुद्ध व चन्द्रमा ये शुभ ग्रह आए तो किले के बाहर भाग में क्रूर ग्रह आए तो यह ग्रह किले की रक्षा करते हैं। ऐसा समझना।

शालिनी

क्रूरा मध्ये घ्नन्ति मध्यं तु कोटे कोटं बाह्ये वेष्टकांश्च क्रमेण।

मध्ये दुष्टाः सौम्यखेटाश्च कोटे भेदैर्भङ्गः स्याद् विना युद्धके।।२२।।

किले के मध्य भाग में क्रूर ग्रह आए तो किले में रहने वाले मनुष्य का नाश करें।

किले के क्रूर ग्रह किले के मथाले हो तो किले को भंग करें, परन्तु बाहर हो तो (बाहर के पास) सामने आने वाले शत्रु का नाश करें।

जो किले के अन्दर क्रूर अथवा दुष्ट ग्रह और मथाले शुभ ग्रह हो तो युद्ध बिना ही, छल भेद से किले का भंग हो जाता है।

मध्ये सौम्याः कोटबाह्ये तु दुष्टा दुर्गे खण्डे नैव भङ्गः कदाचित्।

पापा मध्ये सौम्यखेटाश्च दुर्गे बाह्येऽपि स्युस्तत् प्रयच्छन्ति पौराः।।२३।।



किले में मध्य में सौम्य ग्रह हो व बाहर के पास दुष्ट ग्रह हो तो किला खंडित हो जाए परन्तु शत्रु के हाथ में न जाए।

परन्तु किले में मध्य में पाप अथवा क्रूर ग्रह हों तथा बाहरी भाग में सौम्य ग्रह हो तो नगरवासी लोग शत्रु के आधीन मिलाकर दें।

क्रूराऽक्रूरा मध्यकोटे च बाह्ये युद्धं कुर्युर्दारुणं सैन्ययोस्ते।
मध्ये बाह्ये यत्र दुष्टा ग्रहाः स्युः स्थायी यायी यत्र यन्त्रं विदध्यात्।।२४।।

किले के मध्य, कोट, बाहर के पास इन तीनों जगहों पर क्रूर अथवा सौम्य ग्रह हो तो दोनों पक्षों में दारुण युद्ध होता है। इन स्थानों पर दुष्ट ग्रह हो तो स्थाई तोप रखें।

बाह्यभे मध्यभे वाऽपि यत्रस्थाः क्रूरखेचराः।
तत्र स्थाने कृते यन्त्रे हन्ति दुर्गं ससैन्यकम्।।२५।।

जिस किले के बाहर व मध्य भाग में क्रूर ग्रह स्थित हो उस स्थान पर प्रयत्न करने से शत्रु सेना सहित किले को नष्ट करता है।

६.३.५ लग्नविचार

शार्दूलविक्रीडित
आदित्ये जलनाशनं हिमकरे भङ्गः कुजे वह्निभीः
सौम्ये बुद्धिबलं गुरौ तु गढतो मध्ये सुभिक्षं जलम्।
स्याच्छुक्रे चलचित्तता रविसुते रोगा नृणां वा मृतिः
राहौ भेदभयं ध्वजे तु विषभीः दुर्गेऽथवा वेष्टके।।२६।।

किला में मध्य स्थान पर सूर्य हो तो जल का नाश, चन्द्र हो तो भंग, मंगल हो तो अग्नि का भय, बुध हो तो रहने वालों मनुष्यों में बुद्धि का बल, गुरु हो तो अन्न अक्षय रहे, शुक्र हो तो चित्त चंचल रहे, शनि हो तो लोगों को रोग व मृत्यु रहे। राहु हो तो भेद से भय को उत्पन्न करें, केतु हो तो विष के प्रयोग से भय उत्पन्न करें।



किले के मध्य स्थान पर ग्रह एवं परिणाम	
ग्रह	परिणाम
सूर्य	जल का नाश
चन्द्र	भंग
मंगल	अग्नि का भय
बुध	रहने वालों मनुष्यों में बुद्धि का बल
गुरु	अन्न अक्षय
शुक्र	चित्त चंचल
शनि	लोगों को रोग व मृत्यु
राहु	भेद से भय को उत्पन्न
केतु	विष के प्रयोग से भय उत्पन्न

वसन्ततिलका

सर्वे व्ययाष्टमगताः सकला न शस्ताः

केन्द्रत्रिकोणधनगास्तु तथैव पापाः।

सौम्यान्वितोऽपि विधुरेव शुभो न लग्ने

मूर्तौ तथैव निधने न शुभं शुभेषु।।२७।।

सभी ग्रह आठवें व बारहवें स्थान में शुभ नहीं हैं। केन्द्र में, त्रिकोण में, धन स्थान में पाप ग्रह शुभ नहीं हैं। लग्न स्थान में सौम्य ग्रह सहित चन्द्रमा शुभ नहीं है। आठवें में भी चन्द्रमा शुभ नहीं है।

उपजाति

दशतृतीये नवपञ्चमे च तथा चतुर्थोऽष्टमके कलत्रम्।

पश्यन्ति खेटा इह पादवृद्ध्या फलानि चैवं क्रमतो भवन्ति।।२८।।

जिस स्थान में ग्रह हो उससे तीसरे व दसवें स्थान पर एक पाद, नवें व पांचवे पर दो पाद, चौथे व आठवें पर तीन पाद तथा सातवें स्थान पर पूर्ण दृष्टि होती है। इसी प्रकार क्रम से फल होता है।

शालिनी

पत्या युक्तो वीक्षितो वाति सौम्यैर्यो भावः स्यात्तस्य वाच्या हि सिद्धिः।

हानिः पापैः क्रूरसौम्येषु मिश्रं सर्वेष्वेवं चिन्तनीयं स्वबुद्ध्या।।२९।।

जिस स्थान स्वामी से युक्त हो, स्थान पर स्वामी की दृष्टि हो, सौम्य ग्रह से युक्त हो अथवा दृष्टि हो तो स्थान सम्बन्धी फल की सिद्धि जाने। जिस स्थान पर पाप ग्रह हों या दृष्टि हो, उस स्थान सम्बन्धी फल की हानि जानना।

जो स्थान पर क्रूर व सौम्य ग्रह एक साथ हो या उनकी दृष्टि हो, मिश्र फल जानना। इस प्रकार बुद्धिमान सभी स्थानों का विशेष विचार करें।

शार्दूलविक्रीडित

भौमेज्यो ज्ञकवी शनिश्च दशमे सर्वे ग्रहा द्वादशे।
रन्ध्रे चन्द्ररवी तनौ च निशिपः षष्ठेऽस्तगा ज्ञादयः।
सूर्ये क्षेत्रपतेः सुखे च हिमगौ प्रोक्ता कुजे शाकिनी
भूता देवजनोऽद्भुताश्च पितरो ज्ञे जीवशुक्रे शनौ।।३०।।

मनुष्य के लिए कोई प्रश्न करें कि अमुक मनुष्य को क्या दोष है। प्रश्नकुण्डली बनाकर ग्रहों की मंगल, गुरु, बुध, शुक्र शनि की क्रम स्थापना करें। इनमें से कोई ग्रह दसवें स्थान में आए तो दोष उत्पन्न करता है। कोई ग्रह बारहवे स्थान पर आए तो दोष होता है। आठवें स्थान पर सूर्य व चन्द्र, लग्न व छठे में चन्द्र, बुध आदि सातवें स्थान पर ग्रह आए तो दोष उत्पन्न होता है।

सूर्य सम्बन्धी दोष हो तो क्षेत्रपाल का, चन्द्र संबंधी आकाश के देव का, मंगल में शाकिनी का, बुध में भूत का, गुरु में देव का, शुक्र में जल का तथा शनि सम्बन्धी दोष हो तो पूर्वज का दोष जाने।।

ग्रह सबंधी दोष एवं उनका कारण	
ग्रह दोष	कारण
सूर्य	क्षेत्रपाल
चन्द्र	आकाश के देव का
मंगल	शाकिनी का
बुध	भूत का
गुरु	देव का
शुक्र	जल का
शनि	पूर्वज का दोष जाने

६.१.६ मातृका

वसन्ततिलका

योगीश्वरं गणपतिं कमलां च नत्वा

श्रीमातृकाक्षरमयं शकुनं प्रवच्मि।

विद्या चतुर्दशमयी परमा हि माया

यादिस्वराक्षरपदादिकचित्स्वरूपा।।३१।।

योगीश्वरी, गणपति और लक्ष्मी को नमस्कार करके मातृका अक्षर चौदह विद्यारूप उत्कृष्ट मायारूप जो आद्य हैं उसमें (अकार आदि) स्वर, अक्षर और पद इत्यादि सब चैतन्य रूप है।

अमर एण इला ऋषि ईश्वरा ऊर्द्धर्उष्टतृविसर्गफलप्रदाः

अन्ध आर्त उखष ऋयधस्वरा ऐ च कृत् शुभदाः शुभकार्ये।।३२।।

अ, म, ट और ए वे षढ जो गुरु ऋ , लृ, ए सहित ऐं ह्स्व इ और दीर्घ ऊ ये शुभ फल देते हैं। विसर्ग सहित ए, उ, लृ, ई, और ओ, औ, अं ये शुभ नहीं है। पर शकुन के लिए आ स्वर हो तो सब कार्य सिद्धि करें।

वसन्ततिलका

कर्णे गणेश धनचामरछत्र उल्ली

व्याली उकारफलभद्रणकारडिम्भम्।

धल्मी हरो धनयकारशकारखण्डं

तन्वी च सौख्यफलदा नवचन्द्रवर्णाः।।३३।।

ङखौचजौञष्टपलाईमेष्टौतेवर्णकानोशुभदाभवन्ति।।

स्वरोहितुर्यस्त्वथपंचम श्चौकारात्रयंसप्तनवांत्यपूर्वाः।।३४।।

ङ, ख, च, ज, झ, ट, प, ल ये आठ अक्षर शुभ नहीं हैं। ई, उ, ओ, औ, अं, ऋ, लृ और अः अक्षर शुभ नहीं हैं। (इसका श्लोक टाईप नहीं किया)

उपजाति

खरो(शौ) विषं रोगदरिंद्रपापं सर्वे जडत्वं मरणं च नाशम्।

ढिंकारबद्धधडभाश्च वर्णाः सर्वेषु कार्येष्वपि निष्फलाः स्युः।।३५।।



ख व श ये दो अक्षर विष के समान हैं। ये रोग, दरिद्र, पाप, जड़, मरण और नाश करते हैं। ढ बन्धन करता है। ध, ड, भ ये सब काम में निष्फल जाने।

६.१.७ महादशा

पूर्वस्यां भचतुष्टयं च शिवतः कोणे त्रिकं सृष्टितः
षट् सूर्ये तिथयो विधौ क्षितिसुते ह्यष्टौ समा स्याद्दशा।
ज्ञे सप्तेन्दुसमा दिशश्च रविजे जीवे नवेन्दुस्तथा
राहौ द्वादश रूपयुक् च भृगुजे क्रूरस्य दुष्टा दशा।।३६।।

आर्द्रा आदि नक्षत्रों को अनुक्रम से पूर्व में चार, अग्नि में तीन, दक्षिण में चार, नैर्ऋत्य में तीन इस विधि से सृष्टि मार्ग से दिशाओं में चार तथा कोण में तीन नक्षत्रों को लिखे। आर्द्रा आदि चार नक्षत्रों में जन्म हो तो सूर्य की महादशा जानें। जो छह वर्ष तक रहती है।

मघा आदि तीन नक्षत्र में जन्म हो तो चन्द्र की महादशा होती है जो पन्द्रह वर्ष तक रहे, हस्त आदि चार नक्षत्र हो तो मंगल की महादशा जो आठ वर्ष तक रहे, अनुराधा आदि नक्षत्र हो तो बुध की महादशा जो सत्रह वर्ष तक रहे। पूर्वाषाढ़ा आदि चार नक्षत्र हो तो शनि की महादशा जाने तो दस वर्ष तक रहे। धनिष्ठा आदि तीन नक्षत्र में गुरु की महादशा उन्नीस वर्ष जाने, उत्तराभाद्रपद आदि चार नक्षत्र में राहु की महादशा बारह वर्ष की जाने तथा कृतिका आदि तीन नक्षत्र में जन्म हो तो शुक्र की महादशा जाने जो इक्कीस वर्ष तक रहती है। क्रूर ग्रह की महादशा हो तो दुष्ट जाने।

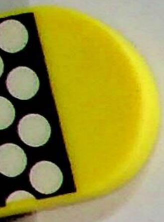
नक्षत्र में जन्म एवं उसकी महादशा एवं वर्ष		
जन्म	महादशा	वर्ष
आर्द्रा आदि चार नक्षत्रों	सूर्य	छह वर्ष
मघा आदि तीन नक्षत्र	चन्द्र	पन्द्रह वर्ष
हस्त आदि चार नक्षत्र	मंगल	आठ वर्ष
अनुराधा आदि नक्षत्र	बुध	सत्रह वर्ष
पूर्वाषाढ़ा आदि चार नक्षत्र	शनि	दस वर्ष
धनिष्ठा आदि तीन नक्षत्र	गुरु	उन्नीस वर्ष
उत्तराभाद्रपद आदि चार नक्षत्र	राहु	बारह वर्ष
कृतिका आदि तीन नक्षत्र	शुक्र	इक्कीस वर्ष

शालिनी

वर्गं वर्गे गुण्यमङ्गैर्विभक्तं लब्धा मासास्त्रिंशता शेषमेव।
गुण्यं भक्तं पूर्ववद् वासराः स्युः प्रोक्ता मध्येऽन्तर्दशा खेचराणाम्।।३७।।

जिस ग्रह की महादशा चलती हो उसके वर्षों में जिस ग्रह की अन्तर्दशा निकालना हो उसके वर्ष का गुणा कर नौ से भाग देने पर जो अंक आए, उसे उस ग्रह की अन्तर्दशा जानना। नौ से भाग देने पर जो अंक आए शेष रहे तीस से गुणा कर नौ से भाग देने पर जो अंक आए उसे मास के ऊपर दिन के अन्तर्दशा जाने। दूसरी बार साठ से गुणा कर नौ से भाग देने पर जो अंक आए तो अन्तर्दशा की घड़ी जानना। शेष रहे अंक को साठ से गुणा कर नौ से भाग देने पर जो अंक आए उसे पल जानना।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन):- राजवल्लभ ग्रन्थ के १२ अध्याय में गोचर ग्रह स्थित तथा मातृकाशकुन का विचार किया है। इसमें दिशा ज्ञात करने की विधि का भी वर्णन है। इस अध्याय में बताया है कि मनुष्य के शरीर में दो प्रकार की नाड़ियाँ होती है। दाहिनी नासिका से चलने वाली नाड़ी सूर्य तथा बाईं नासिका में रहने वाली नाड़ी चन्द्र है। दूसरे शब्दों में तो जब श्वास दाहिनी नासिका से आती-जाती है तो कहते हैं कि सूर्य नाड़ी चल रही है। यह गर्म नाड़ी भी कहलाती है। जब बाईं नासिका से श्वास चल रही है तो कहते हैं कि चन्द्र नाड़ी चल रही है। यह ठंडी कहलाती है। नाड़ी के अनुसार कार्य करने पर प्रकृति का सहयोग मिलता है। ये नाड़ी हमारे शरीर व मन की स्थिति का द्योतक है, मन व शरीर की स्थिति को प्रदर्शित करती हैं।



६.२ ज्योतिष लक्षण

६.२.१ अधोमुख नक्षत्र

उपजाति

पूर्वात्रयं सार्प्ययमाग्निधिष्ण्यमधोमुखं मूलमघाविशाखाः।
खाते य भूम्यां निधिरोपणे च तथोग्रकार्ये मुनयो वदन्ति।।१।।

तीनों पूर्वा (पूर्वाफाल्गुनी, पूर्वाषाढ़ा और पूर्वाभाद्रपद) आश्लेषा, भरणी, कृत्तिका, मूल, मघा और विशाखा इन नक्षत्रों को अधोमुख जाने। ये अधोमुख नक्षत्र खात (खनन, खुदाई) करते समय तथा पृथ्वी में धन रखते समय और उग्र कार्य में ले, ऐसा मुनियों ने कहा हैं।

६.२.२ तिर्यगमुख (पार्श्वमुख) नक्षत्र

चैत्राश्विमैत्रादितिवायुपार्श्व ज्येष्ठामृगौ पौष्णकरौ तथैव।
स्याद् वाहने यन्त्रहलप्रवाहे चतुष्पदाद्येऽपि च पार्श्ववक्त्रे।।२।।

चित्रा, अश्विनी, अनुराधा, पुनर्वसु, स्वाती, ज्येष्ठा, मृगशीर्ष, रेवती और हस्त ये नौ नक्षत्र तिर्यगमुख (पार्श्वमुख) जाने। इन नक्षत्रों को वाहन, यन्त्र, हल चलाने, पशु आदि के काम में लें।

६.२.३ ऊर्ध्वमुख नक्षत्र

इन्द्रवज्रा

पुष्योत्तरार्द्राश्रुतयो धनिष्ठा स्याद् रोहिणी वारुणमूर्ध्ववक्त्रम्।
प्राकारदेवालयछत्रहर्म्यराज्याभिषेकादि च याति सिद्धिम्।।३।।

पुष्य, तीनों उत्तरा (उत्तराफाल्गुनी, उत्तराषाढ़ा और उत्तराभाद्रपद), आर्द्रा, श्रवण, धनिष्ठा, रोहिणी व शतभिषा नक्षत्रों को ऊर्ध्वमुख (ऊपर मुख वाला) जाने। इनमें प्राकार (चाहरदीवार), देवमन्दिर, राजा के सिर पर छत्र रखना राज्याभिषेक इत्यादि काम में सिद्धि होती है।



६.२.४ सीमन्त कर्म

उपजाति

सीमन्तगर्भाष्टमषष्ठमासे कार्यं दिनेऽर्कस्य गुरो महीजे।
मृगे च पुष्ये च पुनर्वसौ च हस्ते च मूले श्रवणे तथैव।।४।।

जिस दिन स्त्री को गर्भ रहे उससे आठवें, छठे मास में रविवार, गुरुवार, मंगलवार को मृगशीर्ष, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मूल और श्रवण को सीमन्त कर्म करें।

६.२.५ अन्न-प्राशन

इन्द्रवज्रा

षष्ठे शिशोः पञ्चमके कुमार्याः मासेऽन्नसम्प्राशनमुत्तरासु।
श्रुत्यश्विनीवासवहस्तपुष्ये चित्रामृगादित्यविधातृपौष्णे।।५।।

पुत्र के जन्म के पश्चात्, छठे मास, पुत्री के जन्म से पांचवें मास में अन्न-प्राशन करावें। तीनों उत्तरा (उत्तराषाढा, उत्तराभाद्रपद, उत्तराफाल्गुनी), श्रवण, अश्विनी, धनिष्ठा, हस्त, पुष्य, चित्रा, मृगशिरा, पुनर्वसु, रोहिणी व रेवती में करना चाहिए।

६.२.६ कर्ण-वेध

उपजाति

वेधः शिशूनामपि कर्णयोः स्यात् पुष्योत्तरावासवरेवतीषु।
हस्ताश्विनीवैष्णवचित्रकासु पुनर्वसौ मैत्रमृगेषु शस्तः।।६।।

पुष्य, तीनों उत्तरा, धनिष्ठा, रेवती, हस्त, अश्विनी, श्रवण, चित्रा, पुनर्वसु, अनुराधा और मृगशीर्ष में शिशुओं का कर्ण-वेध (कान छिदवाए) करावें।

६.२.७ मौंजीमोचन

शालिनी

मौञ्जीबन्धो मोचनं च द्विजानां जीवे शुक्रे भूमिपुत्रे बुधे च।
कार्यो हस्तादित्रये वासवेऽन्त्ये श्रुत्यादित्ये पुष्यसौम्याश्विनीषु।।७।।

ब्राह्मणों के मौंजीमोचन के लिए गुरुवार, शुक्रवार, मंगलवार, बुधवार लेना। इन वारों में हस्त, चित्रा, स्वाति, धनिष्ठा, रेवती, श्रवण, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशीर्ष और अश्विनी लेना।



६.२.८ विद्यारंभ

शार्दूलविक्रीडित

विद्यारम्भविधौ सुरेज्यभृगुजौ शस्तौ बुधार्कौ तथा
जाड्यं चन्द्रदिने च मन्दकुडयोर्मृत्युश्च दर्शे तिथौ।
आद्या चाष्टमिका महेश्वरतिथिस्त्याज्याथ मूलं शुभम्।
पूर्वाकर्णकरत्रयाश्विभमपि श्रेष्ठं मृगात् पञ्चकम्।।८।।

गुरुवार, शुक्रवार, बुधवार और रविवार को विद्यारंभ करना। सोमवार को जड़पन, शनिवार, मंगलवार को मृत्यु तथा अमावस्या को विद्यारंभ करे तो मृत्यु होती है। प्रथमा, अष्टमी, चतुर्दशी को भी त्यागना। मूल, तीनों पूर्वा, श्रवण, हस्तादि तीन (हस्त, चित्रा व स्वाती), अश्विनी, मृगशीर्ष, आर्द्रा, पुनर्वसु, पुष्य और आश्लेषा नक्षत्रों में विद्यारंभ करना।

विद्यारंभ करने का शुभ-अशुभ समय	
वार	परिणाम
गुरुवार	शुभ
शुक्रवार	शुभ
बुधवार	शुभ
रविवार	शुभ
सोमवार	जड़पन
शनिवार	मृत्यु
मंगलवार	मृत्यु

तिथि व नक्षत्रानुसार विद्यारंभ करने के परिणाम	
तिथि/नक्षत्र	परिणाम
अमावस्या	मृत्यु
प्रथमा, अष्टमी	त्यागना
चतुर्दशी	त्यागना
मूल	शुभ
तीनों पूर्वा	शुभ
श्रवण	शुभ
हस्त, चित्रा व स्वाती	शुभ
अश्विनी, मृगशीर्ष	शुभ
आर्द्रा, पुनर्वसु	शुभ
पुष्य और आश्लेषा	शुभ

६.२.९ अग्नि का आधान

उपजाति

आधानमग्नेस्तिसृषूत्तरासु ज्येष्ठाविशाखामृगपुष्यभेषु।
सरेवतीब्रह्मभकृत्तिकासु कुर्युर्द्विजाः कर्मविधानसिद्ध्यै।।९।।

तीनों उत्तरा, ज्येष्ठा, विशाखा, मृगशीर्ष, पुष्य, रेवती, रोहिणी व कृत्तिका नक्षत्र में ब्राह्मण अग्नि का आधान करे।

६.२.१० क्षौर (बाल उतारना)

शार्दूलविक्रीडित

क्षौरं पुष्टिकरं हरित्रयकृतं हस्तत्रये पौष्णभे
ज्येष्ठाश्विन्यदितौ च पुष्यमृगभे स्यादह्नि ताराबले।
रिक्तायां न शुभं च भास्करदिने मन्दारयो रात्रिषु
ब्राह्नयं चौत्तरकत्रयं च पितृभं मैत्राग्निभं मृत्यवे।।१०।।

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, हस्त, चित्रा, स्वाति, रेवती, ज्येष्ठा, अश्विनी, पुनर्वसु, पुष्य और मृगशीर्ष इन नक्षत्रों में क्षौर (बाल उतारना) करे तो पुष्टि होती है। तारा का बल हो उस दिन क्षौर करे। रिक्ता तिथि, रविवार, शनिवार, रात्रि को क्षौर न कराए। रोहिणी, तीनों उत्तरा, मघा, अनुराधा और कृत्तिका में क्षौर कराए तो मृत्यु होती है।

क्षौर (बाल उतारना) के लिए शुभ-अशुभ तिथि, वार	
तिथि/वार	परिणाम
श्रवण,धनिष्ठा,शतभिषा	पुष्टि
हस्त,चित्रा,स्वाति	पुष्टि
रेवती, ज्येष्ठा,अश्विनी	पुष्टि
पुनर्वसु,पुष्य, मृगशीर्ष	पुष्टि
रिक्ता तिथि	अशुभ
रविवार,शनिवार	अशुभ
रात्रि	अशुभ
रोहिणी,तीनों उत्तरा,	मृत्यु
मघा,अनुराधा, कृत्तिका	मृत्यु



६.२.११ सफेद वस्त्र पहनना

उपजाति

शुक्लाम्बरं भास्करजीवशुक्रे बुधे विधार्यं करपञ्चके च।
पुष्याश्विनीपूषभमुत्तरासु पुनर्वसौ वासवरोहिणीषु।।११।।

रविवार, गुरुवार, शुक्रवार, बुधवार इन वार को तथा हस्त, चित्रा, स्वाति, विशाखा, अनुराधा, पुष्य, अश्विनी, रेवती, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, धनिष्ठा व रोहिणी इन नक्षत्रों में सफेद वस्त्र पहनना।।

६.२.१२ आभूषण, रत्न आदि धारण

शार्दूलविक्रीडित

हेमं विद्रुमशङ्खकाचमणयो दन्तोऽपि रक्ताम्बरं
स्त्रीणां सौख्यकरं भौमभृगजे जीवे रवौ पौष्णभे।
हस्तात् पञ्चसु वासवे शुभदिने भर्तुः सुखार्थप्रदम्।
रोहिण्युत्तरमन्दचन्द्रदिवसे नादित्यपुष्ये तथा।।१२।।

सुवर्ण का आभूषण, विद्रूम, शंख की चूड़ी, कांच, मणि, हाथीदांत की चूड़ी, लाल वस्त्र, इन वस्तुओं को मंगलवार, शुक्रवार, गुरुवार, रविवार को धारण करे तो स्त्री को सुख होता है। रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा, अनुराधा, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्र में स्त्री पहने तो पति को सुख होता है। रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य नक्षत्र में शनिवार और सोमवार को ऊपर बताई चीज न पहनें।

सुवर्ण का आभूषण,लाल वस्त्र आदि केलिए शुभ-अशुभ समय	
नक्षत्र/वार	परिणाम
मंगलवार, शुक्रवार, गुरुवार, रविवार	स्त्री को सुख
रेवती, हस्त, चित्रा, स्वाती, विशाखा,	पति को सुख
अनुराधा, धनिष्ठा और अश्विनी नक्षत्र	पति को सुख
रोहिणी, तीनों उत्तरा, पुनर्वसु, पुष्य	न पहनें
शनिवार और सोमवार	न पहनें



६.२.१३ राजदर्शन व राज्याभिषेक

वसन्ततिलका

दृष्टिर्नृपस्य तु मृगोत्तरहस्तपुष्ये
चित्रान्त्ययुग्महरिधातृधनिष्ठमैत्रे।
चित्राख्यवासवविमुक्तकशक्रयुक्ते
राज्याभिषेक उदितो हि बुधैः समृद्ध्यै।।१३।।

मृगशीर्ष, तीनों उत्तरा, हस्त, पुष्य, चित्रा, रेवती, अश्विनी, श्रवण, रोहिणी, धनिष्ठा और अनुराधा इन नक्षत्रों में राजा का दर्शन करे। चित्रा और धनिष्ठा ये दो नक्षत्र छोड़कर, शेष नक्षत्र और ज्येष्ठा नक्षत्र में राजा का राज्याभिषेक करे तो राजा को लक्ष्मी प्राप्त होती है। ऐसा बुद्धिमानों ने कहा है।

६.२.१४ पशुकर्म व औषधि सम्बन्धी कार्य

उपजाति

गजाश्वकर्माणि करत्रये च पुनर्वसौ पुष्यमृगश्विपौष्णे।
श्रुतित्रये चैव तथापि मैत्रे ह्यत्रैव भैषज्यविधिः समूले।।१४।।

हस्त, चित्रा, स्वाति, पुनर्वसु, पुष्य, मृगशीर्ष, अश्विनी, रेवती, श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा और अनुराधा, नक्षत्रों हाथी व घोड़ा सम्बन्धी कार्य करना। रोग दूर करने के लिए औषधि सम्बन्धी कार्य भी इनमें तथा मूल नक्षत्र में करना।।

६.२.१५ रोग व सर्पदंश

शालिनी

स्वातौ पूर्वासार्प्यज्येष्ठासु रौद्रे रोगोत्पत्तिर्मृत्युवे मानवानाम्।
सार्प्ये मूले रौद्रयाम्याग्निपैत्र्ये वैशाखायां सर्पदंष्ट्रस्य मृत्युः।।१५।।

स्वाती, तीन पूर्वा, अश्लेषा, ज्येष्ठा और आर्द्रा ये सात नक्षत्र मनुष्य को रोग की उत्पत्ति होती हो तो मृत्यु होती है। आश्लेषा, मूल, आर्द्रा, भरणी, कृत्तिका, मघा और विशाखा में सर्पदंश हो तो मृत्यु होती है।



६.२.१६ स्नान

उपजाति

न रोगमुक्तस्य च सोमशुक्रे स्नानं विधेयं तिसृषूत्तरासु।
सार्प्ये च पैत्र्ये च पुनर्वसौ च स्वात्यां तथा धातृभपौष्णभेन।।१६।।

रोग मुक्त पुरुष (रोग के बाद आराम करता मनुष्य) सोमवार, शुक्रवार को स्नान न करे, इनमें तथा तीनों उत्तरा, आश्लेषा, मघा, पुनर्वसु, स्वाति, रोहिणी व रेवती में भी स्नान न करें।

वसन्ततिलका

स्नानं न जन्तुषु हितं भृगुभौम(सोम)जीवे
षष्ठी त्रयोदशदशद्वितीयाष्टसूर्याः।
संक्रान्तिपर्वदिवसे न हितं तु विष्ट्या
स्त्रीणां मघाशतभिषानवमीबुधेषु।।१७।।

शुक्रवार, मंगलवार(सोमवार), गुरुवार और इन वारों को षष्ठी, त्रयोदश, दशमी, दूज, अष्टमी, द्वादशी तिथि में, संक्रान्ति में, पर्व तिथियों में (अमावस्या, पूर्णिमा, वैधृत आदि) और विष्टि में पुरुष अभ्यंग (तेल सहित सुगन्ध द्रव्य से मर्दन कर) स्नान न करे। मघा, शतभिषा को नवमी, बुधवार को स्त्री अभ्यंग स्नान न करे।

उपजाति

स्नानं प्रसूतेः पितृभे भरण्यां पुनर्वसौ वह्निभमूलपुष्ये।
श्रुत्यार्द्रचित्रासु विशाखिकायां कुर्यान्निषेधाय पुनः प्रसूतेः।।१८।।

मघा, भरणी, पुनर्वसु, कृत्तिका, मूल, पुष्य, (श्रवण), आर्द्रा, चित्रा और विशाखा में प्रसूति स्नान करे तो फिर प्रसूति नहीं होती।

६.२.१७ पशु का आवागमन

गमागमौ नैव शुभं पशूनां स्थानं श्रुतौ वापि तथोत्तरासु।
दर्शाष्टमी ब्रह्मभचित्रयोश्च भवेच्चतुर्थ्यां नवभूतनाम्ना।।१९।।

श्रवण, तीनों उत्तरा, रोहिणी, चित्रा इन नक्षत्रों में अमावस्या, अष्टमी, चतुर्थी और चतुर्दशी में पशु को अन्य स्थान पर न रखना, अन्य स्थान से न लाना तथा नवीन स्थान पर न बांधना।



६.२.१८ कृषिकर्म

शार्दूलविक्रीडित

त्याज्येयं तिथिरष्टमी च नवमी भूता चतुर्थी कुहूः
पूर्वाणां त्रितयं यमाग्निफणिभं ज्येष्ठा तथार्द्रा हले।
शेषैर्विंशतिधिष्ण्यकैस्तु फलदं मन्दार्कभौमांस्त्यजेत्
बीजोप्तौ च विशाखिका दितिहरी त्याज्यौ तथा वारुणम्।।२०।।

अष्टमी, नवमी, चतुर्दशी, चतुर्थी और अमावस्या तिथि तथा तीनों पूर्वा, भरणी, कृत्तिका, अश्लेषा, ज्येष्ठा, आर्द्रा, में हल जोतने का काम न करे। बाकी बीस नक्षत्र में हल जोते तो शुभ फल मिले। इस वार में शनिवार, रविवार व मंगलवार न ले। इनमें बीज बोने का काम भी न करे।

बाकी बीस नक्षत्र में से विशाखा, पुनर्वसु, श्रवण व शतभिषा भी बीज बोने के काम न ले।

उपजाति

लतौषधीपादरोपणेषु पूर्वा धनिष्ठा भरणी विवर्ज्या।
पुनर्वसुः स्वातिमघा च रौद्रं सार्प्याग्निज्येष्ठाश्रवणं न शस्तम्।।२१।।

तीनों पूर्वा, धनिष्ठा, भरणी, पुनर्वसु, स्वाति, मघा, आर्द्रा, अश्लेषा, कृत्तिका, ज्येष्ठा व श्रवण इन नक्षत्रों में लता, पौधे, वृक्ष व औषधी रोपने का कार्य न करें।

६.२.१९ जलाशय

वसन्ततिलका

नाद्यं सुखाय करवारुणवासवेषु ज्येष्ठोत्तरात्रितयपूषणि मैत्रपुष्ये।
तोयं मघोत्तरके वसुमैत्रपुष्ये स्यात् तोयभे च वरुणे च विधातृभे च।।

जलाशय निर्माण के लिए हस्त, शतभिषा, धनिष्ठा, ज्येष्ठा, तीनों उत्तरा, रेवती, अनुराधा व पुष्य नक्षत्र में करे तो सुखकर होता है।

जलाशय में जल का प्रथम दर्शन मघा, तीन उत्तरा, हस्त, धनिष्ठा, अनुराधा, पुष्य, पूर्वाषाढ़ा, शतभिषा व रोहिणी नक्षत्र में करना।।



६.२.२० यात्रा

शार्दूलविक्रीडित

यात्रा पुष्यमृगे श्रुतावदितिभे हस्ताश्विनीवासवे
रेवत्यां फलदा च मैत्रदिवसे चित्रादिकं वर्जयेत्।
सार्प्ये वह्निमघासु शैवयमभे वर्ज्या गुरौ दक्षिणे
प्राक् सोमे च शनौ जलेऽर्ककवितः सौम्यां बुधे मङ्गले।।२३।।

पुष्य, मृगशीर्ष, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, अश्विनी, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा यह गमन (यात्रा) के लिए शुभ फल देते हैं। परन्तु चित्रा, स्वाती, विशाखा, अश्लेषा, कृत्तिका, मघा, आर्द्रा, भरणी गमन के समय न ले। गुरुवार को दक्षिणा दिशा में, सोमवार व शनिवार को पूर्व, रविवार, शुक्रवार को पश्चिम तथा बुधवार व मंगलवार को उत्तर दिशा में गमन न करे।

इन्द्रवज्रा

प्राज्यां कुबेराग्निदिशो विभागे नैर्ऋत्ययाम्ये वरुणेऽनिलेशे।
योगिन्य उक्ताः प्रतिपन्नवम्योर्यानेऽभिमुख्यः क्रमतोऽपि दुष्टाः।।२४।।

प्रथमा व नवमी (तिथि) को पूर्व दिशा में योगिनी जाने, दूज व दशमी को उत्तर में, तीज व ग्यारस को अग्नि में, चौथ व बारस को नैर्ऋत्य में, पंचमी व तेरस को दक्षिण में, छठ व चौदस को पश्चिम में, सप्तमी व पूर्णिमा को वायव्य में, (अष्टमी व अमावस्या को ईशान कोण में) योगिनी जानना। यह योगिनी गमन करते समय सामने हो तो दुष्ट फल देती है।

वसन्ततिलका

मेषे वृषे मिथुनकर्कटकादिराशौ
प्राग्याम्यपश्चिमकुबेरदिशासु चन्द्रः
यात्रासु दक्षिणकरेऽभिमुखेऽर्थलाभो
धान्यक्षयो भवति वामकरे च पृष्ठे।।२५।।

मेष, सिंह व धनु इन तीन राशि में चन्द्रमा हो तो चन्द्रमा को पूर्व दिशा में जानना। वृष, कन्या व मकर में दक्षिण, मिथुन, तुला व कुम्भ में पश्चिम तथा कर्क, वृश्चिक व मीन में चन्द्रमा उत्तर दिशा में जानना। यह चन्द्रमा गमन के समय दाएं या सामने हो तो धन का लाभ तथा बाएँ या पीछे हो तो धान्य का हानि करता है।



६.२.२० यात्रा

शार्दूलविक्रीडित

यात्रा पुष्यमृगे श्रुतावदितिभे हस्ताश्विनीवासवे
रेवत्यां फलदा च मैत्रदिवसे चित्रादिकं वर्जयेत्।
सार्प्ये वह्निमघासु शैवयमभे वर्ज्या गुरौ दक्षिणे
प्राक् सोमे च शनौ जलेऽर्ककवितः सौम्यां बुधे मङ्गले।।२३।।

पुष्य, मृगशीर्ष, श्रवण, पुनर्वसु, हस्त, अश्विनी, धनिष्ठा, रेवती, अनुराधा यह गमन (यात्रा) के लिए शुभ फल देते हैं। परन्तु चित्रा, स्वाती, विशाखा, अश्लेषा, कृत्तिका, मघा, आर्द्रा, भरणी गमन के समय न ले। गुरुवार को दक्षिणा दिशा में, सोमवार व शनिवार को पूर्व, रविवार, शुक्रवार को पश्चिम तथा बुधवार व मंगलवार को उत्तर दिशा में गमन न करे।

इन्द्रवज्रा

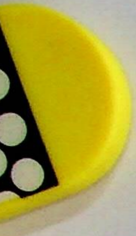
प्राज्यां कुबेराग्निदिशो विभागे नैर्ऋत्ययाम्ये वरुणेऽनिलेशे।
योगिन्य उक्ताः प्रतिपन्नवम्योर्यानेऽभिमुख्यः क्रमतोऽपि दुष्टाः।।२४।।

प्रथमा व नवमी (तिथि) को पूर्व दिशा में योगिनी जाने, दूज व दशमी को उत्तर में, तीज व ग्यारस को अग्नि में, चौथ व बारस को नैर्ऋत्य में, पंचमी व तेरस को दक्षिण में, छठ व चौदस को पश्चिम में, सप्तमी व पूर्णिमा को वायव्य में, (अष्टमी व अमावस्या को ईशान कोण में) योगिनी जानना। यह योगिनी गमन करते समय सामने हो तो दुष्ट फल देती है।

वसन्ततिलका

मेषे वृषे मिथुनकर्कटकादिराशौ
प्राग्याम्यपश्चिमकुबेरदिशासु चन्द्रः
यात्रासु दक्षिणकरेऽभिमुखेऽर्थलाभो
धान्यक्षयो भवति वामकरे च पृष्ठे।।२५।।

मेष, सिंह व धनु इन तीन राशि में चन्द्रमा हो तो चन्द्रमा को पूर्व दिशा में जानना। वृष, कन्या व मकर में दक्षिण, मिथुन, तुला व कुम्भ में पश्चिम तथा कर्क, वृश्चिक व मीन में चन्द्रमा उत्तर दिशा में जानना। यह चन्द्रमा गमन के समय दाएं या सामने हो तो धन का लाभ तथा बाएँ या पीछे हो तो धान्य का हानि करता है।



६.२.२१ धनसंग्रह

उपजाति

धनस्यवृद्धौ धनसङ्ग्रहे च श्रुतित्रयं पुष्यपुनर्वसुश्च।
हस्तो मृगान्त्याश्विभमैत्रचित्राः स्वातिर्गृहीता न तु शेषमृक्षम्।।२६।।

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मृगशीर्ष, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, चित्रा और स्वाती ये नक्षत्र धन की वृद्धि में श्रेष्ठ कहे हैं। अतः कार्य में इन्हें ही लेना, दूसरों को नहीं लेना।

६.२.२२ देव प्रतिष्ठा

सौम्यायने धवलपक्षविमा(मी)नचैत्रे
द्व्यङ्गे स्थिरेऽमरगणस्य हिता प्रतिष्ठा।
युग्मा तिथिर्न शुभदा नवमी तथा च
श्रेष्ठा शुभेषु विषमा दशमी द्वितीया।।२७।।

उत्तरायण के सूर्य में, शुक्ल पक्ष में, मीन संक्रान्ति व चैत्र मास को छोड़कर, द्विस्वभाव व स्थिर लग्न में देव की प्रतिष्ठा करना। इन में सम तिथि व नवमी को प्रतिष्ठा करे तो शुभ फल न मिले, विषम तिथि शुभ है, दशमी व दूज प्रतिष्ठा में शुभ है।

शार्दूलविक्रीडित

पूर्वाभाद्रपदोत्तरात्रयमृगे ब्राह्मे च ज्येष्ठाद्वये
पूर्वाषाढपुनर्वसुश्रुतिकरस्वात्यश्विनीवासवे।
रेवात्यार्द्रभपुष्यमैत्रदिवसे श्रेष्ठं सुरस्थापनं
चक्रे सप्तशलाकके च न हितं क्रूरस्य वेधे कुजे।।२८।।

पूर्वाभाद्रपद, तीनों उत्तरा, मृगशीर्ष, रोहिणी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, स्वाती, अश्विनी, धनिष्ठा, रेवती, आर्द्रा, पुष्य व अनुराधा में दिन में देव की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है। परन्तु सप्तशलाका चक्र में क्रूर ग्रहों को वेध हो तो शुभ नहीं, उनमें भी मंगल का वेध तो अत्यन्त अनिष्ट है।

६.२.२३ कुण्डली

वसन्ततिलका

क्रूरास्त्रिषष्ठदशमायगताः शुभाः स्युस्तद्वत् त्रिकोणधनकेन्द्रगताश्च सौम्याः।



६.२.२१ धनसंग्रह

उपजाति

धनस्यवृद्धौ धनसङ्ग्रहे च श्रुतित्रयं पुष्यपुनर्वसुश्च।

हस्तो मृगान्त्याश्विभमैत्रचित्राः स्वातिर्गृहीता न तु शेषमृक्षम्।।२६।।

श्रवण, धनिष्ठा, शतभिषा, पुष्य, पुनर्वसु, हस्त, मृगशीर्ष, रेवती, अश्विनी, अनुराधा, चित्रा और स्वाती ये नक्षत्र धन की वृद्धि में श्रेष्ठ कहे हैं। अतः कार्य में इन्हें ही लेना, दूसरों को नहीं लेना।

६.२.२२ देव प्रतिष्ठा

सौम्यायने धवलपक्षविमा(मी)नचैत्रे

द्व्यङ्गे स्थिरेऽमरगणस्य हिता प्रतिष्ठा।

युग्मा तिथिर्न शुभदा नवमी तथा च

श्रेष्ठा शुभेषु विषमा दशमी द्वितीया।।२७।।

उत्तरायण के सूर्य में, शुक्ल पक्ष में, मीन संक्रान्ति व चैत्र मास को छोड़कर, द्विस्वभाव व स्थिर लग्न में देव की प्रतिष्ठा करना। इन में सम तिथि व नवमी को प्रतिष्ठा करे तो शुभ फल न मिले, विषम तिथि शुभ हैं, दशमी व दूज प्रतिष्ठा में शुभ है।

शार्दूलविक्रीडित

पूर्वाभाद्रपदोत्तरात्रयमृगे ब्राह्मे च ज्येष्ठाद्वये

पूर्वाषाढपुनर्वसुश्रुतिकरस्वात्यश्विनीवासवे।

रेवात्यार्द्रभपुष्यमैत्रदिवसे श्रेष्ठं सुरस्थापनं

चक्रे सप्तशलाकके च न हितं क्रूरस्य वेधे कुजे।।२८।।

पूर्वाभाद्रपद, तीनों उत्तरा, मृगशीर्ष, रोहिणी, ज्येष्ठा, मूल, पूर्वाषाढा, पुनर्वसु, श्रवण, हस्त, स्वाती, अश्विनी, धनिष्ठा, रेवती, आर्द्रा, पुष्य व अनुराधा में दिन में देव की प्रतिष्ठा श्रेष्ठ है। परन्तु सप्तशलाका चक्र में क्रूर ग्रहों को वेध हो तो शुभ नहीं, उनमें भी मंगल का वेध तो अत्यन्त अनिष्ट है।

६.२.२३ कुण्डली

वसन्ततिलका

क्रूरास्त्रिषष्ठदशमायगताः शुभाः स्युस्तद्वत् त्रिकोणधनकेन्द्रगताश्च सौम्याः।



चन्द्रो दशायसहजेषु धने प्रशस्तो
जीवोऽष्टमः शशिसुतोऽपि सुखाय कैश्चित्।।२९।।

प्रतिष्ठा की कुण्डली में तीसरे, छठे, दसवें व ग्यारहवें स्थान पर क्रूर ग्रह श्रेष्ठ हैं। त्रिकोण, धन, केन्द्र में सौम्य ग्रह शुभ है। दसवें, ग्यारहवें व तीसरे में, दूसरे में चन्द्रमा शुभ है। आठवें में गुरु शुभ है। कई आचार्य आठवें में बुध को सुखकारी करते कहते हैं।

शार्दूलविक्रीडित

मूर्तौ मृत्युकरः शशी धनगतो धान्यं सुखं विक्रमे
वेश्मस्थः कलहं करोति सुतगः सन्तानगोत्रक्षयम्।
षष्ठे वैरिभयं तु सप्तगतो दुःखं मृतिं मृत्युगो
विघ्नं धर्मगतो बलं च गगने लाभेऽर्थमन्त्ये व्ययम्।।३०।।

प्रतिष्ठा कुण्डली में लग्न का चन्द्रमा मृत्यु, दूसरा धान्य की वृद्धि, तीसरा सुख, चौथा क्लेश, पांचवां सन्तान व गौत्रं का क्षय, छठा शत्रु का भय, सातवां दुख, आठवां मृत्यु, नवां विघ्न, दसवां बल, ग्यारहवाँ धन देता है। बारहवां चन्द्रमा खर्च कराता है।

उपजाति

कार्यं सदा शान्तिकपौष्टिकं च कन्याविवाहर्क्षगणेषु पुष्ये।
श्रुतौ तथार्केऽश्विभशुक्रवारे बुधे च जीवे सफलं प्रदष्टिम।।३१।।

विवाह के नक्षत्र में पुष्य, श्रवण, हस्त, अश्विनी तथा शुक्रवार, बुधवार व गुरुवार को शान्ति व पौष्टिक कर्म करे तो फलदाई है। अतः सब प्रयत्न से शुभ कार्य करें।

विश्लेषण (आधुनिक समय में परिशीलन)ः- राजवल्लभ ग्रन्थ के अध्याय १३ में मुहूर्त का विचार किया है। इसमें खुदाई, पशु, वाहन आदि का कार्य, देवमन्दिर, राज्याभिषेक, अन्न-प्राशन, विद्यारम्भ, क्षौर, रत्न धारण, कृषि-कर्म, जलाशय निर्माण, यात्रा, धनसंग्रह, विवाह आदि के लिए शुभ मुहूर्त का वर्णन किया है। सामान्य रूप से नक्षत्र के आधार पर यह वर्णन किया है। नक्षत्र की विभिन्न श्रेणियाँ होती है जैसे अधोमुख, ऊर्ध्वमुख, तिर्यक मुख, दारुण, क्षिप्र, चर आदि। जिस प्रकार का कार्य करना हो, उस प्रकार के नक्षत्र का चयन करना चाहिए। जैसे जब हमें खुदाई करना हो, चाहे कुआँ खुदवाना हो मकान के लिए नींव की खुदाई करना हो तो हम अधोमुख नक्षत्र में करना चाहिए। ऐसा करने से प्रकृति का सहयोग मिलता है, क्योंकि जिस दिन चन्द्रमा जिस नक्षत्र में होता है, वह उस दिन का नक्षत्र होता है। चन्द्रमा जलराशि को प्रभावित करता है तथा हमारे शरीर में भी लगभग ७१ प्रतिशत जल होता है, अतः मनुष्य भी चन्द्रमा व नक्षत्र से प्रभावित होता है।



६.३ शकुनलक्षणम्

६.३.१ शकुन का महत्व

पादाकुलक

तिथिवारर्क्षयुतेऽपि गुणौघे किमपि न कार्यं शकुनविरुद्धे।
तेषामनुकूलेऽपि हिं दोषे शकुने सिद्धिमुपैति सदैव।।१।।

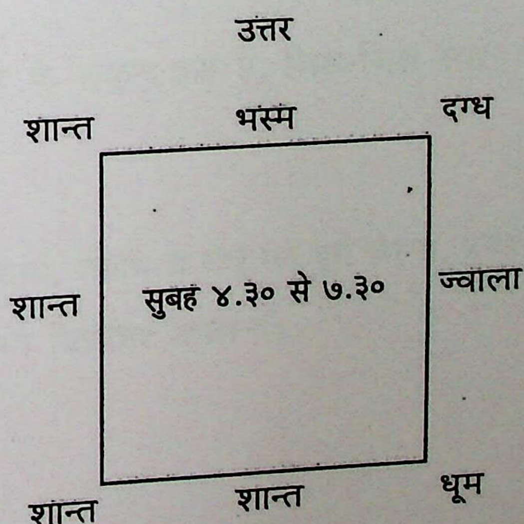
तिथि, वार और नक्षत्र शुभ हो परन्तु शकुन का विरोध हो तो कार्य न करें। परन्तु तिथि, वार और नक्षत्र ये सब प्रतिकूल हो या दोषवाले हो यदि शकुन अनुकूल हो तो कार्य में सफलता मिलती है।

६.३.२ दग्धा आदि दिंशा

शार्दूलविक्रीडित

प्राग्दग्धा शिवदिक् सुरेश्वरदिशि ज्वालाग्निदिग् धूमिता
सौम्या भस्मयुता च भास्करवशात् शान्ताश्चतस्रोऽपराः।
प्रत्येकं प्रहराष्टकेन सविता संसेवतेऽष्टौ दिशः
शान्ता सर्वसमीहितं च शकुना दीप्तौभयादौ शुभाः।।२।।

रात्रि के पिछले (आखरी) आधे प्रहर से एक प्रहर (एक प्रहर = तीन घण्टे) तक सूर्य पूर्व में रहे, उस समय ईशान कोण दग्ध समझना। उस समय पूर्व में ज्वाला,



अग्निकोण धूमवाला, उत्तर दिशा भस्म वाली तथा बाकी चार दिशा शान्त जानना।

(एक प्रहर = तीन घण्टे, प्रहरी = पहरेदार = तीन घण्टे तक निगरानी रखना)

इस रीति से प्रत्येक दिशा और कोण में अनुक्रम से एक-एक प्रहर तक सूर्य रहता है। जिस दिशा में या कोण में सूर्य रहे उस दिशा या कोण में ज्वाला समझना, उससे अगली दिशा या कोण में धूम, सूर्य के पीछे की दिशा दग्ध, दग्ध से पहले की दिशा भस्म वाली समझना। शेष दिशा शान्त होती हैं।

इसी प्रकार सब दिशा व सब कोण जानना। सब कार्यों में शान्ति, दिशा व कोण में, शकुन हो तो शुभ है। पर भयादि कारण दिप्त (दीप्त) दिशा में (ज्वाला वाली दिशा या कोण) में शकुन हो तो शुभ जानना।।

६.३.३ शकुन

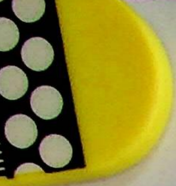
मन्दाक्रान्ता

चेष्टा स्थानं स्वरगतिदिशो भावकालौ च सप्त
शान्ता दीप्ता विदधति नृणां सूचनं तत्फलस्य।
सद्यो नष्टे युवतिविषये व्याधिदुर्गादिभीतौ
प्रावेशेयं शकुन उदितो यात्रिकादन्यथाद्यैः।।३।।

जानवरों की चेष्टा, बैठने की जगह, स्वर, गति, जिस दिशा में हो वह दिशा, अंगों की चेष्टा, चेष्टा, चेष्टा का समय, यह सात प्रकार का जानवरों का शकुन जिन दिशाओं में देखे वैसा फल मिलता है।

आगे अनेक प्रकार के शकुन कहे हैं, जिस-जिस स्थान पर जैसा शकुन हो वैसा समझना।

जो स्त्री सम्बन्धी कार्य, व्याधि व शत्रु का दुर्ग घेरना, प्रवेश करना, के समय शकुन कहें हैं, उन्हें यात्रा के समय विपरीत समझना।



शार्दूलविक्रीडित

छत्राम्भोजगजाजवाजिसुरभीवीणायुधं चामरम्
भेरीशङ्खनिनादमर्दलसुरा गीतं च वेदध्वनिः।
मत्स्याः गोमयमृत्तिके च पललं दीपोऽम्बुलकुम्भो घृतं
ताम्रं रौम्यसुवर्णमम्बरनृपो मध्वाज्यदूर्वा दधि।।४।।

प्रयाण (गमन) के समय छत्र, कमल, हस्ति, बकरा, घोड़ा, गाय, वीणा, आयुध, भेरी का नाद, शंख का नाद, मृदंग, मदिरा, गायन, वेदस्वर, मत्स्य, गोबर, मिट्टी, मांस, दीपक, पानी से भरा पात्र, घी, ताम्बा, चाँदी, सोना, वस्त्र, राजा, मधु, घी, दूर्वा, दही से दाहिनी ओर आए तो शुभ जाने।

भृङ्गाराञ्जनवाहनं द्विजपयः शाकार्द्रपुष्पं फलं
वेश्यादर्पणमङ्कुशौषधसमित्सिद्धान्नवर्द्धापनम्।
दृष्ट्वा दक्षिणपार्श्वगानिगमनं कार्यं सदा धीमता
पृष्ठे गच्छ पुरैहि मङ्गलगिरा यात्रा च सिद्ध्यै भवेत्।।५।।

झारी, काजल, वाहन, ब्राह्मण, दूध, शाक, ताजा फूल, फल, वैश्या, दर्पण, अंकुश, औषधी, समिधा, पका अन्न, पर कोई पदार्थ दाहिनी ओर आए तो प्रयाण करें। प्रयाण (गमन) करते समय कोई पीछे से या आगे से आओ शब्द बोले या मंगल वचन बोले उस समय गमन करने से कार्य में सिद्धि होती है।

तैलाङ्गारकचाश्मभस्मफणिनः कार्पासलौहाजिनं
तक्रावस्करकृष्णधान्यलवणं काष्ठास्थिविष्ठा वसाः।
पिण्याकस्तुषरज्जुश्रृङ्खलगुडं पङ्को घटो रिक्तको
नासाहीनविनग्नमुण्डितवमत्प्रव्राजकं बन्धिकः।।६।।

तेल, अंगार, बाल, पत्थर, राख, नाग, कपास, लोहा, मृगचर्म, मठ्ठा, चोर, काला अन्न, लवण। लकड़ी, हड्डी, विष्ठा, चर्बी, खल, सांकल, रस्सी, गुड़, कीचड़, खाली बर्तन, नकटा, नग्न, मुंडित, वमन करता हुआ, सन्यासी, गमन करते समय सामने से मिले तो उस समय गमन न करें।

दीनः केशविमुक्तकोऽपि हदमानारूढको गर्दभः
सोष्ट्रः सैरिभवाहनोऽपि रुदितश्चेत्यादिकं वर्जयेत्।

द्वाराघातबिडालयुद्धकलहं रक्ताम्बरव्यत्ययो

मा गच्छ क्व च यासि तिष्ठवचनं यात्रानिषेधाय च ।।७।।

दरिद्र, गंजा, लीद या छाग करते आता हो ऐसा वाहन पर बैठा हो, गधे, ऊँट, पाड़ा ऊपर बैठा या रोता सामने मिले तो उस समय गमन न करें।

गमन के समय द्वार आपस में घात करें, बिल्लियों का युद्ध हो, घर में क्लेश हो, कोई लाल कपड़ा धारण कर वध के लिए जाता हो, वस्त्र विपरीत स्थान पर हो ऐसा सामने हो तो गमन न करें।

गमन के समय कोई स्वाभाविक रूप से बोले कि न जाओ, कहाँ जा रहे हो तो ये अपशकुन प्राण के नाश की सूचना देते हैं।

श्यामा पिङ्गलिका शिवा परभृता छुछुन्दरी शूकरी

पल्लीनां स्वरवामजः शुभकरः पुंसंज्ञकानां तथा।

श्येनो भासकपी मयूर रवः श्रीकण्ठकाश्छिपिकाः

शस्ता दक्षिणवासिताश्च शकुनाः स्त्रीसंज्ञका ये च ते।।८।।

श्यामा, देवचकली, चीबरी या भैरवी, सियारिन, कोयल, छंछुदरी, सुअरी व पल्ली (छिपकली) गमन के समय बाईं ओर स्वर करें तो शुभ है। पुरुषवाचक जानवर का शब्द बाईं ओर शुभ है। बाज, गिद्ध, बन्दर, मोर, काला मृग, श्रीकंठ और चीपक तथा स्त्रीवाचक पशु दाईं ओर शब्द करे तो शुभ है।

चाषं खञ्जनबर्हिणोऽजनकुलं स्याच्छब्दकीर्तिक्षणं

शस्तं जाहकशूकरोरशशं गोधा च सङ्कीर्तनम्।

सिद्ध्यै दृष्टिरवौ च भल्लकपिजौ'नो कीर्तनं सिद्धिदं

नो गच्छेत् पथि लङ्घिते च शशकैर्गोधाबिडालोरगैः।।९।।

पपीहा, खंजन, मोर, नवला का स्वर कीर्ति प्रदान करता है। कछुआ, सूअर, सर्प, खरगोश एवं गोधा का शब्द सिद्धि के लिए शुभ कहा है। यात्रा के समय भालू व बन्दर का दिखाई पड़ना एवं उनका स्वर सुनाई देना सिद्धि नहीं प्रदान करता है। खरगोश, गोधा, बिल्ली व सर्प द्वारा रास्ता काटे जाने पर नहीं जाना चाहिए।

स्थानानीह शुभानि तोरणगृहप्रासादभूभृद्ध्वजा-
श्छायाभूः सुमनोहरा च सजला क्षीरद्रुमोद्दालकः।
नेष्टाः श्रृङ्गकपालशुष्कपतिता वृक्षास्तथा कण्टका
दग्धाश्छिन्नमहीरुहोष्ट्रमहिषाः केशोपलाद्याः खराः।।१०।।

गमन के समय प्रशस्त स्थान तोरण, पर्वत, घर, प्रासाद, ध्वजा, मनोहर व छाया युक्त भूमि, जलस्थान है। यात्रा के समय अशुभ यह हैं- सींग, कपाल, सूखे झाड़, कांटे, ऊँट, पाड़ा, बाल, पत्थर, गधे।

शान्तो वामरवस्तु तारगमनं भक्षग्रहौ मैथुनं
नृत्यं दक्षिणचेष्टितं च सुजले स्नानं च शान्ताश्रयः।
वृक्षारोहणसम्मुखी च मुदिता पक्षद्वयोक्षे(त्क्षे) पणं
श्यामाया इति चेष्टितं च फलदं दुष्टं च वामस्तथा।।११।।

गमन के समय श्यामा का शान्त शब्द हो शुभ, बाईं ओर का शब्द, तेज गति, चारा चरती, मैथुन करती, नाचती, दाईं ओर चेष्टा करती, जल में स्नान करती, शीतल स्थान में बैठी, झाड़ पर जाने की तैयारी करती, खुश, पंखों में क्रीडा करती ये सारे शकुन शुभ है।

वामं पक्षमपक्षिपेत् प्रकुरुते चेष्टां च वामां वमिं
नाशत्रासवियोगकम्पनमथो व्यावृत्तविजृम्भणम्।
पङ्के भस्मनि मज्जनं विदधती रज्ज्वस्थिकेशान्मुखे
वक्रास्या विदधाति मूत्रशकृती रोमाञ्चितं भीतये।।१२।।

गमन के समय बायाँ पंख ऊँचा करे, तरफ चेष्टा करे, वमन करे, उड़ जाए, त्रास हो, वियोग हो, शरीर कांपे, राख में लोटती हो या नहाती हो, रज्जू, हड्डी, बाल मुख में पकड़े हो, मूत्र या विष्ठा करती है, रोमांचित हो ये सब अपशकुन है जो भयकारक है।

तारा दक्षिणगा च वामककुभः स्याद् वामगा वामिका
ऋज्वी चोर्ध्वगती च वक्रगमना वक्रोर्ध्वगा मूर्द्धगा।
कापाटी च कपाटवच्च गुलिका वक्राण्डवद् दूरगा
लीनान्धापि च पृष्ठगा च हरिवद् आयाति सा दुर्दरी।।१३।।

गमन करते समय बाईं ओर उड़कर दाईं ओर उतरे तो उसका नाम तारा, दाईं ओर उड़कर बाईं ओर उतरे उसका नाम वामिका, सीधी उड़े जो ऋज्वी, वक्री उड़े तो वक्रा, मुख ऊपर करके उड़े तो मूर्द्धगा, सीधी-सपाट उड़े तो कापाटी, चक्राकार उड़े तो गुलिका, उड़ती-उड़ती दूर चली जाए तो दूरगा, छिपती-छिपती या अटकती-अटकती उड़े तो अंधा तथा पीठ के पीछे उड़े तो पृष्ठगा और बन्दर के समान उड़े तो दुर्दुरी नाम है।

श्यामा (पक्षी) गमन करते समय नाम व लक्षण		
गमन करते समय	नाम	लक्षण
बाईं ओर उड़कर दाईं ओर उतरे	तारा	-
दाईं ओर उड़कर बाईं ओर उतरे	वामिका	-
सीधी उड़े	ऋज्वी	सफलता करने वाली
वक्री उड़े	वक्रा	विपरीत फल देने वाली
मुख ऊपर करके उड़	मूर्द्धगा	युद्ध करने वाली
सीधी-सपाट उड़े	कापाटी	भय करनेवाली
चक्राकार उड़े	गुलिका	क्षय करने वाली
उड़ती-उड़ती दूर चली जाए	दूरगा	ज्यादा दिन में फल देने वाली
छिपती-छिपती या अटकती-अटकती उड़े	अंधा	कान को सुख देने वाली
पीठ के पीछे उड़े	पृष्ठगा	इच्छित फल न देने वाली
बन्दर के समान उड़े	दुर्दुरी	तुच्छ फल देने वाली दुर्दुरी

ऋज्वी सिद्धिकरी तथोर्ध्वफलदा वक्रा च वक्रं फलं
युद्धं चोर्ध्वगता कापाटिभयदा कार्यक्षयं गौलिका।
दूराद् दूरफला तथा शरगतिर्नेष्टाप्तये पृष्ठगा
त्वन्धा ऊर्ध्वमुखं करोति गतये तुच्छं फलं दुर्दरी।।१४।।

गमन के समय सफलता करने वाली ऋज्वी, उससे विपरीत फल देने वाली वक्रा, मूर्द्धगा युद्ध करने वाली, कापाटी भय करनेवाली, गुलिका क्षय करने वाली, ज्यादा दिन में फल देने वाली दूरगा, इच्छित फल न देने वाली पृष्ठगा, मात्र कान को सुख देने वाली अंधा, तुच्छ फल देने वाली दुर्दुरी ये श्यामा की गति का फल जाने।

यात्रायां फलदस्तु वामनिनदोऽनर्थाप्तये दक्षिणः
पृष्ठे पृष्ठफलं करोति पुरतो यात्रानिषेधं तु सा

याने वापनिनादतारगतयः प्रश्ने च शान्ते(शान्ताः) शुभा
अग्रे दक्षिणनादिता(श्)च गतयो वामाः प्रवेशादिषु।।१५।।

गमन करते समय बाईं ओर श्यामा बोले तो शुभ है, दाईं ओर बोले तो अनर्थ की प्राप्ति करे। पीठ के पीछे बोले तो कई दिन में फल दे। आगे बोले तो भी गमन न करें। परन्तु गमन करते समय बाईं ओर बोल कर दाईं ओर उतरे तो शुभ है। कोई प्रश्न पूछे उस समय शान्त हो तो शुभ है। प्रवेश करते समय आगे या दाईं ओर बोले बाईं ओर उतरे तो शुभ है।

उपजाति
तारा भयं हन्ति करोति युग्मा लाभं तृतीया बहुशोऽपि याने।
वामा भयं मृत्युवशं द्वितीया तथा तृतीया धनजीवनाशम्।।१६।।

गमन के समय बाईं से दाईं ओर एक तारा उतरे तो भय का नाश करे, दो तारा उतरे तो लाभ करे, तीन तारा उतरे तो अत्यधिक लाभ करे।

गमन के समय दाएँ से बाएँ एक तारा उतरे तो भय, दो तारा उतरे तो मृत्यु, तीन तारा उतरे तो धन व जीव का नाश करे।

वामे शब्दमुपैति च तारा शब्दं कृत्वा गच्छति वामा।
पुनरपि शब्दं कुरुते वामे सा बहुफलदा कथिता दुर्गा।।१७।।

गमन करते समय बाईं ओर श्यामा बोलने के पश्चात् बोलते-बोलते दाईं ओर जो शब्द करे पश्चात् बाईं ओर बोले तो उसे दुर्गा कहते हैं तथा वह अत्यन्त श्रेष्ठ फल देता है।

वामरवा यदि गच्छति तारा दक्षिणतोऽपि करोति च शब्दम्।
हन्ति फलं गतिजं कुरुते सा अल्पफलं प्रथमा रवजातम्।।१८।।

गमन के समय बाईं ओर दुर्गा (तारा) कर दाईं ओर जाकर बोले तो गमन निष्फल जाने, बाईं ओर स्वर में अल्प फल जानें।

वसन्ततिलका
श्रेष्ठखगश्च गमनेऽपि तारयातो वामा प्रवेशसमये फलदा च दुर्गा।
चेष्टानिनादगतिसंस्थितिभक्षलाभौ(भो)सर्वं यथोत्तरबलं महते समूहः।१९।

यात्रा के समय तेज गति से चलने वाला श्रेष्ठ पक्षी शुभ है। प्रवेश में बाईं ओर दुर्गा (श्यामा पक्षी) शुभ है।

गमन के समय इनकी चेष्टा, स्वर, गति, स्थिति एवं भक्ष्य लाभ, ये सभी एक दूसरे से अधिक बलवान होते हैं।

शार्दूलविक्रीडित

श्यामे तोरणसंज्ञिके च फलदे सव्यापसव्यारवे
भूशब्दौ चिलिशूलितोऽथ जलगौ कूचिश्चिकू निस्स्वनौ।
तौ चीचीचिलकूचमारुतभवौ कीतुद्वयं चाग्निजं
दीप्तौ मारुतजौ च चीकुचिरिरी मिश्रोऽग्निरन्यौ शुभौ।।२०।।

गमन के समय दाएँ व बाएँ, दो श्यामा, आमने-सामने मुख से हो बोले तो तोरण संज्ञा कहते हैं जो शुभ फलदाई है। श्यामा चिलि और शूलि शब्द करे तो पृथ्वी तत्व, कूची व चिकू शब्द करे तो जलतत्व समझे। चीची और चिलकूच हो तो वायु तत्व, दो बार कीतु हो तो अग्नि तत्व की प्रधानता होती है।वायु से उत्पन्न दोनों शब्द दीप्त (अशुभ) फल देते हैं।चीकू और चिररी शब्द हो तो अग्नि मिश्रित जाने यह मिश्रित फल देते हैं। वायु और अग्नि तत्व शुभ नहीं है। अन्य शब्द शुभ जानें।

उपजाति

आदौ नता प्रान्तगतोन्नता या प्रागुन्नता प्रान्तगता नता चेत्।
यत्राप्यमल्पं चिरतोऽपि वस्तु सा भूरिदा स्यादचिरेण पुंसाम्।।२१।।

यदि श्यामा पहले झुके फिर ऊँची हो तो अधिक समय में तथा कम फल मिलता है। यदि पहले ऊँची हो, फिर नीची झुके तो शीघ्र तथा अधिक फल दे।

शालिनी

रेवानद्या दक्षिणे देशभागे वामे पृष्ठे पिङ्गला सिद्धिदा स्यात्।
यात्राकाले दक्षिणाग्रे प्रशस्ता प्रोक्ता प्राज्ञैरुत्तरे देशभागे।।२२।।

गमन करते समय, रेवा नदी के दक्षिण तट के देशों में, बाईं व पीठ के पीछे पिंगला बोले तो सिद्धि दे। नदी के उत्तर के देश में गमन करते समय दाईं व सामने बोले तो श्रेष्ठ है। ऐसा पंडितों ने कहा है।

उपजाति

सर्वेषु देशेषु भये प्रवेशे रुतं प्रशस्तं खलु दक्षिणाङ्गे।
शस्तं स्वदेशात् विपरीतभावं स्त्रीणां कृते भूपनिरीक्षणे च।।२३।।

सब देशों में भय व प्रवेश के समय पिंगला दाईं ओर शब्द करे तो शुभ है। स्त्रियों के लिए तथा राजा से मिलने के लिए, स्वदेश में विपरीत हो तो शुभ है।

शार्दूलविक्रीडित

वामेयं गमने प्रवेशसमये श्रेष्ठा गतिर्दक्षिणा
शान्ते दक्षिणचेष्टितं शुभदं मूत्रादिकं सिद्धिदम्।
जृम्भालोडनछर्दिकासपतनं भग्नाङ्गविष्ठादिकं
वामं चेष्टितमङ्गधूननमपि त्याज्यं शुनोर्दीप्तिदम्।।२४।।

गमन के समय, श्वान (कुत्ता) बाएँ तथा प्रवेश में दाएं उतरे तो शुभ है। शान्त कार्य में दाईं ओर चेष्टा करे, मूत्रादि करे तो सिद्धि दे। परन्तु बाईं ओर जम्हाई ले, कान फड़फड़ाए, वमन करे, जमीन पर लोट लगाए, विष्ठा करे, उस समय गमन न करे।

वामा श्वानगतिः शुभोऽत्र गमने शुन्या गतिस्त्वन्यथा
नो चेष्टां प्रतिभेदं एव शुनकी नो मूत्रयन्ती शुभाः।
ते कुर्वन्ति भयं रुजं च रुदिता वर्षासु वृष्टिं तथा
वामा वै बिलवासिनश्च नखिनः शस्ताः प्रवेशेऽन्यथा।।२५।।

यात्रा के समय श्वान बाईं ओर गति करे तो शुभ होता है। कुतिया की गति इससे विपरीत होती है। कुतिया का दाहिनी ओर गमन प्रशस्त होता है। कुत्ते एवं कुतिया की चेष्टा में कोई भेद नहीं होता है। कूतरी मूत्र करे तो शुभ नहीं है। वे यदि रोने का स्वर करें तो भय एवं रोग होता है तथा वर्षा ऋतु में वृष्टि होती है। यात्रा के बाद प्रवेश के समय बिल में रहने वाले नाखून वाले प्राणी बाईं ओर हों तो शुभ होता है।

गौरेणा विषमाः प्रदक्षिणगताः पुंसां प्रयाणे शुभा
नो वामा न समाश्च कृष्णमलिनाः सिद्ध्यै समा वामगाः।

नेष्टा दक्षिणगाश्च कृष्णविषमाश्चावेष्टनं मृत्यवे
कण्डूकम्पपुरीषमूत्रमशुभं वामाः प्रवेशे शुभाः।।२६।।

मनुष्यों की यात्रा के प्रस्थान के समय विषम संख्या वाला गौर हिरण दाहिनी ओर जाते हों तो शुभ होता है। बाई ओर सम संख्या में, काले रंग के एवं मलिन हिरण शुभ नहीं होते हैं। सम संख्या में गौर हिरण न तो दाहिनी भाग में और न ही बाई ओर शुभ होते हैं। विषम संख्या में काले हिरणों का समूह मृत्यु का कारण होता है। इनका शरीर खुजलाना, कांपना, मल तथा मूत्र त्याग आदि अशुभ हैं। प्रवेश के समय बाईं ओर के हिरण शुभ होते हैं।

वसन्ततिलका

वामौ च कौशिकशशौ खरजम्बूकौ च
गोवाजिसारसशुका अपि वायसाश्च।
श्रेष्ठौ कपिञ्जलगणाधिपनामधेयौ
तौ दक्षिणे च गमने विशनेऽन्यथा स्युः।।२७।।

गमन के समय उल्लू, खरगोश, गधा, सियार, गाय, घोड़ा, सारस, तोता, काव्वा ये बाईं ओर बोले तो शुभ है। यात्रा के समय कपिंजल और गणाधीप यह दाईं ओर बोले तो शुभ है तथा प्रवेश के समय यह दोनों बाईं ओर बोले तो शुभ है।

श्रेष्ठाः प्रदक्षिणगता विषमाः प्रयाणे
एतावयांसि नकुलो नखिषु त्वपीह।
सार्थे नृणां शकुन इष्टकरः स्वरोत्थे
वामस्वरे वहति तारगतिः प्रशस्ताः।।२८।।

गमन के समय पक्षी, नाखून वाले पशु में नकुल, विषम संख्या में हो दाहिनी ओर शुभ है। मनुष्यों का स्वर शकुन शुभ होता है। बायाँ स्वर चलने पर शीघ्र गति शुभ होता है।

उपजाति
प्रदक्षिणाः पूर्वदिशः पिपील्यः शून्यस्तथेष्टागमनं च सिद्धिः।
वृष्टिसुखं स्त्रीहरणं विदध्युर्धनं च भोगं क्रमतोऽर्थलाभः।।२९।।

गमन के समय पूर्व दिशा में चीटियां देखने में आए तो कार्य की निष्फलता जाने। अग्निकोण में देखने में आए तो कार्य की सिद्धि तथा सुख। चीटियाँ दक्षिण में दिखे तो कार्य की सिद्धि, नैर्ऋत्य में वर्षा, पश्चिम में सुख, वायु में स्त्री का हरण, उत्तर में धन की प्राप्ति व भोग तथा ईशान कोणं में देखने में आए तो गमन करने वाले मनुष्य को अर्थलाभ होता है।

वसन्ततिलका

याने शवे रुदितवर्जितकेऽर्थसिद्धि-
मृत्युप्रवेशसमयेऽप्यथवा रुजश्च।
वामं च दृष्टमपि रोदनमाह शस्तं
निन्द्यं बिडालनृगवां शुनकस्य च क्षुत्।।३०।।

गमन के समय सामने शव (मुर्दा) हो तो अर्थ की सिद्धि, उसके साथ के लोग रोते न हो तो अर्थ की सिद्धि। प्रवेश के समय शव मिले तथा उसके साथ के सदस्य रोते न हो मृत्यु व रोग की उत्पत्ति हो। गमन के समय बाईं ओर कोई रोता हो तो अशुभ, परन्तु वह दिखता न हो तो शुभ। गमन के समय बिल्ली, मनुष्य, गाय व शुनक (कुत्ता) का छींकना अशुभ है।

शार्दूलविक्रीडित

पूर्वस्यां मरणं करोति मुखतः शोकं च वह्न्युद्भवं
हानिं दक्षिणदिग्विभागजनितं रक्षो दिशीष्टागमम्।
मिष्टान्नं ददते जलेशदिशिजं वायौ च लक्ष्मीप्रदं
सौम्यायां कलहं धनं पशुपतौ भीतिं स्वकीयं क्षुतम्।।३१।।

गमन के समय (स्वयं की छींक) पूर्व दिशा में छींक हो तो मृत्यु, अग्नि में शोक, दक्षिण में हानि, नैर्ऋत्य में मनवांछित फल, पश्चिम में मिष्ठान, वायु में धन, उत्तर में क्लेश तथा ईशान कोण में छींक हो तो धन की प्राप्ति होती है। (स्वयं की छींक हो तो भय उत्पन्न करती है।)

इन्द्रवज्रा

स्पन्दो नराणां फलदोऽपसव्यः स्त्रीणां च वामाङ्गसमुद्भवश्च।
हृदन्तनाभीकटिपृष्ठजो वा नेष्टो नृणां वामशरीरजातः।।३२।।

पुरुष का दायाँ तथा स्त्री का बायाँ अंग फड़कना शुभ है। पुरुष का हृदय, दांत, कमर, पीठ, नाभि व बायाँ अंग शुभ नहीं है।

शालिनी

ऊर्ध्वे प्रान्ते वामनेत्रे च भीतिं स्पन्दे दक्षे मध्य आदौ च दुःखम्।
कुर्यात् सौख्यं सर्वतो दक्षिणाधो दुष्टो वामाधोऽपि मध्यान्तमूले।।३३।।

पुरुष के बाएँ नेत्र का ऊपरी भाग तथा नेत्र का कान की ओर का भाग फड़के तो भय करे। दाहिने नेत्र का मध्य भाग, नाक के सामने का भाग फड़के तो दुःख प्राप्त होता है। सर्वत्र दाहिनी आँख के नीचे का भाग फड़के तो सुख करे। बाएँ नेत्र के नीचे, मध्य व अन्त भाग व मूल भाग, कोई सा भी भाग फड़के तो अशुभ करे।

उपजाति

प्रदोषकाले यदि वा प्रभाते लोके क्वचित् किञ्चन भाषमाणे।
उपश्रुतिः कार्यसमुद्यतेन सार्वत्रिकी सा परिभावनीयाः।।३४।।

प्रदोष के समय (सूर्यास्त के पश्चात्) प्रभात के समय किसी स्थान पर कोई मनुष्य बोलता हो तो जैसा शुभ, अशुभ बोल, वैसा फल जाने।

शार्दूलविक्रीडित

शान्ताः पञ्च शिवारुते परदिशो दीप्तास्तु दग्धादितः
सन्त्रासव्ययबन्धनानि क्रमतः स्यादिष्टवार्ताश्रुतिः।
इष्टाप्तिः शुभलाभ इष्टमशनं सङ्ग समं सज्जनैः
सिद्ध्यै वामनिनाद एव गमने प्रावेशके दक्षिणः।।३५।।

गमन के समय सियारिन का शब्द पांच दिशाओं में शान्त जाने। परन्तु दग्धादि को लेकर तीन दिशाओं को लेकर दीप्त जाने। जिस दिशा में सियारिन शब्द करे वह दीप्त, उससे पहले की दग्ध तथा दीप्त के आगे की दिशा को धूम जानना। दग्धा में बोले तो त्रास, दीप्त में बोले तो व्यय, धूम वाली दिशा में बोले तो बन्धन जाने। धूम के आगे की पांच दिशाएं हैं, उनमें पहली दिशा में बोले तो प्रिय से वार्ता हो, दूसरी में बोले तो मनोवांछित की प्राप्ति, तीसरी में बोले तो लाभ, चौथी में इच्छित भोजन, पांचवी में बोले तो सन्त जनों से मिलना हो। गमन के समय बाईं ओर सियार का शब्द हो, दाईं ओर हो तो प्रवेश के समय सिद्धि देता है।

शालिनी शीर्षे पल्ल्यारोहणे राज्यलाभः कर्णौ भूषैश्वर्यमेवं हि भाले।
नेत्रे मित्रं नासिकायां सुगन्धो वक्त्रे मिष्टान्नं च कण्ठे प्रियाप्तिः।।३६।।

छिपकली सिर पर चढ़े तो राज्य की प्राप्ति, कान पर चढ़े तो आभूषण मिले। कपाल पर चढ़े तो समृद्धि, नेत्र पर चढ़े तो मित्र से मुलाकात, नाक पर चढ़े तो सुगन्ध की प्राप्ति, मुख पर चढ़े तो मिष्ठान की प्राप्ति, कंठ पर चढ़े तो प्रिय की प्राप्ति होती है।

वसन्ततिलका

स्कन्धे जयं भुजगता प्रकरोति लाभम्
अर्थं करे सुभगता स्तनगा च पल्ली।
तत्कुक्षिपृष्ठकटिनाभिषु सौख्यपुत्रौ
लाभं नवाम्बरसमागमकीर्तिवृद्धिः।।३७।।

कन्धे पर चढ़े तो जय, भुजा पर चढ़े तो लाभ, हाथ पर चढ़े तो धन प्राप्ति, स्तन पर चढ़े तो तो सौभाग्य मिले, हृदय पर चढ़े तो पुत्र की प्राप्ति, कुंक्षी पर सुख, पीठ पर लाभ, कटि पर वस्त्र, नाभि पर कीर्ति की प्राप्ति होती है।

छिपकली के शरीर के विभिन्न अंगों पर चढ़ने से परिणाम	
अंग	परिणाम
सिर	राज्य की प्राप्ति
कान	आभूषण
कपाल	समृद्धि
नेत्र	मित्र से मुलाकात
नाक	सुगन्ध की प्राप्ति
मुख	मिष्ठान की प्राप्ति
कंठ	प्रिय की प्राप्ति
कन्धे	जय
भुजा	लाभ
हाथ	धन प्राप्ति
स्तन	सौभाग्य
हृदय	पुत्र की प्राप्ति

शार्दूलविक्रीडित

पार्श्वे बन्धुविवर्धनं च मरणं गुह्ये गुदे रोगिता
ह्यूर्वो वाहनमर्थमेव तदधो जङ्घा पदो स्याद् गतिः।
एवं शौनकशुक्रगर्गमुनिभिः प्रोक्तं फलं वामतः
पल्ल्या वा सरटस्य दक्षिणसमारोहे फलानां क्षयः।।३८।।

पार्श्व पर बन्धु की वृद्धि, गुह्य पर मरण, गुदा पर रोग, जांघ पर वाहन, उससे नीचे धन की प्राप्ति, पिंडली पंजा पर चढ़े तो (गति) प्रवास होता है। इस प्रकार बाएँ अंग पर (गिरगिट व) छिपकली चढ़ने का फल शौनक, शुक्र, गर्गादि मुनियों ने कहा है। दाहिने अंग पर चढ़े तो फल की हानि होती है।

पतति शिरसि कुक्षौ पृष्ठदेशे च मृत्युः
करचरणहृदिस्थः सर्वसिद्धिं करोति।।३९।।

सिर, कुक्षि एवं पीठ पर छिपकली के गिरने से मृत्यु तथा हाथ, पैर व हृदय पर स्थित होने पर सभी प्रकार की सिद्धि प्राप्त होती है।

छिपकली के शरीर के विभिन्न अंगों पर चढ़ने से परिणाम	
अंग	परिणाम
कुक्षी	सुख
पीठ	लाभ
कटि	वस्त्र
नाभि	कीर्ति
पार्श्व	बन्धु की वृद्धि
गुह्य	मरण
गुदा	रोग
जांघ	वाहन
जांघ से नीचे	धन की प्राप्ति
पिंडली पंजा पर	(गति) प्रवास
सिर, कुक्षि एवं पीठ	मृत्यु
हाथ, पैर व हृदय	सिद्धि

मूलाख्या ज्वलनी तथैव दहनी स्यात्तोरणं सृष्टितो
वामे लुम्बकः प्रमाणमिति च स्यात् पञ्चको मूलकम्।
पञ्चत्वं खरकस्तथा भ्रमणकं प्रोक्तं ध्रुवोमागृहं
तस्मात् पूर्णघटी महेश्वरदिशि प्राच्यादितः षोडशः।।४०।।

पूर्वादि दिशा के प्रदक्षिण क्रम से सोलह संज्ञा दी गई है। मूला, ज्वलनी, दहनी, तोरण, वामा, लुम्बक, प्रमाण, पञ्चक, मूलक, पञ्चत्व, खरक, भ्रमणक, ध्रुव, उमागृह, पूर्णघटी, महेश्वर।

दीप्ताः सर्वदिशोऽपि भानुवशस्तेनोज्झिताः शोभनाः
प्राग्मूलं शिखिवायुराक्षसदिशो दीप्तास्तथा शाङ्करी
शान्ते दक्षिणपश्चिमे मृतघटी मातुर्गृहं पञ्चकं
सिद्ध्यै लुम्बक एव लौकिकमते तूर्ध्वस्तथाधोऽधमः।।४१।।

सभी दिशाओं ने सूर्य के कारण दीप्ति रहती है तथा सूर्य के छोड़े जाने पर शोभित होती है। शिखि, वायु, राक्षस, शांकरी। सिद्धों के द्वारा स्पर्श संसार के मत में ऊपर तथा नीचे से नीचे दक्षिण, पश्चिम, मृतघटी तथा माता का पांचवां गृह शान्त है।

गोत्रछत्राम्बुजकुञ्जरेषु तुरगे सर्पे च पूर्वे दिने
दृष्टः खञ्जनको ददाति स नृणां राज्यं सितो वाऽसितः
सौख्यं शान्तसमाश्रितः प्रकुरुते गेहे छदेऽर्थक्षयं
श्वाने रज्जुखरोष्ट्रगं त्रिषु भयं सर्वत्र पीतं त्यजेत्।।४२।।

गाय, छत्र, कमल, हाथी, घोड़ा, सर्प इनमें से किसी में भी ऊपर पहले पहर में काला या सफेद खंजन पक्षी बैठा दिखने में राज्य की प्राप्ति। शान्त स्थान में बैठा हो तो सुख, छाजन पर बैठा हो तो धन का नाश। कुत्ते पर, रस्सी पर, गधे पर, ऊँट पर, खंजन पक्षी देखने में आए तो तीनों लोक में भय करे। पीले खंजन पक्षी किसी भी स्थान पर शुभ नहीं है।

उपजाति
दुर्गागतिः पिङ्गलिकारुतं च चेष्टा शुनः स्थानकमेव काके।
दिशः शिवायाः शकुने मुनीन्द्रैरेतद् विशेषात् कथितं बलिष्ठम्।।४३।।

शकुन के विषय में दुर्गा की गति, पिंगला का शब्द, श्वान की चेष्टा, काग का स्थान, सियार की दिशा मुनियों ने कही है।

श्रीमेदपाटे नृपकुम्भकर्णस्तदङ्घ्रिराजीवपरागसेवी।
स मण्डनाख्यो भुवि सूत्रधारः कृतोऽमुना भूपतिवल्लभोऽयम्।।४४।।

मेवाड़ देश के महाराजा कुम्भकर्ण के चरण में चरणकमल में धूल से सेवक मण्डन ने सूत्रधार के उद्धार के लिए यह राजवल्लभ रचा है।

मालिनी

गणपतिगुरुभक्त्या भारतीपादतुष्ट्या
मुनिमतमिदमुक्तं वास्तुशास्त्रं सुवृत्तम्।
गणितमपि च सारं शाकुनं सारभूतम्
भवतु चतुरयोग्यं विश्वकर्मप्रसादात्।।४५।।

गणपति और गुरु की भक्ति, मुनियों के मत के अनुसार यह श्रेष्ठ व्रतों वाला वास्तुशास्त्र कहा है। इसका सार गणित व शकुन शास्त्र है। यह पूरा शास्त्र विश्वकर्मा की कृपा से चतुर व योग्य पुरुषों के अंगीकार करने लायक है।

विश्लेषण (आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन)ः-राजवल्लभ ग्रन्थ का अन्तिम अध्याय है शकुनविचार। ज्योतिष शास्त्र में मुहूर्त से भी अधिक महत्व शकुन को दिया गया है। शकुन, प्रकृति के संकेत है। शुभ शकुन प्रकृति के वे संकेत हैं जिनको देखकर, सुनकर, सूंघकर, चखकर शान्त व स्थिर मन प्रसन्न होता है, उत्साह का वर्धन होता है। जिन संकेतों को जानकार, देखकर, सुनकर, सूँघकर, चखकर शान्त व स्थिर मन अप्रसन्न होता है, खिन्न होता है, उदास होता है, हतोत्साही होता वे सब अशुभ शकुन हैं। इसका विचार करके कार्य करना चाहिए।

उपसंहार

सूत्रधारमण्डन कृत राजवल्लभ का आधुनिक परिप्रेक्ष्य में परिशीलन

राजवल्लभ ग्रन्थ के प्रथम अध्याय जिसका नाम मिश्रकलक्षण है। इसमें सर्वप्रथम मंगलाचरण है, जिससे ग्रन्थ में एक परम्परा दिखती है, सबसे पहले महादेव, गौरी, पार्वती, गणेशजी की वन्दना है, उसके पश्चात् सरस्वती जो की विद्या की देवी है, की स्तुति तथा उसके पश्चात् वास्तु के शिल्पी विश्वकर्माजी की वन्दना की गई है।

वन्दना करने से मन शान्त, स्थिर तथा एकाग्र होता है यह बताया है। उसके पश्चात् जिस भी शास्त्र का अध्ययन करते हैं, सबसे पहले उसकी महत्ता का प्रतिपादन किया जाता है इस क्रम में गृह की महत्ता का प्रतिपादन किया है। उसके पश्चात् कहा गया है कि किसी भी कार्य को शुभ मुहूर्त में प्रारम्भ करने पर कार्य सफलता को प्राप्त करता है अतः गृहारम्भ मुहूर्त को कहा गया है। इसमें मासनुसार मुहूर्त तथा भूखण्ड के मुख के अनुसार खुदाई की दिशा का विचार किया है।

उसके पश्चात् भूखण्ड के दिशा निर्धारण की विधि का वर्णन है। जिसमें ध्रुव तारे की सहायता से दिशा ज्ञात करने की विधि का वर्णन है। इस प्रकार दिशा का साधन करने से वह पृथ्वी पर उपस्थित चुम्बकीय क्षेत्र से अप्रभावित रहते हुए शुद्ध उत्तर आदि दिशा ज्ञात की जाती है।

भूमि चयन विधि का वर्णन करते हुए वर्ण (ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य व शूद्र के लिए उपयुक्त भूमि के लक्षणों का वर्णन किया है। वर्ण के अनुरुप रंग, गन्ध व स्वाद का प्रयोग घर में करने पर वर्ण के अनुरूप गुण विकसित होते हैं।

उसके पश्चात् मिट्टी के परीक्षण की विधि का वर्णन है, जिसमें भूमि के घनत्व, आर्द्रता आदि के माध्यम से यह देखा जाता है कि भूमि निर्माण के उपयुक्त है अथवा नहीं। जिस भूमि का घनत्व कम हो, वहाँ ठोस आधार तक पहुँच कर नींव रखी जाती है। जिस भूमि में आर्द्रता की कमी हो, वहाँ दीवार, स्तम्भ आदि की तरी अधिक बार की जाती है।

उसके पश्चात् प्लव का विचार किया गया है। यहाँ वर्ण के अनुसार किस प्रकार का प्लव या भूमि का झुकाव होना शुभ होता है, यह बताया है। प्रत्येक वर्ण के लिए अलग-अलग प्रकार (दिशा) का झुकाव शुभ बताया गया है।

उसके पश्चात् वर्ण के अनुसार शुभ लकड़ी का वर्णन मिलता हैं। खूँटी की लकड़ी के माध्यम से यह बताया है कि किस वर्ण के लिए कौन सी लकड़ी शुभ होतीं है अर्थात् वर्ण के अनुरुप गुणों को विकसित करने में सहायक होती है।

उसके पश्चात् बताया है कि भूमि के अन्दर किसी भी प्रकार की नकारात्मक ऊर्जा (शल्य) देने वाला पदार्थ नहीं होना चाहिए। इसे शल्य ज्ञान कहते हैं। शल्य को ज्ञात कर उसे निकाल कर भूमि को सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित करना चाहिए।

उसके पश्चात् शिलान्यास विधि के माध्यम से उचित गहराई तक खुदाई करना, सकारात्मक ऊर्जा देने वाले पदार्थ भूमि के अन्दर स्थापित करना तथा गुनिया कर भूखण्ड को समकोण बनाकर निर्माण कार्य आरम्भ करना चाहिए।

उसके पश्चात् बताया है कि घर के एकदम नजदीक बड़े वृक्ष नहीं लगाना चाहिए। वृक्ष इतनी दूर हों कि दूसरे व तीसरे प्रहर की छाया गृह पर नहीं पड़ना चाहिए। उसके पश्चात् बताया है कि कोई भी बड़ा मन्दिर घर के पास नहीं होना चाहिए। इस प्रकार से भूमि चयन विधि को बताया है।

उसके पश्चात् उत्संग आदि चार प्रवेश को बताया है। यह बताया है कि भूखण्ड व भवन में जब एक ही दिशा से प्रवेश होता है तो उसे उत्संग कहते हैं यह शुभ होता है। दाहिनी ओर से भवन प्रवेश करना भी शुभ होता है। बाईं ओर तथा पीछे से प्रवेश करना अशुभ होता है।

उसके पश्चात् माप की इकाई तथा हस्त को धारण करने की विधि का वर्णन है।

यह बताया है कि हस्त (स्केल) को उसके चिह्नों से नहीं पकड़ना चाहिए। ऐसा करने से उनके चिह्न मिटने की आशंका होने के कारण, गलत माप होने की आशंका होती है।

उसके पश्चात् प्रथम अध्याय में स्थपति के लक्षणों का वर्णन किया है कि वह सुशील, कार्य में निपुण, लोभ रहित तथा शान्तिप्रिय तथा क्षमा से युक्त होना चाहिए।

अध्याय २ वास्तुलक्षण है। इसमें वास्तुपुरुष की उत्पत्ति का वर्णन है तथा वास्तुपुरुष के शरीर पर स्थित ४५ देवताओं का उल्लेख है। ये ४५ देवता, ४५ भिन्न-भिन्न प्रकार की ऊर्जा को अभिव्यक्त करते हैं। उसके पश्चात् ४९, ६४, ८१, १००, १४४, १९६ तथा १००० पद के वास्तु को बताया है। यह भी बताया है कि वास्तु का जो अंग पीड़ित होता है, गृह स्वामी के उसी अंग में कष्ट होता है। इससे हमें ज्ञात होता है कि वास्तु व गृहस्वामी एक दूसरे से संबंधित होते हैं। वास्तु के निर्दोष होने पर, सकारात्मक ऊर्जा से आवेशित होने पर गृहस्वामी स्वस्थ रहता है तथा उन्नति को प्राप्त करता है। किसी भी भूखण्ड पर वास्तुपदविन्यास करने के उपरान्त उस पर मर्म ज्ञात करने के लिए पद्म की आकृति बनाई जाती है, इस स्थान पर स्तम्भ, दीवार आदि का निर्माण नहीं करना चाहिए।

इसके पश्चात् वास्तु बलि के विधान को बताया है वास्तव में यह एक-एक की पद को किस प्रकार बढ़ाया जाए, इसका विधान है। वास्तु में जो पद दूषित हो या जिस पद की ऊर्जा उचित प्रकार की न हो, उसे सन्तुलित करने के लिए वास्तु बलि का विधान है। जिस प्रकार शरीर में विटामिन ए की कमी होने पर डॉक्टर विटामिन ए के दवाई, केप्सूल या इंजेक्शन देता है, उसी प्रकार पद की ऊर्जा की कमी होने बलि (भोजन, हवन) के माध्यम से उस ऊर्जा को सन्तुलित किया जाता है।

दूसरे अध्याय के अन्तिम श्लोक में बताया है कि गृह पूर्ण होने के उपरान्त ही उसमें प्रवेश करना चाहिए, निर्माण पूर्ण किए बिना प्रवेश करने पर चोरी, वर्षा आदि से नुकसान होने की आशंका रहती है।

तीसरे अध्याय का नाम आयादि लक्षण है। इसमें नगर, भूखण्ड, कक्ष, उपकरण आदि के मान को ज्ञात करने की विधि का उल्लेख किया है। इसमें बताया गया है कि कक्ष के उपयोग के अनुसार मान का निर्धारण करने पर कक्ष में किए जाने वाले कार्य में प्रकृति का सहयोग मिलता है।

ध्वज, धूम, सिंह, श्वान, वृष, खर, गज व काक ये आठ आय होती है। क्षेत्रफल को आठ से भाग देने पर ध्वज आदि आठ आय प्राप्त होती है। वर्ण के अनुसार शुभ आय का प्रयोग करना चाहिए। ब्राह्मणों के लिए ध्वज, क्षत्रिय के लिए सिंह, वैश्य के लिए वृष आय शुभ बताई है।

इसके अतिरिक्त दिशा के अनुसार भी आय का प्रयोग किया जाता है। पूर्व दिशा के कक्षों के लिए ध्वज आय शुभ है। इसी प्रकार दक्षिण दिशा के लिएं सिंह, पश्चिम के लिए वृष तथा उत्तर दिशा हेतु गज आय शुभ है। उसके पश्चात् बताया है कि जिस प्रकार वर-वधू की मिलान किया जाता है, ठीक उसी प्रकार गृहस्वामी तथा गृह का भी मिलान करना चाहिए।

चतुर्थ अध्याय- दुर्ग, पुर, जलाशय आदि के लक्षण का विचार है। इसमें बताया है कि राजा को सुरक्षित दुर्ग में निवास करना चाहिए। नगर का आकार भी शुभ होना चाहिए। यहाँ नगर के आकार के माध्यम से आकार के गुण बताएँ हैं। उसके पश्चात् अशुभ आकार का वर्णन करते हुए उसमें निवास करने के दुष्परिणाम का उल्लेख है। उसके पश्चात् नगर-नियोजन में नगर के मान, मार्ग की संख्या, देवालय आदि का स्थान, परकोटे की दीवार, विभिन्न बसाहट, द्वार, सुरक्षा हेतु विभिन्न उपकरण, जलाशय, सरोवर, कुण्ड आदि के निर्माण तथा उसके महात्म्य को बताया है। इस प्रकार नगर का नियोजन करने से राजा व प्रजा दोनों ही सुखी होते हैं।

पाँचवाँ अध्याय-राजगृहनिवेश आदि लक्षण में राजा, सेनापति, राजकुमार, रानी आदि के गृह के पाँच-पाँच मान बताए हैं। द्वार का मान, गृह की ऊँचाई, गृह की ऊँचाई के अनुपात में द्वार की ऊँचाई, शुभ वृक्ष, गृह की ऊँचाई के अनुपात में स्तम्भ, तुला, जयन्तिका आदि का मान बताया है। दीपस्थान, द्वार निर्माण, द्वार-वेध, छाद्य प्रकार, जीर्णगृह आदि के विधान को बताया है। इसमें यह भी बताया है कि अश्वशाला, नृत्यस्थान, विद्या, वाद्य, भोजन, पाकशाला आदि को किस पद या स्थान में बनवाना चाहिए।

छठवाँ अध्याय- एक शाल, द्विशालगृह लक्षण है।

एक शाल- इसमें अलिन्द भेद से सोलह प्रकार के गृह बताए हैं। इसीमें धान्य आदि गृह के सामने एक अलिन्द बढ़ाया जाए तो रम्य आदि आठ गृह बनते हैं।

ध्रुव आदि सोलह गृहों में एक-एक षड्दारु रखने पर सुन्दर आदि १६ प्रकार के गृह होते हैं।

इसी प्रकार ध्रुव आदि जो सोलह प्रकार के एकशाल गृह हैं, इसमें अलिन्द के साथ दो-दो पट्ट रख दें तो हंस आदि सोलह प्रकार के गृह बनते हैं।

जब ध्रुव आदि सोलह प्रकार के गृहों में अपवर्क (ओवरी, छोटा कक्ष) बनवाया जाए तो अलंकृत आदि सोलह प्रकार के गृह होते हैं।

इसी प्रकार अपवर्क के साथ षट्दारु हो तो प्रभव आदि सोलह प्रकार के एकशाल गृह होते हैं।

प्रभव आदि सोलह प्रकार के घरों के आगे एक-एक अलिन्द बनाया जाए तो वह चूडामणि आदि सोलह प्रकार के एकशाल गृह होते हैं।

द्विशाल- मुख्य रूप से करिणी, महिषी, गावी तथा छागी शाला के भेद से विभिन्न प्रकार के द्विशाल गृह बनते हैं।

सातवाँ अध्याय- द्विशाल, त्रिशाल तथा चतुश्शाल लक्षण बताएँ हैं। विभिन्न प्रकार के द्विशाल भवन के उपरान्त हस्तिनी, त्रिदश, त्रिदशावास, सुरुप तथा कुमुद आदि त्रिशाल गृह बताएँ है। आगे अलिन्द आदि के भेद विभिन्न त्रिशाल तथा चतुश्शाल गृह बताएँ हैं।

आठवाँ अध्याय- शय्या, सिंहासन, छत्र, गवाक्ष, सभाष्टक, वेदिका, दीपस्तम्भ लक्षण है। इस अध्याय में पलंग की लम्बाई, चौड़ाई व ऊँचाई का मान बताया है इसी प्रकार सिंहासन का मान बताया है। सिंहासन को किस प्रकार उसके विभिन्न अवयव आदि के साथ, निश्चित अनुपात में बनवाना चाहिए यह बताया है। गवाक्ष, सभा,वेदिका, दीपस्तम्भ आदि जो घर के विभिन्न अवयव हैं, जिनसे घर सुसज्जित होता है के मान आदि का वर्णन भी किया है। आज भी घर में सजाने में इन अवयवों का प्रयोग किया जा सकता है।

नवाँ अध्याय- राजगृहादि लक्षण है। इस अध्याय में जब कोई बड़ा या विशाल घर बनवाना हो तो उसे किस प्रकार विभिन्न अवयवों से युक्त करना, मुख्य गृह व अन्य गृहों का मान, विभिन्न प्रकार के छादन, बगीचा, वाहन रखने का स्थान, मुख्य द्वार, वर्णानुसार गृह का मान आदि को बताया है।

दसवाँ अध्याय गणित से संबंधित है। इसमें ज्यामिति का विशेष रूप से वर्णन किया है। गोल, धनुषाकार, अष्टकोण, पंचकोण, षट्कोण आदि आकार को बनाने की विधि तथा क्षेत्रफल ज्ञात करने की विधि को बताया है।

अध्याय ११ से १४ तक मुहूर्त आदि को बताया है। इसमें तिथि, वार, नक्षत्र, योग के आधार पर शुभ मुहूर्त का वर्णन है। विभिन्न प्रकार के शुभाशुभ शकुनों का विचार भी किया है।

इस प्रकार से हम कह सकते हैं कि लगभग सोलहवीं शताब्दी का यह ग्रन्थ आज भी प्रांसगिक है।



संदर्भसूची

संदर्भ सूची

१ राजवल्लभ-गुजराती टीका सन् १८९१ ई.
२ राजवल्लभ-श्री शिवप्रसाद वर्मा, इन्दौर २०००
३ राजवल्लभ-श्रीकृष्ण जुगनू, परिमल पब्लिकेशन २००५
४ विश्वकर्म प्रकाश-मिहिरचन्द्र, खेमराज कृष्णदास, मुम्बई, संस्करण १९९८
५ विश्वकर्म प्रकाश-श्री गणेशदत्त त्रिपाठी, वाराणसी
६ विश्वकर्म प्रकाश-अहमदाबाद
७ विश्वकर्म प्रकाश-श्री उमेश त्रिपाठी, हरिद्वार
८ विश्वकर्म प्रकाश-श्री शिवप्रसाद वर्मा, स्थापत्यवेद संस्थान, इन्दौर २००६
९ मत्स्यपुराण गीताप्रेस गोरखपुर
१० अग्निपुराण गीताप्रेस गोरखपुर
११ समरांगण सूत्रधार डॉ. द्विजनाथ शुक्ल मेहरचन्द लक्ष्मणदास पब्लिकेशन्स नई दिल्ली १९९६
१२ भारतीय वास्तुशास्त्र श्री र. पु. कुलकर्णी, हिन्दी साहित्य समिति, इन्दौर
१३ वास्तुविद्या पाठ्यक्रम श्री शिवप्रसाद वर्मा, इन्दौर २०००
१४ भविष्य पुराण गीताप्रेस गोरखपुर


महर्षि महेश योगी वैदिक विश्वविद्यालय ग्रंथालय
क्र. 22628
करौंदी, कटनी (म.प्र.)